श्रीश्रीसद्गुरुसंग

प्रथम खण्ड

(संवत् १९४३-४६ की डायरी)

श्रीमदाचार्य श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजी की देहाश्रित अवस्था का कुछ समय का प्रतिदिन का वृत्तान्त

=

तदीय कृपापात्र

स्वर्गीय श्रीकुलदानन्द ब्रह्मचारी द्वारा ज्यों का त्यों लिखा गया।

अनुवादक

लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय

प्रकाशक

श्रीगौराङ्गसुन्दर ता

२० नं० दर्माहाटा स्ट्रीट, बड़ा बाजार, कलकत्ता।

[प्रथम संस्करण] १९३८ [मूल्य १।।)

पुस्तक मिलने का स्थान :—

(१) श्री गौराङ्गसुन्दर ता, २० दरमाहाटा स्ट्रीट, बड़ा बाजार, कलकत्ता ।

(२) श्रीअच्युतकुमार नन्दी, ठाकुरबाड़ी, पुरी (उड़ीसा) ।

(३) मैनेजर, तारा प्रिंटिंग वर्क्स, कमच्छा, बनारस सिटी ।

और

प्रधान-प्रधान पुस्तक-विक्रेता ।

प्रकाशक का वक्तव्य

'श्रीश्रीसद्‌गुरुसङ्ग' ग्रन्थ का प्रथम खण्ड हिन्दी में प्रकाशित हो रहा है। बङ्गभाषा में इसके पाँच खण्ड हैं। उनको भी हिन्दी में यथावसर प्रकाशित करने की इच्छा है। बँगला में इसके पाँचों खण्डों का बहुत प्रचार हुआ है और वहाँ के समाज में इसका खासा आदर है। जिन विशेषज्ञ व्यक्तियों ने इस सम्पूर्ण ग्रन्थ को बँगला में पढ़ा है उन्होंने इसको मुक्तकण्ठ से अपूर्व असाम्प्रदायिक धर्मग्रन्थ माना है। अतएव हमें विशेष आशा है कि इस पुस्तक को पढ़ने से सभी सम्प्रदायों के धर्मपिपासु जन तृप्ति और आनन्द प्राप्त करेंगे।

इस ग्रन्थ के अनुवादक पं० लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय हिन्दी-साहित्य-जगत् में सुपरिचित हैं। इन्हें बङ्गभाषा की भी अभिज्ञता है। इन्हीं के उत्साह और उद्योग से हिन्दी भाषा में इस ग्रन्थ का प्रचार सम्भव हुआ है। ग्रन्थकार, स्वर्गीय श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी महाराज, की शिष्यमण्डली इनके प्रति कृतज्ञ है।

महामहोपाध्याय पण्डितवर श्रीयुक्त गोपीनाथ कविराज, एम० ए०, भूतपूर्व अध्यक्ष गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस, की हम लोगों पर बड़ी कृपा है। उन्होंने अनुवादक के द्वारा इस ग्रन्थ के अनुवाद की व्यवस्था करवाकर हम लोगों पर विशेष रूप से अनुकम्पा प्रकट की है। इसके अतिरिक्त इस हिन्दी संस्करण के लिए 'मुखबन्ध' लिखकर उन्होंने ग्रन्थ की गौरव-वृद्धि की है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसके लिए हम लोग उनके निकट चिर-ऋणी हैं।

कलकत्ता,
चैत्र कृष्ण ११, सं० १९९४

प्रकाशक
श्रीगौराङ्गसुन्दर ता
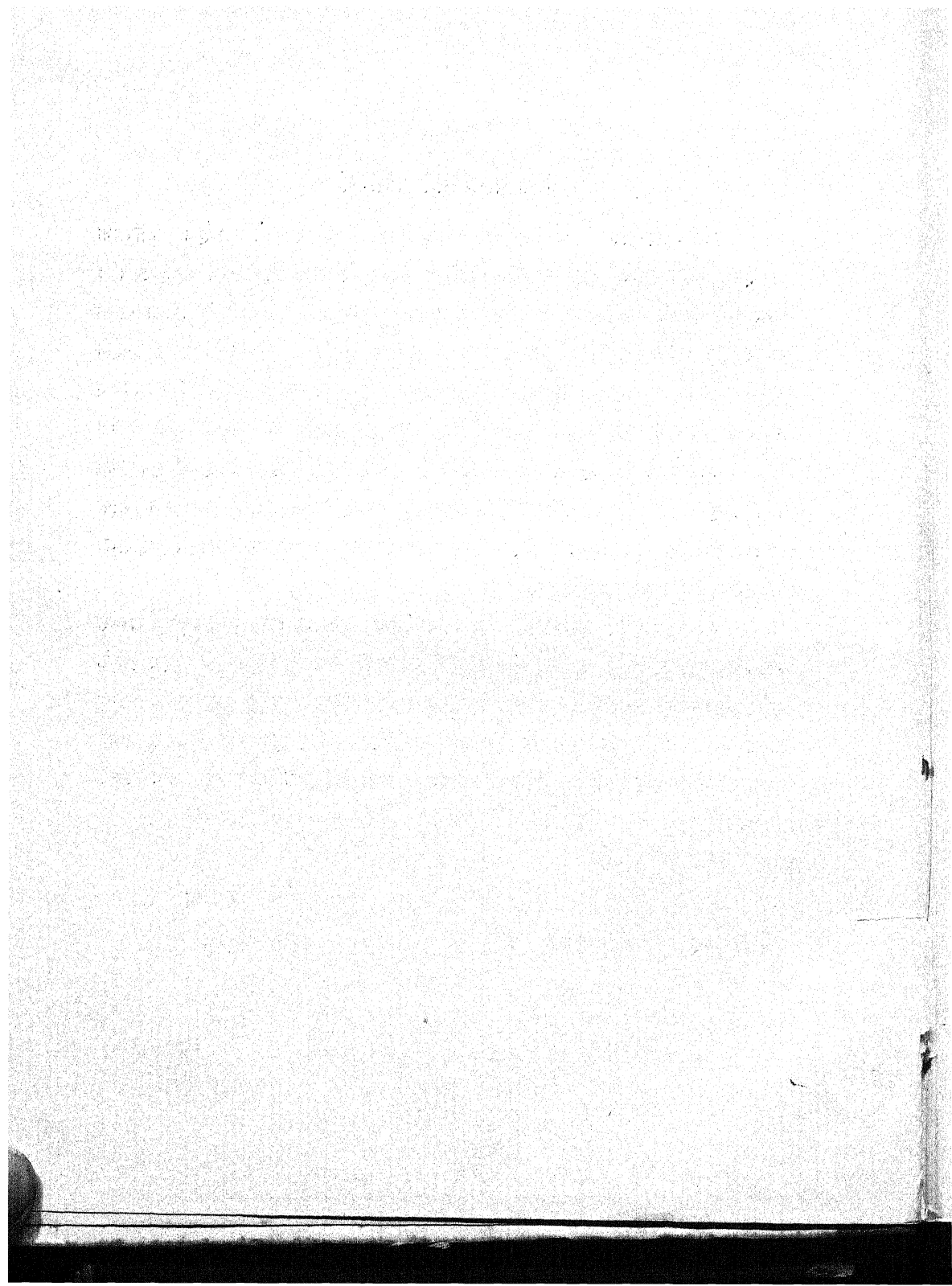
प्राक्कथन

लेखक—महामहोपाध्याय श्रीयुक्त पण्डित गोपीनाथजी कविराज, एम० ए०,
भूतपूर्व अध्यक्ष गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस।

धर्म-प्रेमी हिन्दी-भाषा-भाषियों का यह बड़ा भाग्य है कि श्रीश्रीसद्गुरुसङ्ग नामक अमूल्य ग्रन्थ का अनुवाद आज हिन्दी में प्रकाशित हो रहा है। इस ग्रन्थ के प्रणेता श्रीमत्कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी बहुत समय तक पूज्यपाद महात्मा श्रीश्रीमत् विजयकृष्ण गोस्वामीजी के आश्रय में रहकर, और उनकी सङ्गति तथा उपदेश प्राप्त करके, उनके बतलाये हुए मार्ग पर चले और साधन-भजन का सौभाग्य पाने के अधिकारी हुए। इस समय के बीच उन्होंने आध्यात्मिक साधन-पन्थ पर सर्वतोमुखी उन्नति के लिए उक्त महापुरुष की अनुकम्पा को नाना प्रकार से प्राप्त किया था। मनुष्य के साधारण जीवन में जिस प्रकार बाल्य, यौवन और वार्धक्य आदि अनेक दशाओं का उदय, एक के पश्चात् दूसरी का, स्वाभाविक नियम से होता रहता है उसी प्रकार साधारण नियम के अधीन धर्म-जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का विकास होता है। इन सभी अवस्थाओं के क्रमिक आविर्भाव और तिरोभाव से आभ्यन्तरित शक्ति की स्फूर्ति धीरे-धीरे पूर्ण रूप से होने पर जीव सभी आवरणों से विनिर्मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेता है और अपने अपने स्वभाव के अनुसार परमानन्दमय महाभाव का आस्वादन करके कृतकृत्य हो जाता है। ब्रह्मचारीजी ने इस ग्रन्थ में अपने आध्यात्मिक जीवन की बातों की आलोचना अकपट-भाव से हृदय खोल कर की है। उस आलोचना से एक ओर जिस प्रकार उनकी सरलता, निर्भयता और आत्मोन्नति के लिए किये गये कठोर संग्राम प्रभृति का पूरा परिचय मिलता है उसी प्रकार दूसरी ओर उनके परमाराध्य गुरुदेव की अपार करुणा और अनन्त शक्ति का खेल भी पग-पग पर दृग्गोचर होता है। सद्गुरु की शक्ति विश्वानुग्राहक श्रीभगवान् की ही साक्षात् शक्ति है। इसलिए इस ग्रन्थ में दुर्बल, वासना-परवश और भयभीत साधक की निष्ठा तथा लगन के साथ

निरन्तर साधनशील जीवन के धारावाहिक इतिहास के बीच होकर जीवों का उद्धार करने के व्रती, कृपासागर, क्षमासार श्रीभगवान् की करुणा की कहानी ज्यों-की-त्यों लिखी गई है, इसी लिए यह ग्रन्थ आत्मोन्नति चाहनेवाले सभी साधकों को इतना प्रिय लगता है ।

गुरु की प्राप्ति होने के पश्चात् ही वास्तविक रूप से साधन-जीवन का आरम्भ होता है। यद्यपि हृदय में वैराग्य की प्रबलता और अप्राकृत सत्य वस्तु के लिए व्याकुलता का उदय होते ही निवृत्ति मार्ग पर चलने का समय हो जाता है—क्योंकि संसार के प्रति वैराग्य और परमार्थ के लिए व्याकुलता वास्तव में श्रीभगवान् का ही आह्वान है—तथापि जब तक मार्ग का परिचय नहीं हो जाता तब तक मार्ग पर चलना आरम्भ नहीं होता। वास्तव में मार्ग का दिखना गुरु के उपदेश पर ही अवलम्बित है। जीव अनादि बहिर्मुखता के कारण, अभिमान के प्रभाव से, शुभ और अशुभ तरह-तरह के कर्म करके तदनुसार नट की भाँति अनेक वेष बनाकर ऊर्ध्वलोक से लेकर अधःलोक तक विशाल ब्रह्माण्ड में इधर उधर घूमता रहता है और पिछले कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुःख भोगा करता है। महामाया की मोहिनी शक्ति से जीव अपने परम रूप को भुला बैठा है और साथ-ही-साथ श्रीभगवान् के स्वरूप और उनके साथ अपने नित्य सम्बन्ध को भी भूल गया है। इसी से वह स्थूल का अभिमानी होकर अनित्य और परिणाम में दुःखदायक जागतिक वस्तु को उपादेय समझता है और उसी को प्राप्त करने के व्यर्थ उद्योग में अनेक जीवनों को—मरीचिका से जल प्राप्त करने के प्रयत्न की भाँति—लगाकर सुस्त हो जाता है। जब तक आत्मस्वरूप का सम्यक् दर्शन नहीं हो जाता तब तक पराभक्ति-रूप परमानन्द का आस्वादन और परा शान्ति की प्राप्ति नहीं होती तथा जब तक यह नहीं हो जाता तब तक यह कठिन अतृप्ति और अपार पिपासा शान्त नहीं हो सकती। विशुद्ध ज्ञान के उन्मेष और विकाश के विना अनादि काल का मोहावरण छिन्न होने का नहीं।

इसी लिए तो ज्ञानदाता सद्गुरु की आवश्यकता होती है। यद्यपि श्रीभगवान् ही सद्गुरु हैं एवं वे प्रत्येक मनुष्य के हृदय में समान रूप से विराजमान हैं तथापि वैसी भगवत्सत्ता से किसी प्रकार का फल होने की आशा नहीं है; क्योंकि काष्ठ में स्थित अग्नि विना रगड़ के, अथवा जलती हुई बाहरी आग से संयुक्त हुए बिना, जिस प्रकार प्रज्वलित

होकर लकड़ी को नहीं जला सकती उसी प्रकार मनुष्य के हृदय का भगवद्भाव तीव्र संवेग के प्रभाव से अथवा प्रबुद्ध महापुरुष के सजीव संस्पर्श से उद्दीपित हुए बिना किसी कार्य का साधन करने योग्य नहीं हो पाता। संसार में तीव्र संवेग बहुत ही दुर्लभ है। इसी से साधारणतया भीतर के शुद्ध भाव को जागरित करने के लिए बाहरी सहायता की आवश्यकता पड़ती है। जो इस प्रकार से अपनी जागरित शक्ति के बल से दूसरे के सुप्त भाव को जगा सकते हैं वे ही तो सद्गुरु हैं।

ब्रह्मचारीजी को सौभाग्य से ऐसे ही सद्गुरु मिल गये थे जो इच्छामात्र से शक्ति का सञ्चार करके दीक्षा-दानपूर्वक शिष्य को मुक्तिमार्ग पर स्थापित कर देते थे। शक्ति का सञ्चार हो जाने से शिष्य की कुलकुण्डलिनी शक्ति, अधिकार-भेद से अल्प अथवा अधिक परिमाण में, विक्षुब्ध होती और चेतना प्राप्त कर लेती है। उस समय मनुष्य जन्म-जन्मान्तर के स्वप्न-जीवन को त्यागकर सत्य के स्पर्श से पूर्ण सत्य की खोज में ब्रह्म-मार्ग पर ऊर्ध्वमुख होकर दौड़ पड़ता है— महाजागरण की ओर अग्रसर हो जाता हैं। इस गति के सामने अनेक प्रकार के दिव्य दर्शन हुआ करते हैं, कितनी ही विलक्षण अनुभूतियाँ होती हैं, और इन्द्रियों की शक्ति, मन की शक्ति तथा अन्यान्य बहुत सी शक्तियाँ क्रमशः वृद्धिगत होकर शुद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेती हैं। उस समय एक ओर जिस तरह अभिनव अभिज्ञता का आनन्द साधक को मुग्ध करने की चेष्टा करता है उसी तरह दूसरी ओर पूर्वसञ्चित मलिन कर्मसंस्कारों का समुदाय ब्रह्मतेज के स्पर्श से जागकर चित्तक्षेत्र को आन्दोलित कर डालता है। साधक के लिए यह विषम परीक्षा की अवस्था है— एक सद्गुरु ही उस समय अभयवचन देकर साधक को ढाढ़स बँधाते हैं एवं अलक्ष्य रूप से उसकी रक्षा निरन्तर किया करते हैं। देखते-देखते गुरुशक्ति की महिमा से सारी बाधाएँ और विपत्तियाँ कट जाती हैं।

गोस्वामीजी जीवन में आरम्भ से ही धर्मपिपासु और सरल प्रकृति के थे। इसी से विभिन्न अवस्थाओं के भीतर होकर श्रीभगवान् ने उन्हें अलौकिक रूप से पूर्ण सत्य में प्रतिष्ठित कर दिया था। वर्तमान जगत् के जीवों के लिए गोस्वामीजी की जीवन-कथा का अनुशीलन करने की बड़ी आवश्यकता है। दुःख-कातर जीव का हृदय गोस्वामीजी के जीवन के महनीय आदर्श से नवीन बल प्राप्त करेगा और श्रीभगवान् की अपरिसीम करुणा का जाज्वल्यमान उदाहरण देखकर उनकी ओर लक्ष्य स्थापन करना सीखेगा।

इस ग्रन्थ के पाँच खण्ड हैं—अभी तो इसका यह पहला खण्ड प्रकाशित हो रहा है। आशा है, बाक़ी चार खण्डों का अनुवाद शीघ्र प्रकाशित होगा। इस ग्रन्थ में जो आदेश और उपदेश संगृहीत हैं वे विशिष्ट अवस्था में व्यक्तिविशेष को दिये गये थे सही—सर्वसाधारण को उद्देश्य करके नहीं दिये गये थे;—फिर भी वे सर्वसाधारण की सम्पत्ति हैं। क्योंकि वे उपदेश और आदेश किसी विशिष्ट सम्प्रदाय के नहीं, मानवमात्र के उपयुक्त हैं। जिनको उपदेश दिये गये थे वे तो एक निमित्त थे। साधन-मार्ग पर चलनेवाले जिज्ञासुमात्र को इनसे शान्ति, शिक्षा और आनन्द की प्राप्ति अवश्य होगी। वास्तव में ऐसा ग्रन्थ किसी भी साहित्य में विरल है। इन उपदेशों की बार-बार आलोचना करके कार्य रूप देने से ही जीवन अमृतमय हो जाता है।

यहाँ पर एक बात कहना अप्रासङ्गिक न होगा। जिन्होंने इस ग्रन्थ का अनुवाद किया है वे वङ्ग भाषा के अच्छे जानकार और हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हैं। अतः अनुवाद की उत्कृष्टता के सम्बन्ध में कुछ कहना अनावश्यक है। आशा है, जहाँ-जहाँ हिन्दी भाषा का प्रचार है वहाँ-वहाँ इस अपूर्व धर्मग्रन्थ का समुचित आदर अवश्य होगा।

श्रीश्रीगुरवे नमः

निवेदन

मेरे परमाराध्य गुरुदेव भगवान् श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामी प्रभु से इस देश (बङ्गाल) वाले भली भाँति परिचित हैं। उन्होंने १८९८ संवत् की शुभ श्रावण पौर्णिमा (सलूनो) को श्रीधाम शान्तिपुर में, श्री अद्वैत-वंश में, परम भागवत पण्डितप्रवर श्रीमत् आनन्दकिशोर गोस्वामी प्रभु के यहाँ पुत्ररूप में जन्म ग्रहण किया था।

बाल्यजीवन में उनके जिन स्वाभाविक सद्गुणों और क्रियाकलाप को देखकर उनके रिश्तेदार, कुटुम्बी और शान्तिपुरवासी लोग एक समय विस्मित हुए थे, उनको सर्वसाधारण के श्रुतिगोचर कराना मेरी इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है।

युवावस्था में, सरल विश्वास से ब्राह्मधर्म स्वीकार करके, पराये दुःख से दुखी होकर, उस समय के दुर्नीति-दुराचार को दूर करने के लिए तथा समयोचित धर्म की स्थापना के लिए, विषम अत्याचार और उत्पीड़न को सहकर भी उन्होंने जिस अदम्य उत्साह से देश के पुनरुत्थान के लिए कार्य किया था, महाराज के जीवन की उस समय की घटनाओं का पता लगाकर उनका प्रचार करना भी मेरी इस पुस्तक का अभिप्राय नहीं है।

सिर्फ़ विमल विशुद्ध धर्ममत से और अनादि अनन्त सत्यस्वरूप परमेश्वर के अस्तित्व मात्र के ध्यान से संतुष्ट न होकर प्रत्यक्ष रूप से जीवन में उस परम वस्तु को प्राप्त करने के लिए जिस तरह उन्होंने विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों की उपासना-प्रणाली को ग्रहण करके तीव्र तपस्या की थी और कठोर साधन-भजन किया था, तथा उसमें भी अपनी लक्ष्य वस्तु भगवान् को साक्षात् रूप में न पाकर, जिस अवस्था में, दुर्गम पहाड़-वन-जङ्गलों में भूखे-प्यासे और जागते रहकर सद्गुरु को ढूँढ़ने के लिए उन्मत्त की तरह दौड़-धूप की थी, उसका सब ब्योरा उन्हीं के मुँह से सुनकर मैं दङ्ग-हो गया हूँ और उसे लिख छोड़ा है।

अन्त में उनकी प्रौढ़ अवस्था में विचित्र रूप से, गयाजी के पहाड़ पर, अकस्मात् आविर्भूत होकर मानससरोवरनिवासी श्रीश्रीब्रह्मानन्द परमहंसजी, उन्हें शक्ति-संचारपूर्वक

दीक्षा देकर, पल भर में अन्तर्हित हो गये। उस समय से उन्होंने अपनी चिराभीप्सित वस्तु सच्चिदानन्द-स्वरूप भगवान् को साक्षात् रूप से प्रत्यक्ष प्राप्त करके जिस अवस्था में बाक़ी दिन बिताये, प्रायः तेरह-चौदह वर्ष तक उनके साथ रहते हुए उसे प्रत्यक्ष देखकर, मैं समय-समय पर मुग्ध और स्तम्भित हुआ हूँ। हाय, कुछ समय हुआ कि उसी चित्तविमोहन परम मनोरम व्यवहार का सिर्फ़ चित्र हम लोगों के सामने छोड़कर, १९५६ संवत् के ज्येष्ठ मास में श्रीश्रीनीलाचल में—नीलाम्बुधि के तट पर—आश्रित भक्तों का प्राणाराम, हम लोगों का वह स्निग्ध, चमकीला तत्त्वद्युतिप्रभाकर अकस्मात् डूब गया। घोर कृष्णा द्वादशी के प्रथम प्रहर में अभागे भक्तों के सिर पर अकस्मात् गाज गिर पड़ी। उस भीषण दुर्दिन का हृदयविदारक दृश्य अङ्कित करके ही मैंने अपनी डायरी का अन्तिम पृष्ठ सदा के लिए पूरा कर दिया है।

बचपन से, कोई दस वर्ष की उम्र से, मुझे डायरी लिखने का अभ्यास था। अतएव जिस दिन मैंने महाराज का आश्रय लिया उस दिन से उनके चिर-समाधि लेने के दिन तक की मेरी डायरी लिखी रक्खी है। महाराज के पास सदा एक मनुष्य के रहने की आवश्यकता रहती थी, और यह सेवा मुझे ही प्राप्त थी। सोने और भोजन करने में जितना समय लगता था उसको छोड़कर मैं सदा उनके सामने बैठा रहता था। महाराज से 'साधन' प्राप्त करके कोई तेरह-चौदह वर्ष तक मैं लगातार उनके साथ रहा हूँ। उस समय उनकी बातचीत, आचार-व्यवहार, क्रिया-कलाप आदि जिस दिन जैसा देखा और सुना है, डायरी की उस-उस तारीख़ में, अपनी सामर्थ्य भर, ठीक-ठीक और विस्तृत रूप में मैंने वह सब लिख रक्खा है। ख़ासकर अपने ही जीवन की नाना प्रकार की दुरवस्था और आकस्मिक दुर्दशा के समय महाराज का अनुशासन, उपदेश, दया और सहानुभूति के साथ-साथ उनके लौकिक जीवन की अद्भुत घटनाओं का नमूना—जिसे उन्होंने समय-समय पर प्रकट किया है—सरलता से और बिना छल-कपट के, मैं जैसा-जैसा पाता था, उसे डायरी में लिख लेता था। हाँ, सदा साथ में रहने के कारण, महाराज के उस-उस समय के नित्य के साथी अपने श्रद्धेय गुरुभाइयों की उस समय की किसी-किसी घटना के साथ मेरा विशेष सम्बन्ध रहा है इससे, और उन घटनाओं के साथ महाराज के आदेश उपदेश तथा व्यवहार का सम्पर्क विशेष रूप से रहने के कारण उन्हें भी मैंने अपनी डायरी में स्थान दिया है। यदि

हम सबके सब अपना सज्जनोचित, शान्त, जितेन्द्रिय, और निष्कलङ्क जीवन लेकर ही महाराज का आश्रय ग्रहण करते तो फिर उनकी कृपा और महिमा का सोलहों आने परिचय क्योंकर मिलता? और उनकी पतितपावनता ही किस प्रकार भली भाँति प्रकट होती? एक ओर उत्पीड़न की अधिकता का प्रकाश हुए बिना दूसरी ओर क्षमा की विशेषता नहीं समझी जाती। एक ओर जिस प्रकार आचार-भ्रष्टता और उद्दण्डता है, दूसरी ओर उसी प्रकार धैर्य और सहनशीलता है; एक ओर हीनता और अधोगति है, दूसरी ओर दया और सहानुभूति है। इसी से, महाराज की असाधारण कृपा और अद्‌भुत जीवन के थोड़े से परिचय को याद रखने के लिए उस समय के नित्य के साथी गुरुभाइयों के साधारण व्यवहार को और विशेष रूप से अपने निजी जीवन की भूलों को, जिस दिन वे जैसी थीं, इस डायरी में लिख रक्खा है।

बहुतेरे गुरुभाई जानते हैं कि मुझे डायरी लिखने की आदत थी। अतएव सैकड़ों गुरुभाई, जब से महाराज अन्तर्द्धान हुए हैं तब से लेकर अब तक, महाराज का एक जीवन-चरित्र लिखने के लिए मुझसे अनुरोध करते रहे हैं। किन्तु महाराज के साथ कुल तेरह-चौदह वर्ष तक रहकर उनके जो-जो काम मैंने देखे हैं उनके आधार पर उनका जीवन-चरित्र लिखना अथवा उस विषय की चेष्टा करना भी बिलकुल असम्भव जान पड़ता है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनकी सम्पूर्ण जीवनी नहीं लिखी जा सकती। भाषा के सहारे जिनका प्रकाश करना सम्भव नहीं ऐसी, उनके जीवन के अतीन्द्रिय तत्त्वों के अनुभव की बात को लक्ष्य करके मैं यह नहीं कह रहा हूँ। बहुत ही निचले दरजे के योगैश्वर्य से प्राप्त शक्तियों की जिन क्रियाओं और फलानुभूति को उनके पाञ्चभौतिक शरीर में सदा होते देखा है तथा देवताओं और सिद्ध महापुरुषों से सम्बन्ध रखनेवाली, साधारण के विश्वास से अतीत, जिन अलौकिक घटनाओं को मैंने अक्सर देखा है उनका ख़याल करके भी मैं यह बात नहीं कहता हूँ। मेरी तो यह स्पष्ट धारणा है कि महाराज के जीवन में सर्वसाधारण के विश्वासयोग्य और समझने लायक़ ऐसी कितनी ही घटनाएँ अनेक स्थानों में, अनेक अवस्थाओं में, साधारण दृष्टि से छिपी हुई सङ्घटित हुई हैं कि उन्हें अपने नित्य के साथी शिष्यों पर भी प्रकट करने का अवसर गोस्वामीजी को नहीं मिला; फिर बातचीत के सिलसिले में कभी किसी घटना को उन्होंने बाहरी आदमी के भी

आगे प्रकट कर दिया है। अतएव, यह सब जान-बूझकर उनकी एक स्थूल जीवनी प्रकाश करने का उद्योग करना मेरे लिए कितने दुःसाहस का काम है, यह सभी समझ लेंगे। इन्हीं कारणों से मेरी यह स्पष्ट धारणा है कि महाराज की बातें कितनी ही क्यों न लिखूँ, उसके द्वारा उनका भली भाँति परिचय देना असम्भव है। इससे महाराज का शरीर छूटने के बाद से अब तक मैंने, इस विषय में, तनिक भी चेष्टा नहीं की; क्योंकि उनकी ओर से प्रेरणा हुए बिना उनकी जीवनी को सङ्कलित करने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। हाँ, भविष्यत् में उन्होंने प्रेरणा की और सहायता दी तो मैं इस काम के लिए प्रवृत्त हो सकूँगा।

गत १९७० संवत् में जब मैं हैज़े की बीमारी से बिलकुल मरणासन्न हो गया था, तब मेरे बच जाने की किसी को आशा नहीं थी। मेरी डायरी के प्रकाशित न होने से उस समय बहुत लोगों ने अत्यन्त खेद प्रकट किया था। महाराज की कृपा से जब मैं चङ्गा हो गया तब मेरे श्रद्धेय गुरुभाइयों ने मुझसे फिर सस्नेह अनुरोध किया। मैं उसे टाल नहीं सका, अपनी चौदह वर्ष की विस्तृत डायरी को प्रकाशित करने का मैंने सङ्कल्प कर लिया। किन्तु इस काम का एकदम हो जाना असम्भव था। मैंने देखा कि १९४८ संवत् की डायरी बहुत ही जीर्ण कागज पर पेंसिल से लिखी हुई विलुप्तप्राय अवस्था में है अतएव, क्रम के विरुद्ध होने पर भी, मैंने सब से पहले उसी को प्रकाशित कर दिया था। किन्तु अब सिलसिला ठीक कर दिया है।

महाराज की बात को याद रखकर, बड़ी सावधानी के साथ और कहीं-कहीं पर संक्षेप से मैंने इसको प्रकाशित किया है। इस बात के कहने का मतलब यह है कि अन्तर्द्धान होने से कई दिन पहले, महाराज ने एक दिन मुझसे कहा था—"**ब्रह्मचारी, प्रत्यक्ष सत्य भी हर किसी से नहीं कहना चाहिए। अगर कहना ही हो तो आँखों के आगे उसे प्रमाण सहित दिखाना चाहिए। नहीं तो श्रीमन्त सौदागर* की सी हालत होगी; यह याद रखना।**" इसी से मैं सब बातें नहीं लिख सकता; गूँगे का सा स्वप्न देखना है।

*** इस सौदागर को सिंहल जाते समय मार्ग में, कमलों के वन में, लक्ष्मीजी के दर्शन हुए थे। इसके मुँह से यह बात सुनकर सिंहल देश के राजा ने, इसके बतलाये हुए स्थान**

जिस अवस्था में रहकर, जिस घटना में पड़कर, मैंने महाराज का आश्रय लिया था और उसके बाद लगातार उनके साथ बने रहने में बाधक जिन शृंखलाबद्ध आपत्तियों और झंझटों का मुझे उस समय सामना करना पड़ा था उनको मैं महाराज की कृपा ही समझता हूँ। इसलिए अपने जीवन की उस समय की घटना के, बहुत ही संक्षेप में, दो-तीन विवरण यहाँ पर लिखे बिना मुझे संतोष नहीं हो सकता। प्रार्थना है कि मेरी इस निर्लज्जता को सभी लोग दया करके क्षमा करेंगे।

मैं कोई छः वर्ष का था, जब एक दिन घर के पास मैदान में अपनी हमजोलीवालों के साथ तीसरे पहर खेल रहा था। किसी ने मुझे एकाएक पुकारकर कहा—"ओरे, तेरे घर गोस्वामीजी आये हुए हैं, जल्दी जा।" यह बात सुनते ही मैंने दौड़ते-दौड़ते घर जाकर देखा कि पूजावाले कमरे के पास, हरसिंगार के पेड़ के नीचे, हम लोगों के रिश्तेदार ब्राह्मसमाजी स्व० नवकान्त चट्टोपाध्याय के साथ बड़े डील-डौल के एक व्यक्ति खड़े हुए हैं। उनके हाथ में मोटी सी लाठी है, पैरों में जूता है, और बदन में रङ्गबिरङ्गे सलूके के ऊपर वे कमीज़ पहने हुए हैं। ज्योंही मैं नङ्ग-धड़ङ्ग दौड़ा-दौड़ा उनके सामने जाकर खड़ा हुआ त्योंही वे स्नेहपूर्ण दृष्टि से तनिक मुस्कराकर मुझसे घनिष्ठ परिचित की तरह बोले—"**क्योंजी खेलते थे? अच्छा! अच्छा!! जाओ, ख़ूब खेला करो।**" अब वे नवकान्त बाबू के साथ मैदान की ओर चल दिये। जाते-जाते घूमकर मेरी ओर देखने लगे। उनकी उस सूरत और उस स्नेह-पूर्ण दृष्टि को मैं अब तक भूल नहीं सका। कोई गोस्वामी शब्द कहता था तो मैं उन्हीं गोस्वामीजी को समझता था।

हम लोगों के मुहल्ले में एक बूढ़े ब्राह्मण प्रतिदिन कृत्तिवासी रामायण को, गाने के ढँग से, पढ़ते थे। सुनने में उनका पढ़ना अच्छा लगता था। मैं रोज़ भोजन कर

में, लक्ष्मी को ढुँढ़वाने में असफल होकर इसे कारागार में डाल दिया। उधर घर पर इसकी गर्भिणी स्त्री के पुत्र हुआ। सयाना होने पर वह भी सिंहल जाते समय लक्ष्मीजी के दर्शन करता गया। उसने सचमुच वहाँ के राजा को लक्ष्मीजी के दर्शन करा दिये। फलस्वरूप उसके पिता को छुटकारा मिला और बेटे को सिंहल के आधे राज्य के साथ राजकुमारी भी प्राप्त हुई। पिता अविश्वासी था इसी से उसे लक्ष्मीजी के दर्शन नहीं हुए थे।

चुकने पर गाँव के दूसरे छोर पर जाकर वहाँ शाम तक बैठा रहता और उनके मुँह से राम-कथा सुना करता था। मुझे राम बहुत भले लगते थे। मैं यह सोचकर रोता था कि राम मानों हमारे ही घर के कोई हैं और हम लोगों को छोड़कर जङ्गलों में भटकते फिरते हैं। लड़कों के साथ खेलने को बस्ती के बाहर जङ्गल में जाने पर मैं चारों ओर ढूँढ़ता था कि वहाँ कहीं राम हैं या नहीं। राम का रङ्ग दूब की तरह है; इसलिए मैं बड़े आग्रह से दूब की ओर देखा करता था। दूब पर पैर पड़ जाता तो मैं यह समझकर कि, राम को पैर लग गया, वहीं पर लोट जाता और राम को नमस्कार करता था। सदा हाथ में तीर-कमान लिये रहता था। मुझे एक फटी सी रामायण मिल गई थी, जिसे मैं दिन भर अपने साथ रखता और रात को सिर के नीचे रखकर सोता था। इस समय मैंने पहले दरजे की किताब, शिशुशिक्षा, भी नहीं पढ़ी थी। इसके बाद, पाठशाला और मिडल स्कूल में 'बोधोदय' तक पढ़ लेने पर मँझले दादा (श्रीयुक्त वरदाकान्त वन्द्योपाध्याय) मुझे पढ़ाने के लिए ढाका ले गये। मैं इस समय दस वर्ष का था। मँझले दादा ने बड़ी मेहनत से मुझे डायरी लिखना सिखलाया। मैं दिन भर में जितनी बार झूठ बोलता, जिसके साथ लड़ता-झगड़ता, और जो-जो दोष करता उन सबको रोजाना ज्यों का त्यों इस डायरी में लिखता था। इसी समय से मुझे डायरी लिखने का अभ्यास हो गया।

मेरे घर के लोगों और रिश्तेदारों में से बहुतेरे ब्राह्मसमाजी थे। मेरे सभी बड़े भाई ब्राह्मसमाजी थे। धीरे-धीरे मँझले दादा मुझे प्रत्येक रविवार को ब्राह्मसमाज में ले जाने लगे। इन लोगों की उपासना-प्रणाली की ओर मैं थोड़े ही दिनों में बहुत ही आकृष्ट हो गया। प्रति दिन दोनों वक्त, नियम से, मैं प्रार्थना करने लगा। प्रार्थना करके मैं जिस दिन रो न पड़ता उस दिन यह समझकर कि, उपासना नहीं की, दिन भर मन में उद्वेग बना रहता। कपट और असत्य व्यवहार को बड़ा भारी अपराध जानकर मैंने निश्चय किया कि प्रकाश्य रूप से जनेऊ उतार दूँगा और ब्राह्मधर्म की दीक्षा ले लूँगा। मेरे घरवालों और रिश्तेदारों में, मेरे इस काम की बदौलत, बड़ी गड़बड़ मच गई। इन्हीं दिनों ढाका-ब्राह्मसमाज में गोस्वामीजी आचार्य(पुरोहित)-पद पर थे। असांप्रदायिक रीति से की गई उनकी हृदयस्पर्शी प्रार्थना और उपासना में तथा प्रतिदिन के संकीर्तन में उनके महाभाव

में हिन्दू, मुसलिम और क्रिस्तान संप्रदायों के धर्मार्थी लोग आकृष्ट होकर ब्राह्मसमाज में आने लगे। ब्राह्मसमाज में प्रतिदिन खासी भीड़ होने लगी और हर रविवार को ही बड़ा उत्सव होने लगा। सजीव धर्म के जाग्रत् भाव में, विना किसी सम्प्रदाय और जाति-पाँति के झमेले के, सभी लोग अभिभूत होने लगे। मैंने अपने जीवन में यह फिर नहीं देखा।

१९४३ संवत् के आश्विन महीने में, शारदीय उत्सव के समय, दीक्षा लेने की इच्छा से अधीर होकर मैं उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा। इस समय से मेरी जो डायरी लिखी रक्खी है वह इस बार छापी जा रही है। इति।

ठाकुरबाड़ी,
पुरी।

श्रीकुलदानन्द ब्रह्मचारी

सूचीपत्र

चित्र-सूची ।

प्रभुपाद श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामी

श्रीश्रीगुरुदेवाय नमः ।

श्रीश्रीसद्गुरुसंग

(प्रथम खण्ड)

विषय-प्रवेश

मानससरोवर-निवासी परमहंसजी से श्रीयुत गोस्वामीजी ने उस परम दुर्लभ योगधर्म की दीक्षा प्राप्त की जिसका प्रवर्तन प्राचीन काल में श्रीमन्नारायण ने किया था और देवर्षि तथा ब्रह्मर्षि जिसका बहुत ही आदर करते हैं। दीक्षा प्राप्त हो चुकने पर गोस्वामीजी निर्जन जङ्गल पहाड़ों में रहकर कुछ समय तक कठोर साधन-भजन करते रहे। कोलाहल-पूर्ण बस्ती में आने का उनका विचार ही न था। किन्तु उनके गुरुदेव ने एक दिन अकस्मात् प्रकट होकर, कुछ विशेष कार्यों को सम्पादन करने के लिए, उन्हें देश में लौट जाने की आज्ञा दी। इस पर गोस्वामीजी ने कहा—तो क्या अब भी प्रचार आदि करने का भार मुझे ही सौंपकर आप दुनिया के रगड़ों-झगड़ों में फँसाये रखना चाहते हैं? यदि आप स्वयं इन कामों को कर लें तो और अच्छा हो। परमहंसजी ने कहा—यह हमारा काम नहीं है; यह तो तुम्हारे ही हाथ से होगा; एक तो तुम आचार्य की सन्तान हो, दूसरे तुम स्वयं आचार्य हो। लोग तुम्हारे उपदेश को जिस प्रकार श्रद्धा के साथ मानेंगे उस प्रकार हमारी बातों पर विश्वास न करेंगे। जगत् को, देश को, शिक्षा देने का अधिकार तुम्हीं को है—हमें नहीं। तुम पहले जिस प्रकार घर-गृहस्थी में रहते थे उसी

प्रकार जाकर रहने लगो। घर-गृहस्थी में रहने पर भी तुम्हारे साधन-भजन में किसी प्रकार का विघ्न न होगा।

गुरु की आज्ञा मानकर गोस्वामीजी कलकत्ते में लौट आये उन्हें एकान्त में प्राणायाम करके योग-साधन करते, बिना सोचे-समझे गुरु की आज्ञा का पालन करते, निर्जन स्थान में विशेष व्यक्ति को शक्तिसञ्चार करके दीक्षा देते और विभिन्न संप्रदायों के धर्मार्थियों को सहज भाव से श्रद्धापूर्वक अपने-अपने धर्म का पालन करने के लिए उत्साहित करते देखकर ब्राह्मसमाजियों के घर-घर ख़ासी हलचल मच गई और इसी की चर्चा होने लगी। यदि उस समय के ब्राह्मसमाज के संप्रदाय के मतों का प्रचार न किया जाकर उसके बदले सार्वभौम सत्य सिद्धान्तों का प्रचार किया जाय तो इसमें ब्राह्मसमाजवाले रोक-टोक करेंगे; उन्हें दुःख भी होगा। यह जानकर गोस्वामीजी ने गत चैत्र कृष्णा ३ (१९४२ संवत्) को कलकत्ता साधारण-ब्राह्म-समाज के प्रचारक-पद से इस्तीफ़ा दे दिया। किन्तु तुरन्त ही ढाका "पूर्व-बङ्ग ब्राह्मसमाज" के सभ्यों ने उन्हें आचार्य-पद के लिए चुन लिया और बहुत जल्द ढाका में पहुँचने के लिए उनसे आग्रह के साथ अनुरोध किया। कुछ समय हुआ, गोस्वामीजी ढाका में आ गये हैं और ब्राह्मसमाज के प्रचारक के ठहरने के स्थान में रहकर नियमित रूप से उपासना आदि करने लगे हैं।

आजकल गोस्वामीजी के आ जाने से ब्राह्मसमाज में नित्य एक न एक उत्सव हुआ करता है। प्रतिदिन तीसरे पहर, प्रचारक के ठहरने के स्थान में, ख़ासी भीड़ होती है। अनेक श्रेणियों के बाउल, वैष्णव और तान्त्रिक साधकों में हिल-मिलकर गोस्वामीजी जैसी बातचीत करते हैं वह कुछ समझ में नहीं आती; और जो आती भी है तो अच्छी नहीं लगती। गोस्वामीजी सदृश नीतिमान्, सत्यनिष्ठ, आदर्श साधु को राधाकृष्ण-विषयक, स्त्री-पुरुष के प्रणय-संबंधी, गीत सुनकर आँसू बहाते और रोते-रोते अधीर होकर जब-तब मूर्च्छित होते देखकर मैं तो बिलकुल दङ्ग हो जाता हूँ। कुछ दिन पहले अपने घर के आसपास, घाट-बाट, मैदान में किसान प्रभृति नीचे दरजे के आदमियों के मुँह से इस ढँग के गीत सुनकर मैं उन लोगों को लाठी दिखाकर खदेड़ चुका हूँ। हाय! हाय! नीति के आदर्श-स्थान ब्राह्मसमाज के आचार्य गोस्वामीजी का यह कैसा ढङ्ग है! देख-सुनकर मन ही मन में बहुत क्लेश हो रहा है।

ढाका ब्राह्मसमाज में गोस्वामीजी

आजकल पूर्वी बङ्गाल में जहाँ देखो वहाँ गोस्वामीजी की ही चर्चा है। क्या हिन्दू-समाज, क्या ब्राह्मसमाज और क्या देशी ईसाई, सब के यहाँ गोस्वामीजी के ही गुणों का कीर्तन हुआ करता है। अच्छे-अच्छे घरानों में, दफ्तरों के बाबुओं में और स्कूल-कालेजों के छात्रों में अब सिर्फ़ गोस्वामीजी के असाधारण समताभाव, अद्भुत भावावेश और अपूर्व सम्प्रदाय-हीन धर्मानुशीलन की ही चर्चा होती है। हिन्दू समाज के मुखिया प्रसिद्ध ब्राह्मण लोग, अपने धर्म-कर्म में लगे हुए आचार-विचार को अधिक माननेवाले संस्कृत पाठशालाओं के अध्यापक कुछ दिन पहले 'ब्राह्म' शब्द सुन लेने से ही अवज्ञा के साथ 'राधाकृष्ण' और 'राम-राम' कहने लगते थे; अब देखता हूँ कि उनमें भी बहुतेरे, अपनी गाँठ का पैसा ख़र्च करके विक्रमपुर और पारज्वार प्रभृति दूर-दूर के स्थानों से प्रत्येक रविवार को गोस्वामीजी की उपासना में सम्मिलित होने के लिए ब्राह्ममन्दिर में आते हैं। उपासना के समाज में मुसलमान और ईसाई भी चुपचाप बैठे देख पड़ते हैं। ब्राह्मसमाजियों की प्रसन्नता का भला क्या कहना है। वे कहते हैं कि "जो लोग ब्राह्मसमाज में कुछ तथ्य नहीं मानते वे एक बार गोस्वामीजी को क्यों नहीं देखते? ऐसा एक आदमी तो हिन्दू समाज या किसी अन्य समाज में दिखला दें। लोग एक बार आकर देख लें और समझ लें कि ब्राह्मधर्म क्या चीज है और ब्राह्मसमाज में कौन सी वस्तु बन जाती है।" हिन्दू कहते हैं—"गोस्वामीजी अब ब्राह्म नहीं रहे। वस्तु मिल जाने से सोच-समझकर उन्होंने ब्राह्म-धर्म को छोड़ दिया है; सिर मुँड़ाकर और गेरुवे कपड़े पहनकर वे हिन्दू हो गये हैं। वे अब साकार की उपासना करते हैं; राधा-कृष्ण और काली भगवती नाम सुनते ही रोने लगते हैं। हरिसंकीर्तन और गौर-कीर्तन में तो गोस्वामीजी को सुध-बुध ही नहीं रहती। भला यह ब्राह्मसमाजी का लक्षण हो सकता है? ब्राह्मसमाजी क्या हरि-हरि कहकर नाचता है?—या उन लोगों में कभी ऐसे महाभाव का आविर्भाव होता है?" जो हो, मैं देखता हूँ कि सभी सम्प्रदायों के धर्मार्थी लोग गोस्वामीजी की ओर आकृष्ट हैं और उनके सत्सङ्ग को चाहते हैं। ब्राह्मसमाज में प्रतिदिन भीड़-भाड़ रहती है। रविवार को तो समाज-मन्दिर में स्थान ही नहीं मिलता। दिन डूबने से पहले ही लोगों की टोलियाँ आकर बैठ जाती हैं जिससे जगह ख़ाली नहीं रहती। भीतर बाहर मनुष्य ही मनुष्य देख पड़ते हैं।

वेदी का कार्य जब तक पूरा नहीं हो जाता तब तक कोई उठने का नाम नहीं लेता। मत-मतान्तर से बचे रहकर गोस्वामीजी जो उद्बोधन, प्रार्थना, उपासना और उपदेश आदि करते हैं उससे सभी लट्टू हो जाते हैं। वेदी पर बैठकर गोस्वामीजी के कार्य आरम्भ करते ही सभी के हृदय में एक अद्भुत भाव की तरङ्ग उठने लगती है, सभी लोग रोने लगते हैं। थोड़ी ही देर में यह हाल शुरू हो जाता है। बहुतेरे तो अचेत होकर गिर पड़ते हैं। कोई-कोई नीचे लोट-लोटकर विकलता से रोया करते हैं। ब्राह्मसमाज को धन्य है!

गोस्वामीजी के ब्राह्मसमाज-विरोधी कार्य का प्रतिवाद

ब्राह्मसमाज के अन्तर्गत छात्रसमाज के, अपनी हमजोली के, कुछ छात्रों को साथ लेकर मैं ब्राह्मसमाज के अधिकारी श्रीयुक्त रजनीकान्त घोष, श्रीयुक्त नवकान्त चट्टोपाध्याय प्रभृति के पास गया और उनके आगे गोस्वामीजी की चर्चा छेड़ी। मैंने पूछा कि जिस कमरे में गोस्वामीजी का आसन है उसकी दीवारों में चारों ओर राधाकृष्ण, गौर-निताई, महादेव-पार्वती और नन्द-यशोदा प्रभृति के चित्र क्यों लगे हुए हैं; वे बाउल, वैष्णव आदि कुसंस्कारी व्यक्तियों को, धर्म के नाम पर, शरीर के काम इत्यादि विकारों को भड़कानेवाले प्रेम-सङ्गीत आदि गाने के लिए क्यों उत्साहित करते हैं? इस पर कई दिन तक खासी चर्चा होती रही। अन्त में उन लोगों ने कहा—"प्रचारक के ठहरने के स्थान में आजकल गोस्वामीजी ही रहते हैं। अतएव हमको यह जाँच-पड़ताल करने की आवश्यकता नहीं कि अपने घर में कौन क्या करता है और क्या नहीं करता। अगर घर में एक पञ्चाङ्ग हो तो उसमें भी राधाकृष्ण, काली माई आदि का चित्र रहता है। भला इसमें दोष ही क्या है? बाउल और वैष्णव आदि भीख माँगने आकर न जाने क्या-क्या गा जाते हैं, तो क्या इससे किसी को उनका मुँह दाब रखने का अधिकार है? इन कामों को भी उसी ढँग का समझो। अब तक गोस्वामीजी जिस ढर्रे पर चल रहे हैं उसे ब्राह्मसमाज सहन कर सकता है। हाँ, अगर और मंजिल बढ़ेगी तो देखा जायगा।"

अधिकारियों का किया हुआ यह निर्णय सुनने से मन में बड़ा दुःख हुआ। उन्हीं में से किसी पर कटाक्ष करके मैंने कहा—"अश्लील 'टप्पा', 'पाँचाली' और 'कवि-गान' आदि का

संग्रह करके प्रेम-संगीत नाम रखकर देश-विदेश में घर-घर उसका प्रचार करना जिन ब्राह्मसमाजियों की समझ में दोष नहीं है; और जो लोग असत्यमूलक कुछ जल्पना-कल्पना या मिथ्या घटनाओं के थोथे चित्र का, कहानी और उपन्यास के आकार में, प्रचार करके मनुष्य को असत्य से हटाकर सत्य के उजेले में ले जाना चाहते हैं वे यदि गोस्वामीजी के कार्य का प्रतिवाद करें तो खड़े कहाँ हों?" मेरी बात सुनकर बहुतेरे लोग कुछ उत्तेजित हो उठे। मेरे नजदीकी रिश्तेदार और मेरे ही गाँव के रहनेवाले श्रीयुक्त नवकान्त चट्टोपाध्याय ने कहा—"तुम जातिभेद को दोष तो मानते हो, लेकिन उसी के चिह्नस्वरूप जनेऊ को क्यों पहनते हो? हिन्दू-समाज से सम्बन्ध बनाये रखकर क्या तुम पौत्तलिकता को सहारा नहीं देते हो?"

ब्राह्मधर्म की दीक्षा लेने के लिए व्याकुलता

उन्होंने ठीक ही बात कही है, यह समझकर मैं झेंपता हुआ दुखी मन से अपने रहने की जगह लौट आया। मैं सदा मन में उसी बात की आलोचना करने लगा। अपने मन की दुर्बलता और कपटता-पूर्ण आचरण के लिए मैं, कुछ समय तक, बहुत ही दुखी बना रहता था। अब नवकान्त बाबू की उस बात से मेरे भीतर की आग भी जल उठी। मैंने अपने मित्रों से कह दिया कि अगले अगहन महीने में, वार्षिक उत्सव के समय पर, मैं जनेऊ उतार डालूँगा और प्रकट रूप से ब्राह्मधर्म की दीक्षा ले लूँगा। यह खबर सब जगह फैल गई। ब्राह्मसमाजी मित्र लोग मुझे खूब उत्साहित करने लगे; किन्तु चारों ओर रिश्तेदारों और हितैषियों में बेढब हलचल मच गई। मेरे विरुद्ध जितना ही आन्दोलन होने लगा, मेरे नाते-रिश्तेवाले मुझे अत्याचार और उत्पीड़न का जितना ही डर दिखाने लगे, मेरा उत्साह और निर्भयता उतनी ही बढ़ने लगी। मैं गत ४। ५ महीने से, उपासना के समय, नित्य दोनों वक्त, दिल की जलन के मारे रो-रोकर प्रार्थना करता आता हूँ—"प्रभो, जनेऊ पहने रहकर इस असत्य के पर्दे में कब तक अपने को छिपाये रहूँगा? कपटतापूर्ण आचरण से तुम मेरा उद्धार करो। तुम्हीं वह ठीक मार्ग दिखला दो जिससे मैं तुमको प्राप्त कर सकूँ। दया करके मुझे शक्ति दो जिससे मैं कपट से बचकर सत्य मार्ग पर चल सकूँ।"

अपूर्व स्वप्न—गोस्वामीजी का बुलाना

अन्यान्य दिनों की तरह उपासना के अन्त में आज भी उक्त प्रकार से प्रार्थना करके भाद्रपद शुक्ला ६ १९४३ संवत् मैं बिस्तर पर जा लेटा। रात को पिछले पहर (३॥ बजे) एक अद्भुत स्वप्न देखकर मैं एकाएक जाग पड़ा। स्वप्न यह है,—देखा कि मैं ब्राह्मसमाज-मन्दिर के दरवाज़े पर हूँ। बाग़ में, हरसिंगार के नीचे, खड़े हुए गोस्वामीजी स्नेहपूर्वक मुस्करा रहे हैं और हाथ के इशारे से बुलाकर मुझसे कहते हैं।

अजी, जल्दी इधर चले आओ। तुम जो चीज़ चाहते हो वही मैं तुमको दूँगा।

गोस्वामीजी की कृपापूर्ण दृष्टि और प्रेमपूर्वक बुलाने से मैं आनन्द में विह्वल हो गया; भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा से रोता-रोता जाकर मैं उनके चरणों पर गिर पड़ा। बस, इसी समय आँख खुल गई। जाग उठने पर भी गोस्वामीजी की उस सौम्य, शान्त, स्निग्ध-सकरुण पवित्र मूर्ति को मानों थोड़ी देर तक आँखों के आगे देखता रहा। कान से भी मानों उनकी उसी बात को मैं बारंबार सुनने लगा। 'स्वप्न मन के संस्कार का ही विकार अथवा कल्पना का ही एक फल है' बहुत पुरानी इस निश्चित धारणा का मुझे स्मरण ही न रहा। जाग जाने पर भी मैं किसी तरह रुलाई को न रोक सका। बारम्बार ऐसा मालूम होने लगा कि गोस्वामीजी बाग़ में मेरी बाट जोह रहे हैं। मैं थोड़ी देर तक बिछौने पर लेटकर रोता रहा। मैंने प्रार्थना की—"प्रभो, मैं तुम्हारे सम्बन्ध में अन्धा हूँ। जिस मार्ग पर चलने से तुम्हारी प्राप्ति हो उस पर तुम्हीं, दया करके, मुझे ले चलो।" प्रार्थना के साथ ही साथ मेरी बेचैनी और भी बढ़ गई। अब क्या था, मैं रात के पिछले पहर ब्राह्मसमाज-मन्दिर को दौड़ा गया। वहाँ दरवाज़ा बन्द रहने पर भी दीवार को लाँघकर बाग़ में पहुँच गया और निर्दिष्ट स्थान की ओर आगे बढ़ा।

कुछ दूर जाने पर देखा कि ब्राह्मसमाज-मन्दिर के पूर्व ओर, दीवार के पास, उसी हरसिंगार के तले—जैसा स्वप्न में देखा था वैसे ही—सिर मुँड़ाये, गेरुवे कपड़े पहने, पवित्रमूर्त्ति गोस्वामीजी, दण्ड लिये, खड़ाऊँ पहने, प्रफुल्ल दृष्टि से मेरी ओर ताक रहे हैं। ज्यों ही मैं उनके समीप पहुँचा त्योंही उन्होंने मुझे हरसिंगार का फूल दिखला कर कहा—

देखो, कैसा सुन्दर है! मानों दूब के ऊपर लावा खिला हो।

आज तक मैंने माथा झुकाकर कभी गोस्वामीजी के पैर नहीं छुए थे; इसे मैं घोर कुसंस्कार और असभ्यता का काम समझता आया हूँ; सिर्फ़ हाथ उठाकर अथवा सिर हिलाकर ही मैं उनका सम्मान किया करता था; किन्तु आज न जाने क्यों उस विषय का मुझे ध्यान न रहा। मैं रोते-रोते जाकर उनके चरणों पर गिर पड़ा। मैंने कहा—'आप मुझपर दया कीजिए।

गोस्वामीजी ने कहा—बहुत पहले आ जाना चाहिए था। अब तो समय निकल गया। अब कुछ दिन तक प्रतीक्षा करो।

मैं—मेरी इच्छा तो अभी साधन ले लेने की है।

गोस्वामीजी—यह तो बड़े आनन्द की बात है। यही तो समय है। इसी समय तो यह सब किया जाता है। यदि अभी से नियमानुसार साधन-मार्ग पर चलने लगोगे तो इसका सुफल अनन्त काल तक भोगोगे। 'फिर कर लेंगे' के भरोसे रहना ठीक नहीं; फिर न जाने कितने विघ्नों का सामना करना पड़े। अब तो हम शीघ्र ही पछाँह की ओर जानेवाले हैं। हम वहाँ की यात्रा कर आवें; और तुम्हारे स्कूल की भी तो तातील है—घर हो आओ। वहाँ से लौटकर आना, फिर साधन मिलेगा। साधन लेने पर इस समय कम से कम पन्द्रह दिन तुम्हारा हमारे पास रहना आवश्यक होगा। अभी इसमें असुविधा है।

मैं—घर जाकर मैं किस नियम का पालन करूँगा?

गोस्वामीजी—नियम और क्या? जिस तरह रहते हो उसी तरह रहना। ख़ूब पवित्रता से रहना। मन में किसी प्रकार के बुरे विचार को न आने देना—उससे बड़ी हानि होती है। मन को सदा पवित्र और प्रफुल्ल रखना। चित्त प्रफुल्ल नहीं रहता है तो फिर धर्म-कर्म कुछ भी नहीं होता। ख़ूब कातर होकर भगवान् के चरणों में प्रार्थना करनी चाहिए और प्रार्थना के भाव को सदा स्मरण रखना चाहिए। क्या लिखते-पढ़ते समय, क्या बात-चीत करते समय और क्या घाट-बाट में चलते-फिरते, हमेशा पाँच-सात मिनट के बीच तनिक सुस्ताकर,

दो-एक मिनट तक भगवान् का स्मरण करना चाहिए। 'वे सर्वदा साथ ही साथ हैं, मुझे बहुत प्यार करते हैं, क्षण-क्षण में मुझपर न जाने कितने प्रकार से दया करते हैं'—यह सब याद करके बारम्बार उनको नमस्कार करना चाहिए। इस प्रकार हर एक काम में उनका स्मरण करते रहने से, थोड़े समय में ही, वे कृपा कर देते हैं। इस समय लिखने-पढ़ने में विशेष रूप से मन को लगाना चाहिए; लिखने-पढ़ने में लापरवाही करने से अन्त में सभी ओर अनिष्ट होता है। अभी तो इन्हीं बातों को याद रखकर चलने की चेष्टा करो; इससे लाभ होगा।

साधन पाने की तीव्र इच्छा

कुछ दिन के बाद ही दुर्गापूजा के कारण हमारा स्कूल बन्द हो गया। १६ आश्विन शुक्रवार को दोपहर का भोजन करके, प्रसिद्ध 'मीरेर बाग' के मल्लाहों की नाव किराये से लेकर, मँझले दादा और छोटे दादा आदि के साथ मैं घर को रवाना हुआ। तालतला की नहर से कुछ दूर जाकर मल्लाह लोग रास्ता भूल गये। रात को कोई साढ़े नव बजे हम लोग घर पहुँचे। इस बार की बरसात में पद्मा नदी में बहुत पानी बढ़ गया है। देश में प्राय: सभी के घर पानी में डूबने को हैं। हमारे मकान पर भी ७। ८ इञ्च पानी चढ़ आया है। एक घर से दूसरे घर में जाने के लिए पहले से ही अँगनाई में बाँस बिछाकर पुल बना लिया गया है। मुहल्ले में प्राय: सभी के यहाँ डोंगी थी, इससे परस्पर मिलने-जुलने में कोई खास अड़चन नहीं हुई। प्रतिदिन तीसरे पहर १२। १४ हमजोली-वालों के साथ नवकान्त बाबू के यहाँ जाता हूँ। वहाँ पर संकीर्तन और उपासना आदि करके रात को ९ बजे के लगभग घर आता हूँ। उत्तेजित करने से दो मित्रों ने ब्राह्मधर्म ग्रहण कर लिया है। किन्तु, जनेऊ न रहने पर भी, उनके कारण हमारे समाज में कुछ गड़बड़ नहीं है। मुहल्ले के बड़े-बूढ़ों ने उन्हें जनेऊ पहनने के लिए बहुत समझाया-बुझाया किन्तु कुछ सार नहीं निकला। अब वे लोग उस चेष्टा को छोड़कर कहते हैं—अजी हमारी, दुर्नीति के चिह्नस्वरूप गले की रस्सी को तो तुमने छोड़ दिया है; परन्तु अपनी ब्राह्मसमाज की सभ्यता की सुनीति के चिह्न कुर्त्ता-कमीज का सदा पहने रहना क्यों छोड़ दिया? अगर उन्हें पहने रहो तो भी बचाव हो।"

मैंने अभी तक जनेऊ से पीछा नहीं छुड़ाया है इसलिए ब्राह्मसमाजी मित्र लोग बहुत ही दुःखित हैं ; इसके लिए वे लोग सदा मेरी शिकायत करते हैं, समय-समय पर वे मुझे कायर भी कह देते हैं । सभी का ख़याल है कि मैं इस बार छुट्टी के बाद ढाका पहुँचते ही ब्राह्मसमाज में खुल्लमखुल्ला भर्ती हो जाऊँगा । डर के मारे माँ भी घबराई हुई हैं । तुलसीचौरा के सामने एकान्त में चुपचाप बैठकर वे, रो-रोकर, तुलसी को अपने मन का दुःख सुनाती हैं । उनका विश्वास है कि तुलसी की कृपा हो जाय तो मेरा ब्राह्मसमाजी होना रुक जाय । छुट्टी बीत जाने पर ढाका को रवाना होते समय मुझसे माँ ने कहा—"धर्म-धर्म करके जनेऊ को न फेंक देना । भगवान् तेरी मनोकामना पूरी करेंगे । मैं प्रतिदिन महादेवजी को बिल्वपत्र चढ़ाते समय यह प्रार्थना किया करती हूँ कि तू जनेऊ पहने हुए ही धर्म-कर्म करे ।" अब माँ ने अपने हाथ की तीन उँगलियाँ अपनी जीभ से छुवाकर, उसमें पैरों की धूल लगाकर, मेरे माथे में घिस दी । माँ को प्रणाम करके मैं ढाका के लिए रवाना हो गया ।

ढाका पहुँचने पर सुना कि गोस्वामीजी अभी तक नहीं आये हैं ; उनके शीघ्र ही लौटने की आशा है । मैं दिन-रात उनके आगमन की इच्छा से बेचैन होकर समय बिताने लगा । जनेऊ उतारकर ब्राह्मधर्म में दीक्षित होने की मेरी सनक कुछ कम हो गई । मैं रात-दिन सोचने लगा कि देखें गोस्वामीजी मुझे कौन सा साधन देते हैं ।

* * *

अगहन के पहले भाग में ही गोस्वामीजी ढाका में आ गये । छात्र-समाज में बड़ी धूमधाम मच गई । ब्राह्मसमाजियों में अपार आनन्द है । सभी के चेहरे प्रफुल्ल हैं । गोस्वामीजी के आने से फिर लोगों के झुण्ड ब्राह्मसमाज-मन्दिर में आने लगे हैं । ब्राह्मसमाज-मन्दिर में फिर नित्य उत्सव होने लगा । प्रतिदिन शाम को कीर्तन में भाव के विचित्र विकास और उमङ्ग से सभी के चित्त गोस्वामीजी की ओर आकृष्ट होने लगे । सुना है कि इस बार गोस्वामीजी काकिनिया प्रभृति स्थानों में जाकर उपासना, व्याख्यान और संकीर्तनोत्सव द्वारा सजीव धर्म का एक अनोखा सोता बहा आये हैं ।

साधन मिलने में बाधा—छोटे दादा

अगहन, प्रथम सप्ताह, १९४३ सं०

अगले शनिवार को छात्रसमाज में वक्तृता देने के लिए गोस्वामीजी से अनुरोध करने को, कुछ मित्रों के साथ, मैं 'प्रचारक-निवास' में गया। देखा कि वक्तृता देने का गोस्वामीजी को अब पहले जैसा उत्साह नहीं है। जो हो, उन्होंने कहा कि शरीर ठीक रहेगा तो चेष्टा करेंगे। मेरे मित्र लोग यह उत्तर पाकर चले गये। किन्तु मैं उनके पास ही बैठा रहा। उस समय वहाँ पर केवल श्रीयुक्त श्रीधर घोष और अनाथबन्धु मौलिक बैठे हुए थे। उन्होंने मुझसे कहा—"क्या तुम्हें एकान्त में कुछ पूछताछ करनी है?" इसपर गोस्वामीजी ने मेरी ओर देखकर कहा—**पूछो, क्या पूछना है? इन लोगों के सामने पूछने में कुछ शङ्का मत करो; जी खोलकर कहो।**

मैंने कहा—स्कूल बन्द होने से पहले ही मैं एक बार कह चुका हूँ।

गोस्वामीजी—**हाँ, अच्छा वही बात? साधन लेना चाहते हो? तो साधन के नियम और प्रणाली सब जानते हो न?**

मैं—जितना प्रकट है उतना ही जानता हूँ।

गोस्वामीजी—**यह साधन ले लेने पर जो जिस अवस्था का आदमी है उसे उसी अवस्था का सब काम करना पड़ता है। गृहस्थों को गृहस्थी के कामकाज में लापरवाही करना अनुचित होता है। इसी प्रकार छात्रों को लिखने-पढ़ने में नियम से मन लगाना होगा, नहीं तो अनिष्ट होता है। पहले जाकर इसे अच्छी तरह समझ लो; फिर कल आकर हमसे कहना। और जो कुछ कहना है सो कल कहेंगे।**

गोस्वामीजी का उत्तर सुनकर मैं प्रचारक-निवास से चला आया। बूढ़ी गङ्गा के पार जाकर, एक एकान्त स्थान में बैठकर, सोचने लगा—'यह क्या हुआ? साधन मिलने से पहले ही गोस्वामी ने एकदम मेरी खोपड़ी पर लाठी जमा दी। दो महीने से प्रतिदिन मन ही मन संकल्प करता रहा हूँ कि एक बार योग-साधन मिल भी जाय फिर लिखने-पढ़ने की झञ्झट में कौन पड़ता है। किसी मानव-हीन पहाड़ पर जाकर खुशी से ऋषि-मुनियों की तरह दिन-रात उपासना करते-करते जीवन बिता

दूँगा। किन्तु गोस्वामीजी ने आज यह क्या किया? मेरे इतने दिनों के आन्तरिक संकल्प को बिलकुल चूरमूर कर दिया!' रात को कोई साढ़े नव बजे तक यही सोचते-सोचते मैं बहुत ही चिन्तित और चञ्चल हो उठा। दूसरा उपाय न देखकर एकाग्र मन से गोस्वामीजी के चरणों के प्रति नमस्कार करके जतलाया—"गोस्वामीजी, मेरे ऊपर दया करो। मैं प्रतिज्ञाबद्ध नहीं हो सकता। 'नियम से' 'मन लगाना'—इन बातों पर मैं राज़ी न हो सकूँगा। मैं तो इतना ही कह सकूँगा कि लिखूँगा-पढ़ूँगा। मुझे निराश मत कर देना। मेरे दिल के दर्द को जानकर दया करो—तुम्हारे चरणों में यही प्रार्थना है।" मुझे विश्वास नहीं कि गोस्वामीजी मन की बात जान लेते हैं। किन्तु भीतर के आवेग से उल्लिखित प्रार्थना अपने आप मुँह से निकल पड़ी; मैं उसे रोक न सका।

दूसरे दिन मौक़ा देखकर मैं गोस्वामीजी के पास गया। प्रणाम करके बैठते ही मुझसे उन्होंने कहा—**क्यों? सोच समझ लिया?**

मैंने कहा—जी हाँ। लिखता-पढ़ता रहूँगा।

गोस्वामीजी ने तनिक हँसकर कहा—**अच्छा! तो हमें एक बात और भी कहनी है। अब हम कुछ रोक-टोक न करेंगे। सिर्फ़ तुम्हारे अभिभावक की सम्मति मिलने की देर है। अभिभावक के सम्मत न होने पर साधन देने का नियम नहीं है। सौ वर्ष के बूढ़े का भी यदि कोई अभिभावक हो तो उसकी स्वीकृति लेनी पड़ती है। तुमसे अब कुछ कहना-सुनना नहीं है। अभिभावक के राज़ी होने भर की देर है।**

यह सुनने से तो मानों मेरे सिर पर गाज गिरी। सोचा कि गोस्वामीजी ने तो मुझे और भी मुश्किल में ला फँसाया। मैंने उनसे पूछा—अभिभावक की अनुमति मैं किस प्रकार लूँ? मेरे तीनों ही बड़े भाई अभिभावक हैं।

गोस्वामीजी ने कहा—हाँ; **यहाँ पर तुम्हारे जो दादा हैं उनकी एक चिट्ठी मिलते ही हम सन्तुष्ट होकर तुम्हें, बेखटके, साधन दे सकते हैं। बहुत लोग समझते हैं कि छोटी उम्र के लड़कों को, यह साधन देकर, हम चौपट कर देते हैं। अतएव अनुमति न लेकर साधन दे देने से उन लोगों का अभिशाप हमें लेना पड़ता है।**

गोस्वामीजी के एक शिष्य वकील श्रीयुक्त हरिचरण चक्रवर्त्ती ने इसी समय पूछा—तो क्या इसे साधन मिलेगा ?

गोस्वामीजी ने कहा—**कल देखा था कि ख़ासी व्याकुलता है, अब दशा अच्छी हो गई है।**

मुझसे कहा—**तुम घबराना नहीं; साधन तो तुम्हें मिलेगा ही। थोड़े समय तक धैर्य रक्खो।**

मैं बख़ूबी जानता था कि बड़े भाइयों से अनुमति मिलने की नहीं; किन्तु गोस्वामीजी की पिछली दोनों बातों से मुझे कुछ आशा हुई। शाम को डेरे पर जाकर छोटे दादा श्रीयुक्त शारदाकान्त वन्द्योपाध्याय को मैंने अपना सब हाल सुनाकर कहा कि गोस्वामीजी से दीक्षा लेने के लिए अनुमति-पत्र लिख दीजिए। गोस्वामीजी से साधन लेने की बात सुनते ही वे बहुत ही नाराज़ हुए; उन्होंने अनुमति देने से साफ़ इन्कार कर दिया। छोटे दादा की बातें सुनकर और रँग-ढँग देखकर मेरा सिर चक्कर खाने लगा। मैं रज़ाई ओढ़कर लेट रहा। रात को दस बजे के लगभग मन की यातना मेरे लिए इतनी असह्य हो गई कि मैं, रोक रखने में असमर्थ होकर, फूट-फूटकर रोने लगा। छात्रावास (मेस) के छात्र रोना सुनते ही लिखना-पढ़ना छोड़कर मेरे चारों ओर, यह जानने के लिए, आ खड़े हुए कि इसको क्या हुआ है। छोटे दादा भी आये और मुझे बुलाकर डेरे के बाहर रास्ते में ले गये। उन्होंने बहुत ही चिढ़कर कहा—"मेरे आगे प्रतिज्ञा करो कि हम लोगों की राय के विरुद्ध कभी कोई काम नहीं करोगे; जब तक लिखने-पढ़ने के लिए कहेंगे, ख़ूब मन लगाकर पढ़ते रहोगे; और कभी ऐसा कोई काम न करोगे जिससे हमारा घराना बदनाम हो।" मैंने कहा—"बहुत अच्छा; अनुमतिपत्र दीजिए, आप जैसा कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा।" छोटे दादा ने तनिक रुककर कहा—"अच्छा, कल और भी कुछ बातों की फ़ेहरिस्त बना दूँगा; उसके अनुसार बर्ताव करने की प्रतिज्ञा करने से मैं अनुमति दे दूँगा।" जैसे बने, अनुमति तो लेनी ही होगी, यह सोचकर मैंने छोटे दादा की बात मान ली।

सबेरे छोटे दादा के पास जाकर अनुमति-पत्र माँगा तो उन्होंने नाराज़ होकर, मुझे धमकाकर, कहा—"यह कुछ न होगा। योग करने से भयानक रोग हो जाते हैं। दिमाग़ तो बिलकुल ख़राब हो जाता है। बहुत अच्छे-अच्छे आदमी उसके चक्कर में पड़कर सदा के लिए बिलकुल निकम्मे 'भेड़ा'

मार्गशीर्ष शुक्ला ३, रविवार, १९४३ संवत्

हो गये हैं। मैं तो अनुमति दूँगा ही नहीं, साथ ही बड़े भाइयों को चिट्ठी लिखूँगा जिसमें वे भी अनुमति न दें।" यह सब कहकर उन्होंने मुझे बहुत गालियाँ दीं। छोटे दादा की गालियाँ खाकर क्रोध और क्लेश के मारे मेरी छाती में जलन होने लगी। अब क्या करूँ? दूसरा उपाय न देखकर गोस्वामीजी के पास पहुँचा। उन्हें सब हाल खुलासा कह सुनाया।

गोस्वामीजी ने कहा—**स्वयं अनुमति नहीं देते तो न दें। बड़े भाइयों को तनिक लिख देने में क्या रुकावट है?**

निष्कपट विश्वास में अव्यर्थ शक्ति

इस समय प्रचारक-निवास में बहुतेरे आदमी आ गये। इससे फिर कुछ बातचीत नहीं हुई। आज रविवार है। दिन भर प्रचारक-निवास में गोस्वामीजी के पास भीड़-भाड़ रहेगी। तीसरे पहर स्कूल-कालेज के छात्रों, दफ़्तरों के बाबुओं एवं बाउल, वैष्णव, मुसलमान और ईसाई प्रभृति के समागम से ब्राह्मसमाज-मन्दिर के प्राङ्गण में तिल रखने को जगह नहीं रही। गोस्वामीजी के उपासनावाले कमरे में कृष्णकान्त पाठक का गीत "जार जार जेरूप उदय हय मने, समये सेरूपेर देखा मिले कई?"* खासा जम गया। जो लोग कमरे से बाहर थे वे भी भाव में मस्त होकर गिरने लगे। अब शाम हो चली। नियमित समय पर वेदी के कार्य में कहीं विघ्न न हो, इसलिए गीत रोकवा दिया गया। गोस्वामीजी मुँह और आँखें धोकर समाज-मंदिर के कमरे में उपासना करने जा बैठे। कमरे में अथवा कमरे के बाहर जो जिस हालत में था वह, वेदी का कार्य पूरा होने तक, उसी हालत में रहा। गोस्वामीजी की उपासना में एक बार थोड़ी देर के लिए कोई शामिल हो जाय तो फिर उसका जी उपासना की समाप्ति तक उठने को नहीं चाहता था। आज 'उद्बोधन' के समय जो उपदेश दिये गये वे, ऐसा मालूम हुआ कि, मुझी को दिये जा रहे हैं। सरल विश्वास के साथ, सचमुच कातर होकर, कोई भगवान् से प्रार्थना करे तो वे उसकी प्रार्थना अवश्य पूरी करते हैं, इसके दृष्टान्त में गोस्वामीजी ने एक घटना का उल्लेख किया।

---

* मन में जिस-जिस का जो रूप प्रकट होता है, समय पर फिर उसके दर्शन कहाँ मिलते हैं?

यूरोप के किसी देश में बहुत दिनों तक पानी नहीं बरसा। सब जगह बरसात के लिए प्रार्थना की गई। उस समय एक शहर में विज्ञापन दिया गया कि सब लोग सम्मिलित होकर एक साथ बरसात के लिए प्रार्थना करेंगे। निर्दिष्ट दिन, शाम होने से पहले ही, नगर-वासी लोग गिरजे में एकत्र होने लगे। इसी समय एक बालक, हाथ में छतरी लिये हुए, उपासना के स्थान में आया। बच्चे के हाथ में छतरी देखकर सभी कहने लगे—अजी, तुम तो बिलकुल मूर्ख जान पड़ते हो। भला इस समय छतरी की क्या ज़रूरत है?" बच्चे ने कहा—"आज पानी बरसने के लिए प्रार्थना की जायगी। भगवान् जब पानी बरसाने लगेंगे तब क्या करूँगा? छतरी न रहेगी तो घर जाते समय मुझे रास्ते में भीगना पड़ेगा।" बालक का यह उत्तर सुनकर सभी लोग दङ्ग रह गये। प्रार्थना हो चुकने पर सचमुच पानी बरसा। तब उस बालक ने सब लोगों से कहा—"अगर तुम लोगों को भगवान् पर भरोसा होता तो ज़रूर छाता लेकर आते। देखो न, तुम लोगों को रुक जाना पड़ा और मैं यह चला।" इस घटना के आधार पर गोस्वामीजी ने देर तक 'सरल विश्वास और कातरता के साथ प्रार्थना' विषय पर उपदेश दिया; इसके बाद उपासना के अन्त में हाथ जोड़कर सभी को नमस्कार करते हुए कहा—

तुम लोगों के पैर पकड़कर कहता हूँ कि एक बार माता को पुकारो। बच्चा जिस तरह माँ को बुलाता है, उसी तरह कातर होकर एक बार माँ को बुलाओ। माँ को बड़ी दया है! मुझ जैसे पापी पर भी जब वे दया करती हैं, तब और कोई क्यों ख़ाली रह जायगा। विश्वास के साथ माँ को बुलाने से अवश्य वे आवेंगी। मैं सुनी-सुनाई बात नहीं कहता, कल्पना की बात भी नहीं करता, सच कहता हूँ, अपने जीवन में देखी हुई बात कहता हूँ। खुद आज़माइश करके कहता हूँ। सरल भाव से माँ को पुकारा जाय तो वे मिल जाती हैं। एक बार उन्हें बुला देखो; उस तरह से एक बार माँ को बुला देखो सही, वे अवश्य दया करेंगी। मेरे सिर पर चरणों की रज डालकर सब लोग मुझे आशीर्वाद दो। जय माँ! जय माँ! जय माँ! तुम्हीं सत्य हो; तुम्हीं सत्य हो, तुम्हीं सत्य हो।

साधन मिलने में बाधा—मँझले दादा

मार्गशीर्ष शुक्ला ९
मङ्गलवार, १९४३ सं०

आज स्कूल से आने पर छोटे दादा ने कहा "मँझले दादा (श्रीयुक्त वरदाकान्त वन्धो-पाध्याय) ढाका आये हुए हैं; वे इकरामपुर में अपनी ससुराल में ठहरे हैं। कल तीसरे पहर उन्होंने तुम्हें अपने पास बुलाया है।" मँझले दादा शब्द सुनते ही मेरा दिल धड़कने लगा। समझ लिया कि साधन-सम्बन्धी चर्चा छेड़कर वे अवश्य ही मुझे बुरी तरह धमकावेंगे। सारी रात और दूसरे दिन बड़ी घबराहट रही; निर्दिष्ट समय पर मैं वहाँ गया जहाँ पर वे ठहरे हुए थे। मँझले दादा के पैर छूकर ज्योंही मैं उनके आगे खड़ा हुआ त्योंही वे आग-बबूला हो गये। बहुत ही तीखी भाषा में ज़ोर-ज़ोर से गालियाँ देते-देते वे पागल से हो गये। हाथ में चप्पल लेकर मुझे मारने के लिए दो-चार क़दम बढ़े भी; भाग्य से उस समय भौजाई के रोकने पर रुक गये। अन्त में मुझसे कहा—"अगर फिर कभी तेरे मुँह से 'योग' शब्द सुना तो जूतियाँ मारते-मारते तेरी पीठ की चमड़ी उधेड़ दूँगा। जितने प्रकार से हमारा अपमान किया जा सकता है, तू कर रहा है; तू मर जाय तो उत्पातों से हम लोगों का पिण्ड छूटे"—इत्यादि। कोई आध घण्टे तक इस तरह की गालियाँ खाकर मैं रोते-रोते वहाँ से चला आया। एक स्त्री के सामने इतना अपमान! क्रोध, अभिमान और क्लेश के मारे आत्महत्या करने की इच्छा हुई। तय किया कि एक बार और योगसाधन प्राप्त करने का उद्योग कर देखूँगा; अगर सफलता न होगी तो फिर जो करना होगा सो कर डालूँगा। आज भगवान् को साक्षी करके प्रतिज्ञा की—यदि तुम्हारी कृपा से इस जीवन में यह साधन प्राप्त हो जायगा तो अपनी योगशक्ति का प्रयोग सब से पहले दारुण विरुद्ध मतिवाले मँझले दादा पर करूँगा और फिर छोटे दादा पर। उक्त प्रयोग द्वारा इन्हें लाकर गोस्वामीजी के चरणों में चढ़ाऊँगा। दीक्षा मिलने के बाद पहले मेरे इसी संकल्प से साधन भजन तपस्या का आरम्भ होगा।

निराशा में दिलासा

अभिभावकों की सम्मति लेकर दीक्षा लेना तो मेरे लिए दुर्लभ है, यह समझकर गोस्वामीजी के ऊपर मुझे बड़ी खीझ पैदा हुई। निश्चय किया कि और एक बार दीक्षा के लिए कहूँ तो सही; यदि इस बार भी गोस्वामीजी, पहले की तरह, उलझन डालें या उज्र करें तो फिर मैं खरी-खरी सुनाये बिना न रहूँगा। यह इसलिए कि ब्राह्मधर्म में हज़ारों लोगों

को जो उन्होंने दीक्षा दी है उसके लिए क्या कभी किसी अभिभावक के मतामत की उन्होंने बाट देखी है? इसके सिवा किसी घराने का मुखिया यदि नास्तिक हो तो क्या उस घराने के किसी व्यक्ति को भगवान् के नाम लेने का अधिकार ही न रहेगा? अभिभावक की सम्मति लेने की आवश्यकता सबके लिए है या सिर्फ़ मेरे लिए ही?

स्कूल से छुट्टी पाकर मैं सीधा गोस्वामीजी के पास पहुँचा। बड़े भाइयों की अनुमति न मिलने की सूचना पाते ही उन्होंने मुझसे पूछा—**तुम्हारे बड़े भाई कहाँ पर हैं?**

मैंने कहा—बड़े दादा (श्रीयुक्त हरकान्त वन्द्योपाध्याय) अवध के फ़ैज़ाबाद शहर में असिस्टेंट सर्जन हैं।

गोस्वामीजी—**अच्छा तुम उन्हीं से लिखकर अनुमति माँगो। वे अनुमति दे देंगे। घबराओ मत, सब ठीक-ठाक हो जायगा।**

"यदि बड़े दादा भी अनुमति न दें तो क्या होगा?" यह बात कहते ही श्रीयुक्त हरिचरण चक्रवर्ती प्रभृति गोस्वामीजी के कुछ शिष्यों ने, मेरी उस बात को काटकर, हाथ पकड़कर मुझे बाहर ले जाकर कहा—'यह क्या करते थे? गोस्वामीजी की बात को दुलखते थे? ऐसा करना अपराध है। वे जो कहें वही करो, बड़े दादा को चिट्ठी लिख दो। जब गोस्वामीजी कहते हैं तब भाई जरूर अनुमति दे देंगे।" यह सुनकर मैं विस्मित हो गया; हँसी भी आई। सोचा—"हाय भगवन्! ब्राह्मसमाज में ऐसे कुसंस्कारी आदमी भी आते हैं।" खैर, किसी से बिना कुछ कहे-सुने मैं अपने डेरे पर चला आया; और सारा हाल खोलकर मैंने बड़े दादा को अनुमति के लिए पत्र लिख दिया।

साधन ले लेने के लिए बड़े दादा की सम्मति

मार्गशीर्ष, मध्यभाग

पत्र पाते ही बड़े दादा ने मुझे फ़ौरन् उत्तर लिखा। यह जानकर कि मैं गोस्वामीजी से योग-साधन प्राप्त करूँगा उन्होंने, संतोष प्रकट करके, मुझे उत्साहित किया और अनुमति दे दी। लेकिन उन्होंने पत्र के अन्त में लिखा है—"भगवान् को प्राप्त करने के लिए तुम जिस मार्ग को ग्रहण करने के लिए उतावले हो रहे हो उसमें मेरी ओर से कुछ रुकावट नहीं है, बल्कि मैं तो संतोषपूर्वक तुम्हें इसके लिए उत्साहित ही करता हूँ। किन्तु हम लोगों की माताजी जीवित हैं; अतएव इस विषय में

एक हमीं से पूछना ठीक नहीं, माताजी की भी अनुमति ले लेना ठीक होगा।' पत्र पढ़कर मैं चटपट गोस्वामीजी के पास पहुँचा। दादा की चिट्ठी का सारांश सुनाने पर उन्होंने कहा कि सबके आगे पूरा पत्र पढ़ सुनाओ। उसे सुनकर सब लोगों ने दादा की बहुत बड़ाई की। गोस्वामीजी ने मुझसे कहा—

यह पत्र तुम्हारे लिए दस्तावेज है, इसे सावधानी से रखना। अब तो तुम्हारा प्रायः सब काम पूरा होने को है। एक ही काम रह गया है। उसके होते ही काम बन गया समझो। तुम्हारे दादा ने माताजी की आज्ञा प्राप्त करने के लिए लिखा है। सो तुम एक दिन घर जाकर उनसे आज्ञा माँग लाओ, बस।

मैंने कहा—योग की बात सुनकर माँ मुझे कभी अनुमति न देंगी। वे समझेंगी कि मैं 'धर्म-धर्म' करके घर-गृहस्थी छोड़कर चला जाऊँगा।

गोस्वामीजी ने कहा—**माँ से तुम योग-ओग की चर्चा न करना; यही कहना कि 'साधन लेंगे।' बस, वे अनुमति दे देंगी।**

गोस्वामीजी की बात सुनकर मैं सोचने लगा—अब किस हिकमत से घर जाऊँ! घर जाना चाहूँगा तो दोनों बड़े भाई जाने का कारण पूछेंगे। तब तो सब बातें खोलकर बतलानी होंगी। इस समय घर जाने में मुझे जो मुश्किल है उसको बतला देने की इच्छा हुई; किन्तु उसी समय बहुत लोगों के आ जाने से बतलाने का मौक़ा नहीं मिला। मैं डेरे को लौट गया।

ब्राह्मसमाज-मन्दिर में वार्षिक उत्सव

आज वार्षिक उत्सव के कारण ब्राह्मसमाज-मन्दिर में स्त्री-पुरुषों की ख़ासी भीड़भाड़ हुई। क्या मन्दिर और क्या चारों ओर की अँगनाई, कहीं मनुष्यों को जगह नहीं मिलती थी। गोस्वामीजी अपने आसन से आकर उपासना करने के लिए वेदी पर बैठे। शरत्काल की 'दुर्गापूजा' के आने से, उसकी अवाई का ख़याल करने से, तमाम देशवासियों में जो एक आनन्द उत्सव और उमङ्ग उत्पन्न होती है उसका वर्णन करके उन्होंने उपासना के पहले ही सब के हृदय में एक अद्भुत भाव का सञ्चार कर दिया। उपासना करने के लिए बैठकर दो-चार बातें कहकर ही वे भाव में मग्न होकर झूम-झूमकर गिरने लगे।

यह माँ हैं! हमारी माता आई हैं। हमारी माँ आज अपने कङ्गाल लड़कों के खिलाने के लिए हाथ में प्रसाद की थाली ले आई हैं। प्रसाद लिये

हुए माँ हमें ललचा रही हैं। माँ, आज मैं अकेला न लूँगा; पहले सबको हाथ पकड़कर प्रसाद दो, तब मैं लूँगा।

यही सब कहकर, मानो साक्षात् भगवान् को देखकर, वे गद्गद भाव से हाथ जोड़े हुए, रोदन-पूर्ण स्वर में स्तुति करने लगे। गोस्वामीजी की प्रत्येक बात के, प्रत्येक शब्द के साथ-साथ शरीर रोमाञ्चित होने लगा। एक प्रकट भाव ने सबको मतवाला कर दिया। मन्दिर के बाहर, भीतर, सब जगह भाव की उमङ्ग का 'हुँ हुँ' शब्द होने लगा। स्त्री-पुरुषों के बीच रोने की ध्वनि होने लगी। डाक्टर पी० के० राय प्रभृति दो-चार गण्य-मान्य पदाधिकारी ब्राह्मसमाजी, गड़बड़ को रोकने के लिए, 'ठहरिए, ठहरिए, चुप रहिए' आदि कहने लगे। पर वहाँ कौन किसकी सुने? मामला बेढब देखकर श्रीयुक्त चन्द्रनाथ राय ने हारमोनियम का सुर बढ़ाकर गाना शुरू कर दिया। इधर गोस्वामीजी **जय माँ, जय माँ** कहकर वेदी से कूद पड़े। ज़ोर से संकीर्तन होने लगा, गोस्वामीजी नृत्य करने लगे। चारों ओर बालक-बूढ़े-जवान स्थान-स्थान पर बेहोश होकर गिर गये। हुंकार, गर्जन और विचित्र भावोच्छ्वास की ध्वनि से ब्राह्ममन्दिर परिपूर्ण हो गया। क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी आज इस महोत्सव में मस्त हो गये। मालूम नहीं, इस तरह कितना समय बीत गया। अन्त में गोस्वामीजी **हरि बोलो, हरि बोलो, शान्त हो जाओ, शान्त हो जाओ** कहकर, हाथ से सबका माथा छूकर घूमने लगे। उनके हाथ छुलाने की देर थी कि जो नाच रहे थे वे बैठ गये, जो चिल्ला रहे थे वे चुप हो गये, और जो बेहोश पड़े थे उन्हें होश हो गया। अपूर्व अद्भुत दृश्य था! बात की बात में ब्राह्मसमाज-मन्दिर ने फिर शान्त स्तब्ध और गम्भीर भाव धारण कर लिया। गोस्वामीजी फिर वेदी पर जा बैठे। भाषा से प्रकट न की जा सकनेवाली आज की नीरव उपासना के भाव को प्रकट करने का कोई उपाय नहीं है। आगे याद बनी रहने के लिए इस घटना के बहुत ही साधारण आभास को यहाँ पर लिख छोड़ा है। मैंने ब्राह्ममन्दिर में ऐसी घटना इससे पहले नहीं देखी।

गोस्वामीजी का उपदेश—प्रार्थना की रीति में भेद

आज वेदी पर बैठकर गोस्वामीजी उपदेश देने लगे—

जीवन में धर्म का दृढ़तापूर्वक अवलम्बन न किया जाय तो वह कभी नहीं टिकता, अधिक दिन तक स्थायी नहीं रहता। हम लोग परमेश्वर को

चार प्रकार की अवस्थाओं में बुलाते हैं। पानी, हवा, भोजन और गर्मी आदि के द्वारा जिस तरह इस देह की रक्षा होती है, पुष्टि होती है; इनमें से किसी एक चीज़ के न रहने पर जिस तरह देह उसे माँगने लगती है और जब तक वह चीज़ मिल नहीं जाती तब तक बेचैनी नहीं हटती; उसी तरह आत्मा के कल्याण के लिए, उसकी उन्नति के लिए परमेश्वर की उपासना की भी आवश्यकता होती है। आत्मा तो स्वभाव से ही परमेश्वर को पुकारती है, उनकी उपासना करती है; नहीं करती है तो उसे कल नहीं पड़ती। परमेश्वर से कुछ आशा नहीं है, किसी चीज़ के लिए प्रार्थना भी नहीं करनी है; मुक्ति भी न चाहिए, भक्ति की भी परख नहीं है। वे "प्राण प्राण के जीवन जी के हैं", उनको पुकारे बिना नहीं रहा जाता, इसी से उन्हें पुकारते हैं; इस प्रकार स्वभाव से ही उनको पुकारना बड़ा दुर्लभ है और असल में यही सबसे बढ़कर है।

किसी चीज़ के न रहने पर भी हम भगवान् को पुकारते हैं। किसी विषय में कमी मालूम होने पर—उसके न रहने पर—उस कमी को हटा देनेवाला जब हमें कोई नहीं मिलता, उस कमी के क्लेश को हटाने में जब हमारी विद्या, बुद्धि, उद्योग, सामर्थ्य बिलकुल बेकाम हो जाता है, तब चारों ओर अँधेरा देखकर हम उन्हीं के शरणापन्न होते हैं, उन्हीं को बुलाते हैं। इस रूप में भगवान् को बुलाना भी भला है; इससे भी जीवन का बहुत कल्याण होता है। किन्तु किसी चीज़ की कमी होने पर, सङ्कट पड़ने पर, तो उन्हें पुकारा और अभीष्ट चीज़ मिल जाने पर फिर उनके साथ कोई सरोकार न रक्खा; बीमारी की तकलीफ़ में तो उनकी दुहाई दी और चङ्गे होते ही उन्हें भूल-भाल गये—यह हालत होने पर, इस तरह से उनके याद करने पर, जीवन का रत्ती भर भी उपकार नहीं होता। काम बन जाने पर कृतज्ञता को बनाये रखने में ही भला है, नहीं तो सब गुड़ गोबर हो गया।

संशय को हटा देने के लिए, जिज्ञासु भाव से भी, हम भगवान् को बुलाया करते हैं। सुनते हैं कि धर्म नाम की एक बड़ी अद्भुत वस्तु है;

धर्म-कर्म करने से, भगवान् को पुकारने से कुछ भी क्लेश नहीं रहता, किसी प्रकार की अशान्ति हृदय तक पहुँच ही नहीं पाती। अच्छा तो एक बार धर्म-कर्म करके, जप-तप करके, भगवान् को याद कर देख ही न लेना चाहिए कि यह कहना कहाँ तक ठीक है। हिन्दूधर्म की अपेक्षा ब्राह्मधर्म भला है। अच्छा, कुछ दिन तक समाज में जाकर देख ही क्यों न लें? लोग धर्म-धर्म कहकर बहुत कुछ स्वार्थत्याग करते हैं; न जाने कितना अपमान, साँसत और यन्त्रणा सहते हैं। इसके भीतर कुछ आराम की चीज़ हो भी सकती है। अच्छा, एक बार कोशिश करके देख ही क्यों न लिया जाय कि इसमें कुछ है या नहीं—इस ढंग के आदमी ही आजकल अधिक हैं। इनकी प्रार्थना और उपासना आदि सन्देह से भरी रहती है। मानों ये भगवान् की जाँच-पड़ताल करने आते हैं। बिना ही श्रद्धा-भक्ति के, सन्दिग्ध मन से, ये लोग भगवान् को पुकारते हैं जिससे इनके हाथ कुछ नहीं लगता।

हम लोग देखादेखी भी, नक़ल के तौर पर, भगवान् को याद किया करते हैं। 'जो लोग धर्मात्मा हैं उनका लोग एक प्रकार का सम्मान करते हैं; धर्मात्माओं पर लोग एक प्रकार का विश्वास करते हैं। थोड़ा सा धर्म-कर्म करने से, भगवान् के नाम का स्मरण करने से लोगों में यदि प्रतिष्ठा मिलती है तो क्या हानि है? आदर पाने के लिए मनुष्य न जाने क्या-क्या करता है। हम यदि तनिक सा धर्म का अनुकरण ही करके, कीर्तन आदि में दो-चार बार 'हरि बोलो' चिल्लाने और कूद-फाँद करने से अथवा उपासना में दो-चार बूँद आँसू ढलका देने से ही वह सम्मान प्राप्त कर सकें तो लाभ के सिवा हानि ही क्या है? एक बार कर देखें न?' इस तरह कपटता से धर्म की नक़ल करना बहुत ही ओछापन है। इससे कल्याण तो कुछ होता नहीं, उलटी आत्मा की अधोगति होती है।

साधन प्राप्त करने के लिए माता की आज्ञा

उत्सव के अन्त में एक दिन, शाम हो जाने के बाद, छोटे दादा ने कहा—'कुछ ज़रूरी सामान घर पहुँचा आने के लिए मँझले दादा ने कहला भेजा है। वह सब लेकर
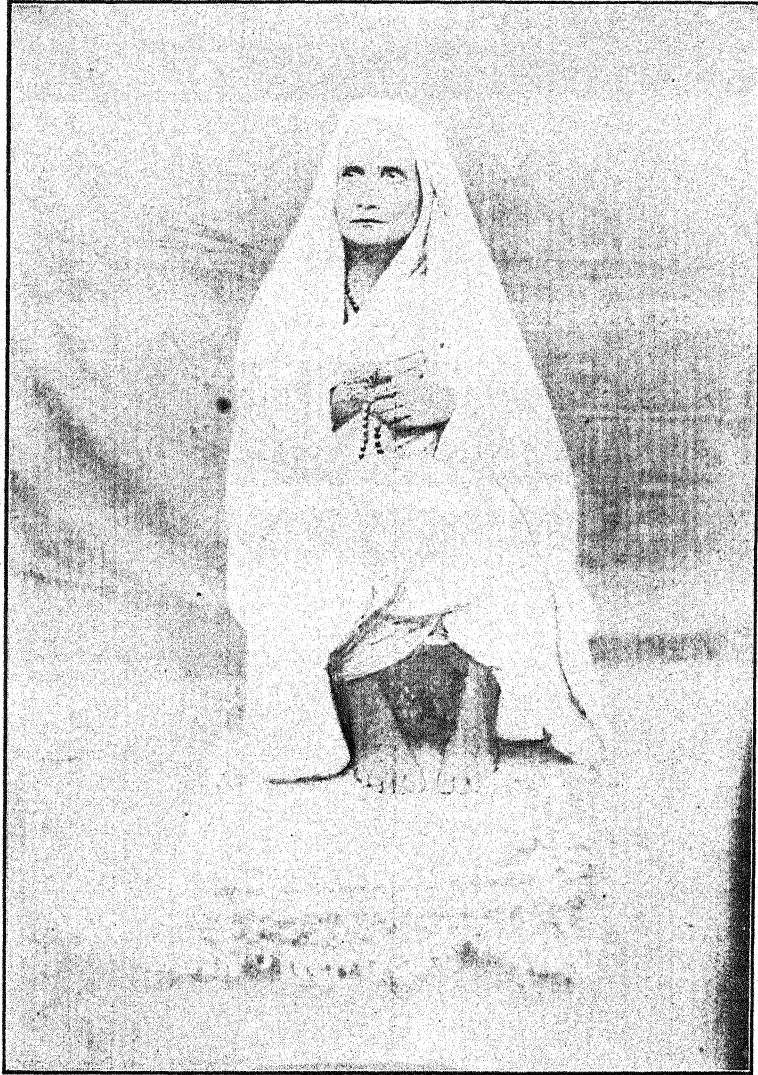
श्रीश्रीहरसुन्दरी देवी

श्रीयुक्तेश्वरी-मा-ठाक्रुण श्रीश्रीयोगमाया देवी

तुम कल ही घर चले जाना।' मुझपर भगवान् की बड़ी कृपा है! दूसरे ही दिन सबेरे घर के लिए रवाना हो गया। इधर सालाना उत्सव भी समाप्त हो गया। सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध हो चुकी थी कि मैं इसी उत्सव में जनेऊ उतार डालूँगा और ब्राह्मधर्म की दीक्षा ले लूँगा। श्रीयुक्त रजनीकान्त घोष, डाक्टर पी० के० राय और नवकान्त बाबू प्रभृति बहुत लोगों ने मुझे उत्साहित करके कहा था—"ब्राह्म हो जाने पर यदि भाई लोग तुम्हारे पढ़ने-लिखने का ख़र्च देना बन्द कर देंगे तो हम लोग तुम्हारा सब ख़र्च सँभाल लेंगे।" माताजी भी समझती थीं कि अब मैं कुछ जरूर कर डालूँगा। अकस्मात् बे-मौक़े मुझे घर पहुँचते देखकर माँ को अचम्भा हुआ। मेरे गले में जनेऊ देखने से उन्हें सन्तोष हो गया। दूसरे दिन जब माताजी पूजा-पाठ कर चुकीं तब, मौक़ा पाकर, मैंने उनके पैरों पर सिर रखकर कहा—'माँ, आज्ञा दो, मैं दीक्षा लूँगा।' यह सुनते ही वे काँप उठीं। कहने लगीं—'तो क्या तू जनेऊ तोड़कर ब्राह्मसमाजी हो जायगा?' मैंने उत्तर दिया—'नहीं माँ, मैं गोस्वामीजी से साधन लूँगा। जो तुम आशीर्वाद देकर मुझे इसके लिए अनुमति न दोगी तो वे मुझे साधन न देंगे।' यह कहकर मैंने फिर झुककर उनके चरण पकड़ लिये। अब माता ने मेरे माथे पर हाथ फेरा और आशीर्वाद देते-देते कहा—"मैं तो कुछ धर्म-कर्म कर नहीं पाई, यदि तुम लोग करो तो मैं रोक-टोक क्यों करूँ? तू धर्म-कर्म कर, साधन-भजन कर, इसके लिए मैं ख़ुशी से आज्ञा देती हूँ। मैं इतना ही चाहती हूँ कि मेरे जीते-जी न तो तू ला-पता हो और न जनेऊ तोड़। गृहस्थी में रहकर ही धर्म-कर्म करता रह। भगवान् तेरी मनोवाञ्छा पूरी कर देंगे। मैं तुझे यह आशीर्वाद देती हूँ।"

माता की चरण-रज माथे से लगाकर मैं ढाका के लिए रवाना हो गया। यथा-समय गोस्वामीजी के पास जाकर मैंने उन्हें सब हाल कह सुनाया। उन्होंने सन्तोष प्रकट करके कहा—

अच्छा हुआ। तुम बृहस्पतिवार को तड़के नहा-धोकर आ जाना। बस, फिर हो जायगा।

गोस्वामीजी के मुँह से यह उत्तर सुनते ही मैं चटपट इसलिए डेरे पर चला आया कि अब कहीं कोई नया अड़ंगा न लगा दें।

मेरी दीक्षा

मन में उथल-पुथल रहने के कारण मुझे रात को अच्छी तरह नींद नहीं आई। रात को साढ़े तीन बजे उठकर मैंने बूड़ी गङ्गा में जाकर स्नान किया। अब मैं ब्राह्मसमाज-मन्दिर के प्रचारक-निवास में पहुँचा। मैं सुनने लगा कि गोस्वामीजी मँजीरे बजा-बजाकर प्रभात-कीर्तन कर रहे हैं। "जय ज्योतिर्मय, जगदाश्रय, जीवगण-जीवन"—यह गीत गाते-गाते, बीच-बीच में भाव का आवेश होने से उनका कण्ठ रुक जाने लगा। मैं थोड़ी देर तक दरवाज़े पर बैठा रहा। कीर्तन कर चुकने पर गोस्वामीजी बाहर आये; मुझे सामने पाकर मुसकराते हुए बोले—

मार्गशीर्ष कृष्णा पञ्चमी, बृहस्पतिवार सं० १९४३

इतने तड़के आ गये? चलो अच्छा हुआ। जाओ, समाज-मन्दिर में बैठो। ज़रा दिन निकलने दो; फिर शुभ समय समझकर तुम्हें बुला लेंगे।

मैं समाज-गृह में जा बैठा। कोई घण्टे भर में गोस्वामीजीने मुझे पुकारा। जैसे ही मैं उनके पास पहुँचा वैसे ही उन्होंने आसन से उठकर कहा—"**चलो, ऊपर चलें, वहीं काम होगा।**" मैं उनके पीछे-पीछे चला। श्रीयुत अनाथबन्धु मौलिक, श्रीधर घोष और श्यामाकान्त चट्टोपाध्याय भी हमारे साथ आ गये। दो-मंज़िले के पूर्व ओर के कमरे में जाकर देखा कि उसमें, दक्षिण-पूर्व के कोने में, दो आसन बिछे हुए हैं। गोस्वामीजी दीवार के सहारे पच्छिम-मुख बैठे और अपने सामने, कोई साढ़े तीन फुट के अन्तर पर, दूसरे आसन पर बैठने के लिए मुझसे कहा। गोस्वामीजी की बेटी श्रीमती शान्तिसुधा इसी समय धूपदानी में आग ले आई। गोस्वामीजी अग्नि में बार बार धूप-गूगुल-चन्दन आदि डालकर, हाथ जोड़े हुए बारंबार नमस्कार करके, शान्ति से बैठ गये। उनके गालों पर होकर लगातार आँसू ढलकने लगे। अब थोड़ी देर तक गोस्वामीजी को बाहरी ज्ञान नहीं रहेगा, यह सोचकर मैं व्याकुल-हृदय से, कातर होकर, मन ही मन भगवान् के चरणों में प्रार्थना करने लगा—"हे ज्ञानस्वरूप, जाग्रत् पुरुष, हे सर्वसाक्षी, सर्वव्यापी, दीन जनों के एक मात्र सहारे, परमेश्वर. हे पतितपावन दयामय प्रभु! मैं तुम पर विश्वास करूँ चाहे न करूँ, तुम यहाँ मौजूद हो और मेरे भीतर की सारी दशा को देख रहे हो। अपने चरणों को प्राप्त करने की इच्छा मेरे मन में बहुत दिनों से बढ़ाकर तुमने मुझे लगातार बेचैन कर दिया था; तरह-तरह के विघ्नों और विपत्तियों को खड़ा करके तुम्हींने उनसे मेरा उद्धार किया है। प्रभो, जैसा भरोसा

दिया है वैसा ही फल देना। तुमको प्राप्त करने का एक भी उपाय मुझे मालूम नहीं। प्रभो! तुम घट-घट में पूर्ण रूप से विराजमान हो। आज तुम गोस्वामीजी के भीतर रहकर मुझे दीक्षा दो। अपने श्रीचरणों को प्राप्त करने का मार्ग तुम्हीं मुझे दिखा दो। मैं इस समय तुम्हारे, शान्ति प्राप्त करानेवाले, अभय चरणों में अपने को अर्पित करता हूँ। हे सर्वशक्तिमान्, सत्यस्वरूप, पुराणपुरुष! इस समय गोस्वामीजी के मुँह से तुम्हीं मुझे साधन दो। उनके मुँह से तुम्हीं मुझे अपना सबसे बढ़कर प्रिय नाम बतला दो। इस समय गोस्वामीजी के मुँह से निकले हुए प्रत्येक शब्द को मैं तुम्हारी ही अभ्रान्त वाणी समझकर ग्रहण करूँगा। तुम्हारे श्रीचरणों में अपनी इस प्रार्थना के, मेरी ओर से, तुम्हीं एक मेरे साक्षी हो। यदि आज तुम्हीं स्वयं मुझे दीक्षा न दो तो गोस्वामीजी का मुँह अकस्मात् बन्द हो जाय। और क्या कहूँ, तुम्हीं मेरे ऊपर दया करो।"

प्रार्थना के अन्त में नमस्कार करके देखा कि गोस्वामीजी बारम्बार चौंक रहे हैं, उनको रोमाञ्च हो रहा है। हाथ जोड़कर गद्गद स्वर में—'**नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः। यो देवः सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थितः।**' इत्यादि स्तोत्र का पाठ कर रहे हैं। फिर उन्होंने कई बार गायत्री मन्त्र का उच्चारण करके महानिर्वाण-तन्त्रोक्त ब्रह्मस्तोत्र का पाठ किया। इसके बाद कई बार "**जय गुरु, जय गुरु, जय गुरु**" कहा और रोते-रोते वे बिलकुल अचेत हो गये। थोड़ी देर तक इसी दशा में रहकर उन्होंने इस भाव को रोका और सिर उठाकर धीरे-धीरे मुझसे कहा—

परमहंसजी * दया करके तुम्हें यह मन्त्र दे रहे हैं—तुम ग्रहण कर लो। अब मुझे अलौकिक दुर्लभ मन्त्र प्रदान किया और नाम का अर्थ खुलासा करके समझा दिया। इसके बाद शास्त्रसम्मत, गुरुपरम्परा से प्राप्त, प्राणायाम दिखलाकर कहा—**इस प्रकार करो तो।** जैसा बताया था वैसा मैं करने लगा। गोस्वामीजी ने अब ज़ोर-ज़ोर से **जय गुरु, जय गुरु** कहा। भाव का आवेश होने से उनका गला भर आया, समाधि लग गई। सचेत होने पर कहा—**प्रति दिन, दोनों वक्त, इसी प्रकार करने की चेष्टा किया करो।**

मुझे साधन का और कुछ भी उपदेश नहीं दिया। मैं मन ही मन नाम का जप

*** गोस्वामीजी के गुरुदेव, कैलास के समीपवर्ती मानससरोवरवासी, श्रीश्रीमत् ब्रह्मानन्द परमहंसजी।**

करते-करते उस कमरे से बाहर चला आया। मुझे मालूम हुआ कि अब तक मुझसे कम उम्र के सिर्फ़ फणिभूषण घोष (श्रीयुक्त कुञ्ज घोष के पुत्र) और गोस्वामीजी के बेटे-बेटियों को उनसे दीक्षा मिली है। मुझे ख़बर मिली कि जिस समय मुझे दीक्षा दी जा रही थी उस समय श्रीयुक्त श्रीधर घोष ने बड़ी व्याकुलता से, "मेरे वीर्य-धारण करने में समर्थ होने के" सङ्कल्प से, प्रार्थना की थी। सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजी, दीक्षा देते समय, दीक्षा लेनेवाले के भीतर एक अप्रकट शक्ति का सञ्चार कर देते हैं। किन्तु समझ में नहीं आया, कि उन्होंने मुझमें किसी शक्ति का सञ्चार किया हो। अपनी निजी राय, संस्कार और भाव के अनुकूल मन्त्र मिलने से मुझे बहुत आनन्द हुआ।

साधन की बैठक

दीक्षा ले चुकने पर मैं गोस्वामीजी के पास जल्दी-जल्दी आने-जाने लगा।

सं० १९४३ की पौष कृष्णा २ तक

स्कूल-कालेज के छात्र और अदालतों तथा दफ़्तरों के बाबू लोग प्रतिदिन तीसरे पहर गोस्वामीजी के पास पहुँचते हैं। प्रचारक-निवास में, पूर्व के कमरे के उत्तर-पूर्व वाले कोने में, गोस्वामीजी का आसन है। दोपहर को अथवा शाम को जब जाता हूँ तभी गोस्वामीजी को आसन पर या तो सामने की ओर टकटकी लगाये देखते पाता हूँ या सीधे बिना हिले-डुले बैठे पाता हूँ। श्रीयुक्त आशानन्द बाउल और श्रीमत् रामकृष्ण परमहंस जी के अनुगत भक्त श्रीयुक्त केदार बाबू प्रतिदिन तीसरे पहर गोस्वामीजी के पास आते हैं। गोस्वामीजी के सामने और दाहनी ओर उन लोगों के बैठने के लिए निर्दिष्ट आसन है। गोस्वामीजी ध्यान में होते हैं तो भी वे लोग कृष्णकथा बाँचने लगते हैं; कभी-कभी राधिकाजी के प्रेम-सम्बन्धी गीत छेड़ देते या गौर-कीर्तन करने लगते हैं। धीरे-धीरे गोस्वामीजी का भी ध्यान टूट जाता है। बाउल-वैष्णवों के ऐसे गीत सुनने से गोस्वामीजी का भाव की उमङ्ग में आना हम लोगों को अच्छा नहीं लगता; अतएव जरा सा मौक़ा मिलते ही अर्थात् उन लोगों का गान-तान बन्द होते ही हम लोग ज़ोर-जोर से ब्रह्मसमाज का कीर्तन करने लगते हैं। इस समय बाउल-वैष्णव लोग भी धीरे-धीरे उठकर चले जाते हैं। दिन डूबने तक इसी तरह समय निकल जाता है। सन्ध्या समय गोस्वामीजी टट्टी फिरने को उठ जाते हैं। वहाँ से आसन पर आकर धूप आदि सुलगाते और स्वयं मँजीरे बजाकर सन्ध्याकीर्तन करते हैं। यह

कीर्तन हो चुकने पर दरवाज़ा बन्द कर दिया जाता है। इस समय गोस्वामीजी के अनुगत शिष्यों के सिवा प्रचारक-निवास में और किसी को ठहरने नहीं दिया जाता। गोस्वामीजी ने मुझे बीच-बीच में आकर बैठक* में सम्मिलित होने को कह दिया है; इससे मैं भी 'बैठक' में बैठता हूँ। प्राणायाम आरम्भ होने के पहले ही गोस्वामीजी मुझे अपने सामने, दो हाथ के फ़ासले पर, बैठने के लिए कहते हैं। सात-आठ बजे प्राणायाम आरम्भ किया जाता है; और लगातार एक घण्टे तक प्राणायाम होने के बाद एक गीत गाया जाता है। इसके बाद फिर प्राणायाम किया जाता है। इस प्रकार तीन बार प्राणायाम करने में हम लोगों को कोई ढाई तीन घण्टे लगते हैं। सिर्फ़ प्राणायाम में मन लगते ही गोस्वामीजी मुझसे नाम में चित्त स्थिर करने को कहते हैं। मुझसे यह किसी तरह नहीं बनता कि बाहर तो प्राणायाम करता रहूँ और भीतर मन में नाम-स्मरण किया करूँ। 'बैठक' में गोस्वामीजी के शिष्यों को जो नाना प्रकार के भावों की उमंग आती है और स्वयं गोस्वामीजी जो अश्रुपूर्ण नेत्र और गद्गद स्वर से **जय बारोदी के ब्रह्मचारीजी! जय रामकृष्णजी! जय माताजी! जय गुरुदेव! जय गुरुदेव!** कहते-कहते समाधिस्थ हो जाते हैं, यह देखना मुझे बहुत अच्छा लगता है। 'बैठक' के समय इन महात्माओं का आविर्भाव होता है; गोस्वामीजी के शिष्यों में से कोई-कोई उन महात्माओं के दर्शन पाकर अचेत हो जाते हैं। किन्तु मुझे कुछ नहीं देख पड़ता। हाँ, गोस्वामीजी के मुँह से निकले हुए प्रत्येक शब्द को सुनने से मुझे रोमाञ्च ज़रूर होता है; भीतर एक ऐसी दशा हो जाती है जिसको प्रकट करने की मुझमें शक्ति नहीं। यह जाँच करने का मुझे प्रबल कौतूहल हुआ कि सचमुच महापुरुषों का आविर्भाव होता है या नहीं। इस समय लगातार कई दिन तक मुझे 'बैठक' में आते देखकर गोस्वामीजी ने कहा—**छात्रावस्था में मन लगाकर लिखना-पढ़ना ही सब से पहला काम होना चाहिए। तुम हफ़्ते में एक दिन बैठक में आया करो। यही बहुत है।** अब मैं उनकी बात मानकर हफ़्ते में एक दिन ही बैठक में शामिल होने लगा।

यह क्या योगशक्ति है?

छोटे दादा के एक मित्र की माँ मर गई। उन्हें असल बात न बतलाकर घर भेजने की आवश्यकता हुई। उनको अपने साथ ले जाकर मैं उनके घर पहुँचा। माँ के

* गुरु-भाइयों के साथ बैठकर साधन-भजन करना।

मरने की खबर सुनते ही वे रोते-रोते अचेत हो गये। घरवालों का रोना-पीटना देखकर मैं बेचैन हो गया। सोचा कि अगर मेरी माता भी अकस्मात् गुज़र जायँ तो मैं क्या करूँगा। माँ मृत्युशय्या पर पड़ी हुई हैं, इस ढंग की घबराहट से मैं बेचैन हो गया। बस, उन्हें देखने को मैं घर के लिए चल पड़ा। कोई पाँच कोस पैदल जाकर घर में देखा कि बेढब मामला है। मुहल्ले के प्रायः सभी आदमी हमारे घर पर एकत्र हैं; जगह-जगह दो-दो चार-चार आदमी माथे पर हाथ लगाये बैठे हुए आँसू बहा रहे हैं। मुझे देखते ही उन्होंने कहा—'माँ तो अब तब में हैं। अच्छा हुआ कि तुम आ गये। जाओ, इस समय माँ को देख लो।' राह चलने की थकन से मैं बहुत ही सुस्त हो गया था, उसपर माँ को हाथ-पैर पटकते देख मैं बिलकुल हताश होकर रोने लगा। सोचने लगा कि माँ को यदि गोस्वामीजी बचा लें तो बचा लें, नहीं तो और कुछ भरोसा नहीं है। मैं गोस्वामीजी को स्मरण करके बड़ी व्याकुलता से प्रार्थना करने लगा। उनके पास दौड़ जाने की इच्छा हुई। थोड़ी ही देर में मेरी एक भतीजी को भी क़ै-दस्त होने लगे। डाक्टर ने आकर कहा—'माँ के बचने की तो आशा नहीं है; किन्तु भतीजी की अभी आशा है।' उन्होंने हैजे की कुछ दवाओं की एक फ़ेहरिस्त बना दी; किन्तु देहात में वे दवाइयाँ न मिलीं। गोस्वामीजी के पास पहुँचने का यह मौक़ा पाकर, दवा लाने के लिए, मैं माँ को छोड़छाड़कर चटपट ढाका के लिए रवाना हो गया। वहाँ पहुँचते ही सीधा ब्राह्मसमाज-मन्दिर में गोस्वामीजी के पास गया। मुझपर नज़र पड़ते ही उन्होंने कहा—**क्यों? इस समय तुम यहीं पर हो? क्या घर नहीं गये? अच्छा, मालूम होता है, तुम घर से ही आये हो?**

मैंने कहा—मैं सीधा घर से ही चला आ रहा हूँ।

गोस्वामीजी—**बतलाओ, कैसी हालत है?**

मैंने कहा—माँ को और एक भतीजी को हैजा हो गया है।

गोस्वामीजी—**तो तुम दवा ले जाने को आये हो?**

मैं—जी हाँ।

गोस्वामीजी—**तो अब देर करना ठीक नहीं। भतीजी क्या छोटी है?**

मैंने कहा—सात-आठ वर्ष की होगी।

सुनकर गोस्वामीजी ने 'ओफ़' कहकर खेद प्रकट किया और आँखें बन्द कर लीं। वे क्लेशसूचक 'आह' करके दो-तीन मिनट तक चुपचाप बैठे रहे। मैं इसी समय, माँ के चङ्गी हो जाने के लिए, मन में गोस्वामीजी से प्रार्थना करने लगा। उन्होंने आँखें पोंछकर स्नेहपूर्वक मेरी ओर देखकर कहा—

माता के लिए घबराओ मत। दवा ले जाओ ; उससे गाँववालों का भी भला होगा।

दवा लेकर मैं चटपट घर के लिए लौट पड़ा। रास्ते भर केवल गोस्वामीजी की बात पर ही विचार करता रहा। मैं इस समय घर से बाहर हूँ, यह देखकर इन्होंने आश्चर्य क्यों प्रकट किया ? और उन्हें यही पता कैसे लगा कि मैं गाँव से चला आ रहा हूँ ? 'बतलाओ, कैसी हालत है ?' — बिना कुछ जाने यह प्रश्न ही क्यों करेंगे ? लड़की का हाल सुनकर उन्होंने जैसा भाव प्रकट किया है उससे जान पड़ता है कि वह अब जीवित नहीं है। 'दवा से गाँव-वालों का भला होना' तो बतलाया ; किन्तु लड़की की चर्चा तक न की। तो उन्होंने दूसरे ढङ्ग से यही न कह दिया है कि यह दवा लड़की के काम न आवेगी। माँ के लिए घबराने को मना कर दिया है। तो क्या माताजी बच जायँगी ? देखना चाहिए कि ये बातें कहाँ तक ठीक उतरती हैं। मैंने फ़ुर्ती से घर पहुँचते ही सुना कि लड़की तो सबेरे ही चल बसी ; किन्तु माता के लक्षण बच जाने के देख पड़ते हैं।

धीरे-धीरे माँ चङ्गी हो गईं। इस घटना से गोस्वामीजी के सम्बन्ध में मेरे चित्त में एक प्रकार की उथल-पथल होने लगी। सोचा—तो क्या गोस्वामीजी ज्योतिष जानते हैं ? यदि उन्हें ज्योतिष का ज्ञान हो तो भी गणित आदि करने में थोड़ा सा समय तो लगता ही है; परन्तु यहाँ तो एक मिनट भी नहीं लगा। तब तो जान पड़ता है कि गोस्वामीजी को योगशक्ति प्राप्त हो गई है। योगशक्ति द्वारा चैतन्यमय ईश्वर के साथ युक्त हो जाने पर ब्रह्माण्ड की सारी घटनाएँ—बहुत ही छोटे परमाणु का प्रत्येक तत्त्व तक—प्रकट हो जाती हैं। जान पड़ता है, उसी शक्ति के प्रभाव से गोस्वामीजी को दूसरे के मन की बात मालूम हो जाती है और वे भविष्यत् को देखकर बतला देते हैं। फिर सोचा—'वह करामात क्या इतनी सहज है ? गोस्वामीजी का इतने थोड़े समय में उक्त अवस्था को प्राप्त कर लेना क्या सम्भव है ? असल में गोस्वामीजी बहुत ही भले आदमी हैं, इसी से स्वाभाविक रूप में सहानुभूति दिखलाकर

वे बातें उन्होंने कही थीं; बातें सवा सोलह आने ठीक उतरीं, इसी से उनके ऊपर मुझे अन्ध-विश्वास हो रहा है।' जो हो, कुछ निर्णय करने में समर्थ न होकर भी इस घटना से मेरे मन में आश्चर्य उत्पन्न हो गया; और अपने आप गोस्वामीजी पर श्रद्धा हो गई। ज्योंही माताजी तनिक चङ्गी हुईं त्योंही मैं गोस्वामीजी के दर्शन करने के लिए ढाका चल पड़ा।

माघोत्सव में नया मामला

पौष कृष्णा १४
शनिवार सं० १९४३

माघ के आरम्भ में ही ब्राह्मसमाज-मन्दिर में बड़ी धूमधाम होने लगी। माघोत्सव जितना ही समीप आता जाता है उतनी ही भीड़भाड़ समाज-मन्दिर में बढ़ती जा रही है। मैमनसिंह, बरीसाल, फ़रीदपुर प्रभृति भिन्न-भिन्न स्थानों से बहुतेरे गण्य मान्य मनुष्य इस उत्सव के लिए आये हैं। गोस्वामीजी की उपासना में सम्मिलित होने के लिए कलकत्ता और उसके समीपवर्ती स्थानों से बहुतेरे ब्राह्मसमाजी ढाका में आये हैं। कंगाल फ़क़ीरचन्द और फ़क़ीर (हरिनाथ मजूमदार और प्रफुल्ल मुखोपाध्याय) के गीतों का प्रचार आजकल बङ्गाल में सर्वत्र हो गया है। सब जगह उन्हीं की चर्चा है। उनके गीतों पर सभी सम्प्रदायोंवाले लट्टू हैं। कई दिन हुए, वे लोग भी गोस्वामीजी के साथ उत्सव करने के लिए ढाका ब्राह्मसमाज-मन्दिर में आये हैं और गोस्वामीजी के स्थान पर ही टिके हुए हैं।

सबेरे ब्राह्मसमाज-मन्दिर में जाकर देखा कि प्रचारक-निवास में बड़ी भीड़ है। गोस्वामीजी के सामने बैठे हुए कंगाल फ़क़ीरचन्द फ़क़ीर, बड़ी उमङ्ग के साथ, भाव में मस्त होकर जोर-जोर से गा रहे हैं—'माँ, नहीं हूँ मैं वह लड़का। जिसके पास है साधन का बल, वह क्या डरता है माँ तेरे डरवाने से?' कमरे के भीतर-बाहर मनुष्य चुपचाप एक ही दशा में बैठे हुए हैं, कोई हिलता-डुलता तक नहीं; अकेले गोस्वामीजी अपने आसन पर खड़े हैं। उनकी दृष्टि सामने की ओर स्थिर है, पलकों का गिरना बन्द है, तारों की तरह चमकीली आँखें चमक रही हैं। मुँह फूल गया है; ओठ काँप रहे हैं; दोनों गालों पर होते हुए लगातार आँसू बह रहे हैं। उनका बायाँ हाथ छाती पर है, दाहना हाथ करमुद्रावद्ध दशा में तालू पर रक्खा हुआ है। वे बार-बार चौंक उठते हैं; शरीर पर रोमाञ्च हो रहा है। बीच-बीच में जोर-जोर से 'हरि बोलो', 'हरि बोलो' कहकर ऊपर को कोई डेढ़ दो हाथ तक उछल जाते हैं और फिर स्थिर भाव से पल भर खड़े रहकर पैर से चोटी तक थरथर काँपते

हैं। गिर पड़ने के लक्षण देखते ही श्यामाकान्त पण्डितजी सँभाल लेते हैं। थोड़ी ही देर में गोस्वामीजी खिलखिलाकर हँस पड़े। यह हँसना भी एक विचित्र घटना है। जोर से खिलखिलाने की अद्भुत ध्वनि से कमरा मानों काँपने लगा। लगातार हँसी का वेग बढ़ने लगा। देर तक ठहरे हुए इस लगातार खिलखिलाने के शब्द से मेरा शरीर कण्टकित हो गया; मैं सुस्त हो पड़ा। ऐसा हँसना मैंने जिन्दगी में कभी नहीं देखा। लगातार सात आठ मिनट तक गोस्वामीजी इसी तरह हँसते रहे; किन्तु इस दशा में भी उनकी आँखों से आँसू बहते रहे; बल्कि और भी अधिक वेग से बहकर उनके वक्षःस्थल को भिगोने लगे। अब अकस्मात् हँसना बन्द हो गया। सतृष्ण दृष्टि से सामने की ओर देखकर वे बारम्बार चौंकने लगे; फिर माथे पर रक्खे हुए दाहने हाथ को सामने की ओर करके तर्जनी उँगली से दिखाते हुए, गद्‌गद भाव से, जोर-जोर से कहने लगे—

वह देखो, वह देखो—तुम लोग भी देख लो—वह पगला आ गया है। वह पगला खड़ा हुआ है। पगला जाना चाहता है। (दो-चार डग बढ़ाकर, बड़ी हड़बड़ाहट के साथ ज़ोर से कहा) पकड़ लो, पकड़ लो, पकड़ लो। नहीं, फिर लौट पड़ा है। देखो, देखो, पगला इसी ओर आ रहा है, वह देखो, वह वह। वाह, कितना बड़ा बैल है! वह देखो कैसा है,—वाह उसके सिर में एक आँख है, उसकी चमक कितनी है! सूर्य की तरह—यह तो सूर्य ही है! वाह अब यह क्या है? ओफ़ कितने बड़े सींग हैं! लो वह देखो नन्दीभृङ्गी हैं। मैंने समझा था, वे लोग कोई नहीं हैं। पगले के साथ वे लोग तो इसी ओर आ रहे हैं। चौंककर, दो-चार क़दम पीछे हटकर, सामने की ओर दृष्टि को स्थिर रक्खे हुए हाथ जोड़े काँपने लगे और नमस्कार करते-करते कहने लगे—**जय माँ! जय माँ! सब लोग देख लो, मेरी माता आई हैं। धन्य माँ! धन्य माँ! ओहो, न जाने कितने योगी और ऋषि माता के चारों ओर नाच रहे हैं! वह देखो, श्री चैतन्य, वाल्मीकि, नारद और वशिष्ठ आदि; और भी कितने ही हैं—मैं उनके नाम नहीं जानता। ओहो, घर के सामने का सब हिस्सा भर गया! ये लोग कितना आनन्द कर रहे हैं! हमारी माता को पाकर आनन्द कर रहे हैं! अहा, वहाँ तो सभी हैं; मेरे परिचित न जाने कितने लोग हैं। वाह**

और तमाशा देखो—माँ भी सबके साथ नाच रही हैं! वह देखो, माँ मुझे बुला रही हैं।—अब वे उछल-उछलकर कूदने लगे। फिर नीचे गिरकर, साष्टाङ्ग प्रणाम करके स्थिर होकर बैठ गये। आँखों से लगातार आँसू बहने लगे; रह-रहकर पहले की तरह खिलखिलाकर हँसने लगे। थोड़ी ही देर में उनको समाधि लग गई। सब लोग अकचकाकर स्तम्भित हो गये। ग्यारह बजे तक जब गोस्वामीजी की समाधि न टूटी तब सभी लोग धीरे-धीरे उठकर अपने-अपने स्थान को चले गये। मैं भी अपने डेरे को लौट गया।

डेरे पर लौट आने के बाद कई घण्टे तक चित्त खूब सरस और प्रफुल्ल बना रहा; फिर धीरे-धीरे मन में आन्दोलन होने लगा। मन में आया—'गोस्वामीजी यह सब क्या करते हैं? निराकारवादी ब्रह्मज्ञानियों के प्रधान आचार्य होकर, सहज ही ब्राह्ममन्दिर में खड़े होकर, पौत्तलिकता का प्रचार कर रहे हैं! नन्दीभृङ्गी, वाल्मीकि, नारद आदि का दर्शन और समय-समय पर उनकी स्तुति आदि—यह सब है क्या? शिक्षित भले आदमियों के बीच, विशेषतः ब्राह्म लोगों के समाजमन्दिर में बैठकर, उन्हीं के सामने, यह अगड़ं बगड़ं बकना क्या स्वाभाविक मस्तिष्क का काम है? यह मामला देखकर ब्राह्म लोग भी कुछ कहते क्यों नहीं हैं? मैं बहुत ही उत्तेजित और अधीर होकर नवकान्त बाबू, रजनी बाबू आदि के यहाँ गया और तुरन्त मैंने यह चर्चा छेड़ दी। उन लोगों ने कहा—'माघोत्सव हो जाय, फिर इन बातों के सम्बन्ध में विषम आन्दोलन किया जायगा। इस समय कुछ गड़बड़ न करना ही अच्छा है।'

भोजन के समय भाव-वैचित्र्य—अपूर्व उपासना

पौष अमावास्या, रविवार, सं० १९४२

खा-पी चुकने पर कोई डेढ़ बजे मैं ब्राह्मसमाज-मन्दिर में गया। प्रचारक-निवास में जाकर अद्भुत दृश्य देखकर दङ्ग हो गया। गोस्वामीजी के बहुत से योगपन्थी आदमी, फिकिरचन्द के कुछ आदमी, और बहुतेरे ब्राह्मसमाजी बैठे हुए हैं। ये सभी भोजन करने को बैठे थे। दाल, भात, तरकारी आदि भोजन की सामग्री सब के आगे परोसी रक्खी है; किन्तु कोई भोजन नहीं कर रहा है। सब के सब भाव में मस्त बैठे हुए हैं। श्रीयुक्त कुंजलाल नाग अकेले गा रहे हैं और स्वयं मृदङ्ग बजा रहे हैं। उन्हें भी बाहरी होश नहीं है। बराबर दोनों हाथों की थाप मृदङ्ग पर पड़ रही है, दृष्टि गोस्वामीजी पर स्थिर है, ऊँचे स्वर से गा रहे हैं और मस्त होकर उछल

रहे हैं; मृदङ्ग से आज एक अपूर्व शब्द निकल रहा है, गीत की तो कुछ बात ही न पूछिए। ऐसा मालूम होने लगा कि बहुत से मृदङ्ग एक ही ताल पर बज रहे हैं और बहुत से आदमी एक स्वर में गा रहे हैं। ऐसी विचित्र घटना मैंने कहीं नहीं देखी। जो लोग भोजन करने बैठे थे उन्हें दो-चार कौर खाते-खाते ही बाहर की सुधि न रही। कोई भात का कौर हाथ में लिये बैठा है; कोई पत्तल पर ही गिर गया है; कोई मुँह में भात का कौर दिये हुए ही अचेत हो गया है; और कुछ-कुछ होश में आते ही कोई-कोई उस दाल-भात-तरकारी आदि को अपनी देह में मल रहा है। किसी के लगातार आँसू बह रहे हैं; कोई-कोई काँपता हुआ बार-बार चौंक पड़ता है। किसी-किसी को जल्दी-जल्दी श्वास-प्रश्वास चल रहा है; और किसी-किसी के मुँह से एक अद्भुत ढङ्ग का शब्द हो रहा है। शिक्षित ब्राह्मसमाजियों का भी इस ढङ्ग का असम्भव भाव देखकर मुझे भूतों की लीला जान पड़ी। किसी-किसी को जूठी पत्तल और थाली पर गिरते देखकर मैंने झटपट थाली और पत्तल को हटा दिया। महाभाव की तरङ्ग और भी बढ़ गई। मृदंग की ध्वनि और गीत का शब्द मानों चौगुना बढ़ गया। बग़ल के कमरे के भीतर स्त्रियाँ भी मस्त हो गईं। उनके रोने, चिल्लाने, 'आह'-'ऊह' करने और बहुत बुदबुदाने से एक अद्भुत ध्वनि उत्पन्न हुई। बार बार प्राणायाम के शब्द से कमरा परिपूर्ण हो गया। आज भीतर-बाहर का भेद उठ गया—सब एकाकार है। खुली जगह में सब के सामने प्राणायाम की श्वासक्रिया चलने लगी। बरामदे में और आँगन में जो लोग थे उनकी दशा भी नाना प्रकार की है। जान तो नहीं पड़ता कि किसी को बाहरी ज्ञान है। कोई हँसता है, कोई रोता है और कोई बेतरह चिल्ला रहा है। कुछ लोग भौचक्के से बैठे हुए हैं। बाहरी चेत न रहने पर गोस्वामीजी गिर पड़े। कङ्गाल फिकिरचंद वग़ैरह भी साष्टांग होकर पड़े रहे। कुञ्ज बाबू के भीतर असाधारण शक्ति प्रविष्ट हो गई। वे भाव में मस्त होकर कूदते-कूदते मृदङ्ग बजाकर गीत गाने लगे। जिधर देखो उधर भाव की गङ्गा बहने लगी। इस समय मृदङ्ग का अथवा गाने का शब्द मैं कुछ भी नहीं समझ सका। एक प्रकार की विचित्र, दिगन्तव्यापी ध्वनि की आँधी चलने लगी और रह-रहकर उसके झोंके लगने से मेरा शरीर भी काँपने लगा। भीतर-बाहर ख़ासी हलचल मच गई। मुझे भी और किसी ओर देखने-भालने का अवसर नहीं मिला। पता नहीं, इस तरह कितना समय बीत गया।

कुछ देर में देखा कि दिन ढल गया है और गाना भी बन्द है। गोस्वामीजी अपने आसन पर बैठे हुए हैं; मतवाले आदमी की तरह देह को ढीली-ढाली किये कभी दाहिनी-बाईं ओर और कभी सामने की ओर झूम-झूम पड़ते हैं; बीच-बीच में आँखें खोलकर इधर-उधर देख लेते हैं। चारों ओर सन्नाटा है! गोस्वामीजी धीरे-धीरे कहन लगे—**बहुत ही गहरे महासमुद्र के एक चुल्लू भर पानी में आज हम जा गिरे थे। ओह समुद्र की बेहद तरङ्गें हैं! एक ही धक्के में फिर किनारे पर फेंक दिया। अहा, जो लोग इस महासमुद्र में एक बार जा पहुँचते हैं वे तरङ्ग के साथ-साथ न जाने कितना नृत्य करते हैं, कितना आनन्द करते हैं!**—इत्यादि।

दिन डूबते ही ब्राह्मसमाज-मन्दिर और उसके चारों ओर के बरामदे में मनुष्य ही मनुष्य भर गये। गोस्वामीजी ठीक समय पर प्रचारक-निवास से निकले और भाव में मग्न होकर झूमते-झामते ब्राह्मसमाज-मन्दिर में वेदी पर जा बैठे। चन्द्रनाथ बाबू ने हारमोनियम बजाकर मीठे स्वर में गीत गाया। उद्बोधन आरम्भ करने पर भाव के आवेश में गोस्वामीजी का गला भर आया। चन्द्रनाथ बाबू फिर गाने लगे। प्रार्थना के समय गोस्वामीजी भगवान् को बहुत ही दीनता से पुकारकर रोने लगे। मन्दिर के भीतर और बाहर लोगों में सन्नाटा खिंच गया। ऐसा जान पड़ा कि भगवान् के आविर्भाव से उपजा हुआ सजीव भाव समग्र ब्राह्मसमाज-मन्दिर में और उसके चारों ओर परिपूर्ण हो गया! गोस्वामीजी कहने लगे—

माँ, आ गईं? तुम्हारे साथ तो बड़ी भीड़-भाड़ है! ये बहुत से मुनि, ऋषि और साधु महात्मा तुम्हारे साथ हैं! माँ, ये लोग तुम्हारे चारों ओर बड़े आनन्द से नृत्य कर रहे हैं! वहाँ तो मेरी जान-पहचानवाले भी बहुतेरे देख पड़ते हैं। माँ, मुझे बुलाती किस लिए हो? मैं कहीं वहाँ पहुँच सकता हूँ? तुम दया करके मुझे हाथ से पकड़ लोगी? मुझमें तो जाने की शक्ति ही नहीं है। और मैं जाऊँ ही कहाँ? वहाँ? भला ऐसा भी होता है? क्यों माँ, मुझे क्या धोखा दे रही हो? मुझमें सामर्थ्य ही कहाँ कि वहाँ जा सकूँ, उस जगह बैठ सकूँ? माँ, वहाँ पर मुझे बैठने दोगी, यह बार बार क्यों कहती हो? मैं तो बड़ा भारी पापी हूँ। माँ, उन ऋषि-मुनियों के सामने मैं क्योंकर बैठूँगा?—इस प्रकार थोड़ी देर तक कहकर गोस्वामीजी अचेत हो गये। अब

लगातार गाना होने लगा, लेकिन गोस्वामीजी होश में न आये। अब समाज का काम बन्द हुआ, एक-एक करके सब लोग चले गये। वेदी के ऊपर गोस्वामीजी एक ही ढंग से अचेत अवस्था में बैठे रहे। पता नहीं, उनकी यह दशा रात को कितनी देर तक रही।

माघ शुक्ला १, सोमवार, सं० १९४३

इस बार माघोत्सव में अद्भुत दृश्य देखता हूँ। इतनी अधिक संख्या में मनुष्य आते हैं कि समाज की अँगनाई में उनके बैठने को जगह ही नहीं मिलती। सभी श्रेणियों के धर्मार्थियों को गोस्वामीजी की ओर खिंचते देखकर हम लोग समझते हैं कि ब्राह्मसमाज की ही शोभा बढ़ रही है, और लोगों से बात-चीत करते समय भी हम लोग अभिमान प्रकट करते हैं कि ब्राह्मसमाज में गोस्वामीजी जैसे पुरुष हैं। किन्तु साफ़-साफ़ समझ में नहीं आता कि गोस्वामीजी आजकल किस धर्म का आचरण करते हैं और वे साकार मत के पक्ष में हैं या निराकार मत के। यदि वे खुली सभा में खड़े होकर एक बार अपने धर्म-मत को प्रकट कर दें तो इस सम्बन्ध में सभी के मन का खटका जाता रहे। इसी उद्देश्य से हम लोगों ने 'साकार और निराकार उपासना' पर व्याख्यान देने का उनसे अनुरोध किया। किन्तु वे इस विषय पर कोई व्याख्यान देने को राज़ी नहीं हुए। 'पौत्तलिकता और ब्रह्मज्ञान' के सम्बन्ध में कुछ कहने को भी वे तैयार नहीं। अन्त में जब उनसे 'ब्रह्मोपासना' के सम्बन्ध में अपनी राय प्रकट करने के लिए कहा गया तब उन्होंने 'ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मवादी' विषय पर व्याख्यान देना स्वीकार कर लिया। हम लोगों ने भी शहर में सर्वत्र इसका विज्ञापन दे दिया। आज ही शाम को व्याख्यान होगा।

अव्यक्त वक्तृता

तीसरे पहर समाज में जाकर देखा कि मन्दिर और बरामदे में तिल रखने को भी जगह नहीं है। चारों ओर की ज़मीन भी भर गई है। बहुत से लोग यह भीड़भाड़ देखकर समाज से इसलिए लौटे जा रहे हैं कि व्याख्यान सुनने को मिलेगा ही नहीं। रोमन कैथोलिक गिरजे के सुप्रसिद्ध पादरी बर्नार्ड साहब भी आये और एक कोने में चुपचाप बैठ गये। सन्ध्या होने के थोड़ी देर बाद गोस्वामीजी व्याख्यान के स्थान पर आ खड़े हुए। सब को हाथ जोड़कर अभिवादन करके इस प्रकार कहने लगे—

प्राचीन समय में वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, सनक, सनातन आदि ब्रह्मर्षियों ने जिस ब्रह्म की उपासना की थी, जिस ब्रह्म की महिमा के कणमात्र का वर्णन करने में शास्त्र-पुराण-वेद-वेदाङ्ग और उपनिषद् आदि पार न पाकर 'अव्यक्त अनिर्वचनीय' कहकर ही चुप हो रहे हैं उसी महत् ब्रह्म की कथा मुझ, तुच्छ से भी तुच्छ, अज्ञानी के मुँह से सुनने के लिए आप लोग पधारे हैं। इत्यादि कहकर उन्होंने बच्चे की तरह रो दिया। बारम्बार चेष्टा करने पर भी वक्तृता देने में रोने के वेग को रोकना जब उनके क़ाबू से बाहर हो गया तब वे बैठ गये। पाँच-छः मिनिट के बाद फिर बोलना आरम्भ किया। इस बार भी महर्षियों के ध्यानगम्य, परात्पर परब्रह्म के विषय में दो-चार बातें कहते ही उन्हें रुलाई आ गई। एक एक बार कहने की चेष्टा की, किन्तु बार-बार रुक जाने लगे; अन्त में भाव के अदम्य आवेग को न रोक सकने पर मुँह को कपड़े से मूँदकर बैठ गये। इस अवस्था में थोड़ा समय बीतने पर वे बैठे-बैठे ही रोते हुए हाथ जोड़कर सब से कहने लगे—**आज आप लोग मुझे आशीर्वाद दीजिए। आप सभी लोग दया करके मेरे सिर में लात मार करके मेरे अहङ्कार को चूर्ण कर दीजिए। मैं बड़ा अभिमानी हूँ—मैं भला उनका वर्णन करूँगा। मैं जानता ही क्या हूँ? मैं तो राख हूँ, धूल हूँ।** इस प्रकार कहकर उस अनादि, अनन्त, एकमात्र, अद्वितीय पुराण पुरुष की स्तुति के कुछ श्लोक पढ़ते ही भाव का आवेश होने से उनका गला भर आया। अस्फुट भाषा में, भाव में डूबी हुई अवस्था में, सिर्फ़ 'त्वं हि', 'त्वं हि' कहते-कहते उनकी समाधि लग गई।

ब्राह्मसमाज-मन्दिर में उतनी भीड़ थी लेकिन बिलकुल सन्नाटा छाया हुआ था। गोस्वामीजी के वह 'त्वं हि, त्वं हि' कहते ही न जाने क्या हो गया। सभी लोग गोस्वामीजी की ओर बड़ी उमङ्ग से ताकते हुए दङ्ग हो गये। इसी तरह ५।७ मिनट बीत गये। अब चन्द्रनाथ बाबू हारमोनियम बजाकर गाने लगे। गोस्वामीजी को चेत नहीं हुआ। धीरे-धीरे सभी लोग उठकर खड़े हो गये। लोगों के झुण्ड के झुण्ड, समाजमन्दिर के घेरे में, जगह-जगह पर एकत्र होकर बात-चीत करने लगे। व्याख्यान सुनने से जो उपकार होता उसकी अपेक्षा अधिक लाभ मुझे आज गोस्वामीजी की दशा देखने से हुआ। धन्य है ब्राह्मसमाज!

आसन को नमस्कार करने का कुसंस्कार

गोस्वामीजी मैमनसिंह का चक्कर लगाकर ढाका लौट आये हैं। उन्हें देखने को मैं प्रचारक-निवास में पहुँचा; सुना कि वे टट्टी गये हुए हैं। मैं उसी कमरे में बैठ गया। थोड़ी देर में श्रद्धेय श्रीयुक्त मनोरञ्जन गुह ठाकुरता भी आ गये। उन्होंने गोस्वामीजी के ख़ाली आसन के सामने जाकर, माथा टेककर, नमस्कार किया। उन्हें आज इस ख़ाली आसन को नमस्कार करते देख मैं नाराज़ हो गया। मुझसे रहा न गया। मैंने पूछा—'आप तो पक्के ब्राह्मसमाजी न हैं? वहाँ पर नमस्कार किस लिए किया?' उन्होंने उत्तर दिया—'पक्का ब्राह्मसमाजी होने से क्या गोस्वामीजी को नमस्कार न करूँ?'

माघ शुक्ला ८, मंगलवार, सं० १९४३

मैंने कहा—वहाँ गोस्वामीजी हैं कहाँ? वे तो टट्टी फिरने गये हैं।

मनोरञ्जन बाबू बोले—हाँ टट्टी में। मैंने तो वहाँ पर गोस्वामीजी को स्मरण करके ही माथा झुकाया है। मैं नहीं समझता कि इसमें कुछ दोष होता है।

मैंने कहा—"ब्राह्मसमाज में बैठकर आप यह बात कहने का साहस करते हैं? तो फिर हिन्दुओं को 'अन्ध-विश्वासी, कुसंस्कारी' क्यों कहते हैं?"—इन्हीं बातों पर अब मेरी मनोरञ्जन बाबू से बहस छिड़ गई।

इसी बीच गोस्वामीजी टट्टी से निश्चिन्त होकर आ गये थे और बग़ल के कमरे में जलपान कर रहे थे। हम लोगों का, एक दूसरे की, बात काटना सुनकर उन्होंने अपनी सास (श्रीयुक्ता मुक्तकेशी देवी) 'बूढ़ी महाराजिन' से कहा—**'इन लोगों को आप बतला दें कि अब कोई ख़ाली आसन के सामने नमस्कार न करे। इस काम के लिए फिर छानबीन और अशान्ति होगी।'** अब वहाँ बैठा रहना मुझे अच्छा न लगा। मैं नवकान्त बाबू के डेरे पर चला आया। वहाँ पर कई ब्राह्मसमाजी मौजूद थे। मैंने उन लोगों को झगड़े का ब्योरा कह सुनाया। और भी दस-पाँच बातों का उल्लेख करके मैंने कहा कि प्रचारक-निवास में पौत्तलिकता की पैठ हो गई है। उन लोगों ने मुझे यह कह करके सावधान कर दिया कि 'गोस्वामीजी से योगधर्म की दीक्षा ले लेने पर अच्छे-अच्छे लोग भी बिगड़ जाते हैं, उनकी ऐसी ही दुर्दशा होती है।'

ब्राह्मसमाज में आन्दोलन—गोस्वामीजी का पदत्याग करने का सङ्कल्प

माघ महीने के अन्त तक

अब देखता हूँ कि गोस्वामीजी के कार्यकलाप और साधन-भजन के सम्बन्ध में, सभा-समिति करके, ब्राह्मसमाज में बड़ा आन्दोलन आरम्भ हो गया है। "गोस्वामीजी का जैसा व्यवहार है उसको देखते हुए अब उनके द्वारा प्रचारक का काम नहीं निभता। निर्जनता-प्रिय गोस्वामीजी की ध्यान-धारणा-समाधि से ब्राह्मसमाज का तनिक भी लाभ नहीं हो रहा है। अब उनके द्वारा समाज की उन्नति होने की आशा नहीं। व्यक्तिगत रूप से वे कुछ भी क्यों न किया करें; किन्तु जब वे खुल्लमखुल्ला गुरु-वाद को मानते हैं, उन्नीसवीं शताब्दी के उच्च शिक्षित समाज के नेता होकर भी जब वे बिलकुल अज्ञानी की तरह 'शास्त्र के भ्रम-रहित' होने का मत भी प्रचारित कर रहे हैं, तब भला उनके द्वारा इस समाज के फूलने-फलने की आशा कहाँ ? जब असाम्प्रदायिक ढंग पर धर्मप्रचार करना है तब 'ब्राह्म-धर्म-प्रचारक' नाम की क्या जरूरत ? हिन्दू देवी-देवताओं, हिन्दुओं की आचारपद्धति और उनके प्राचीन कुसंस्कार के सम्बन्ध में कुछ कहना दूर रहा; अब तो वे समय-समय पर उलटे उक्त बातों को प्रश्रय देते हैं। इस दशा में गोस्वामीजी की बदौलत ब्राह्मसमाज की खासी हानि हो रही है।" ऐसी बातों की चर्चा ब्राह्मसमाजियों के घर-घर, खुली सभाओं में, और जिन ब्राह्मसमाचारपत्रों का अधिक प्रचार है उनमें भी होने लगी है। अब अधिकांश ब्राह्मसमाजियों की यह इच्छा है कि प्रचारक का कार्य गोस्वामीजी न करें।

सुना गया कि गोस्वामीजी अपनी यह राय प्रकट कर रहे हैं कि वे प्रचारक के पद से अलग होकर स्वाधीन रूप से, उदासीन की तरह, अपने अवशिष्ट जीवन को एकान्त स्थान में साधन-भजन करने में बितावेंगे। वे बहुत जल्द गयाजी के आकाशगङ्गा पहाड़ पर चले जायँगे।

बारोदी के ब्रह्मचारी की बात

फाल्गुन सं० १९४३

आज रात को साधन-बैठक में शामिल होने के विचार से, स्कूल की छुट्टी होते ही, मैं प्रचारक-निवास में पहुँचा। मैंने गोस्वामीजी के आसन के पास एक जोड़ी खड़ाऊँ रक्खी देखी। उस समय गोस्वामीजी आसन पर नहीं थे। खड़ाऊँ खूब बड़ी और पुरानी थीं। मैंने उन्हें हाथ में लेकर पूछा—'यह खड़ाऊँ किसकी हैं?' गोस्वामीजी की सास ने कहा—'ब्रह्मचारीजी ने गोस्वामीजी को दी हैं।' मैंने

पूछा—'अब ये कौन से ब्रह्मचारी हैं ?' उन्होंने तनिक अचरज करके कहा—"तुमने ब्रह्मचारीजी की चर्चा नहीं सुनी ? समाधि लगाने पर गोस्वामीजी को मालूम हुआ कि बारोदी में एक महापुरुष छिपे हुए रहते हैं। इसके बाद गोस्वामीजी उनके दर्शन करने गये थे। ब्रह्मचारीजी इस समय १५६ वर्ष के हैं। उन्होंने अपना परिचय देकर कहा है कि वे गोस्वामीजी के पितामह के चाचा लगते हैं। पूर्व-पुरुष के चिह्नस्वरूप उन्होंने यह खड़ाऊँ की जोड़ी और एक कम्बल गोस्वामीजी को दिया है।" ब्रह्मचारीजी का हाल जानने की मुझे बड़ी उत्सुकता हुई। साधन-बैठक में बैठकर रात को शिष्यों के साथ प्राणायाम करते समय गोस्वामीजी अक्सर गद्गद होकर—'जय ब्रह्मचारीजी ! जय रामकृष्ण परमहंस ! जय माताजी ! जय परमहंसजी ! जय गुरुदेव ! जय गुरुदेव !'—कहते-कहते समाधिस्थ होकर ढुलक जाते हैं। उस समय महापुरुषों का आविर्भाव होने से गुरुभाइयों के भीतर अद्भुत भाव की उमङ्ग और अलौकिक अवस्था आदि का विकास देखता हूँ। तो क्या यही ब्रह्मचारीजी उन महापुरुषों में से एक व्यक्ति हैं ? एक भजनानन्दी गुरुभाई से ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में पूछताछ की तो उन्होंने कहा—कुछ दिन हुए, समाधिस्थ अवस्था में गुरुदेव को पता लगा कि बारोदी में एक महापुरुष हैं। उसी समय ब्रह्मचारीजी ने भी गोस्वामीजी का हाल जानकर हमारे किसी-किसी गुरुभाई से कहा—'क्या गोस्वामी एक बार आकर हमें दर्शन न देंगे ? वे न आवेंगे तो हमीं को जाना पड़ेगा। भले आदमी सुने गये हैं, उनके साथ हमारा कोई रिश्ता भी हो सकता है। ऐसा न होता तो उनकी ओर मुझे इतना आकर्षण क्यों होता ?' शिष्यों के मुँह से यह हाल सुनकर गोस्वामीजी उन ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने गये थे। उस समय के ब्योरे का पता लगाकर और भी विस्तार के साथ हाल जानने को मैं बहुत ही उत्सुक बना रहा।

बारोदी से आकर गोस्वामीजी इन गुप्त महापुरुष ब्रह्मचारीजी को सब लोगों में प्रकट करने लगे। ढाका, विक्रमपुर, मैमनसिंह, फ़रीदपुर प्रभृति स्थानों से शिक्षित भले आदमियों के जत्थे अब ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने बारोदी को जाते हैं। थोड़े ही दिनों में तमाम पूर्वी बङ्गाल में ब्रह्मचारीजी का नाम प्रसिद्ध हो गया है। ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में जो घटनाएँ मैं सुनता हूँ उनपर मुझे विश्वास नहीं होता। इच्छा है कि यदि कभी उनके दर्शन मिल जायँगे तो साक्षात् उन्हीं के मुँह से उनके जीवन का अद्भुत ब्योरा सुनकर 'डायरी' में लिख लूँगा।

दरभङ्गा में गोस्वामीजी को बीमारी । बचने में सन्देह

वैशाख कृष्णा ७, शनिवार, सं० १९४४

स्कूल की तातील है, इससे घर चला आया हूँ। बहुत दिनों से गोस्वामीजी की कोई खबर नहीं मिली। गुरुभाइयों के पास जाने के लिए मैं बहुत ही बेचैन हो गया। ढाका के लिए चल दिया। शंकरटोला के गुरु-भाई डाक्टर प्रसन्नकुमार मजूमदारजी के डेरे के पिछवाड़े, अपने एक मित्र के डेरे पर, मैं जा उतरा। सबेरे मैं जँगला खोले हुए बैठा था कि प्रसन्न बाबू के डेरे में बहुत लोगों की गड़बड़ सुन पड़ी। राम मजूमदारजी ने मुझे देखकर कहा—'क्या आपको गोस्वामीजी का कुछ समाचार मालूम है ? वे बहुत बीमार हैं।' यह सुनते ही मैं डाक्टर साहब के डेरे पर दौड़ा गया। पहुँचकर देखा कि वहाँ अलग-अलग स्थानों में, अनेक झुण्डों में, बहुतेरे गुरु-भाई-बहन गोस्वामीजी की चर्चा कर रहे हैं; कोई-कोई रो रहे हैं। विस्तृत ब्योरा सुनने के लिए आतुर होकर मैंने राम बाबू से पूछा तो उन्होंने कहा—'दरभङ्गा में गोस्वामीजी को डबल निमोनिया हो जाने से दोनों फेफड़े सड़ने लगे हैं। हालत बहुत नाज़ुक है। गोस्वामीजी के घर के लोग, योगजीवन, कुंज घोष, प्रसन्न बाबू, ये सभी कल ही दरभङ्गा को चले गये हैं। कल सबेरे हम लोगों ने यहाँ से अरजेंट तार भेजा था किन्तु अभी तक कुछ खबर नहीं मिली। नहीं जानते क्या हुआ।' गोस्वामीजी की इस हालत का हाल सुनकर मेरा दिल धड़कने लगा; रुलाई आ गई। डेरे पर लौटकर मैंने दरवाज़ा बन्द कर लिया। सात बजे से लेकर कोई एक बजे तक मैंने लगातार रोते-रोते भगवान् के चरणों में और गोस्वामीजी के गुरु परमहंसजी से गोस्वामीजी को चङ्गा कर देने के लिए प्रार्थना की। भीतर जलन होने लगी। मेरे लिए संसार में अँधेरा जँचने लगा। गोस्वामीजी के अच्छे हो जाने का संवाद पाने के लिए दिन-रात बड़ी बेचैनी से कटने लगे।

आकाशमार्ग से ब्रह्मचारीजी का दरभंगा जाना

दरभङ्गा में इस बार जिस तरह गोस्वामीजी चङ्गे हुए वह अद्भुत वृत्तान्त है। शुक्रवार को सबेरे तार मिला—"गोस्वामीजी की हालत खराब है। डबल निमोनिया होने से दोनों फेफड़े सड़ने लगे हैं; बचने की आसा नहीं है।" तार पाते ही उस दिन गोस्वामीजी के घर के सब लोगों के साथ कुछ गुरुभाई दरभङ्गा को रवाना हो गये। इधर हमारे गुरुभाई श्रद्धेय श्यामाचरण बख़शी, यह बुरी खबर पाते ही, ब्रह्मचारीजी के पास बारोदी जा पहुँचे।

उन्होंने ब्रह्मचारीजी के चरणों में गिरकर हाथ जोड़े हुए रोते-रोते कहा—'आप दया करके हमारे गुरुदेव को बचाइए। मेरे जीवन का आधा हिस्सा लेकर उनको बचा दीजिए।' ब्रह्मचारीजी ने कहा—"यदि वे चले ही गये तो मैं तो मौजूद हूँ।" गुरु-गत-प्राण सीधे-सादे बख़शीजी ने कहा—'हम लोग आपको नहीं चाहते, हमको तो गुरुदेव चाहिए।' उनकी निष्कपट गुरुभक्ति देखकर ब्रह्मचारीजी थोड़ी देर के लिए ध्यानमग्न हो गये, फिर एक गहरी साँस छोड़कर बोले—वक्त पूरा हो आया है। अब क्या हो सकता है? मैंने तो उनको कमरे में नहीं देखा। या तो मामला तय हो गया है या उनके गुरुजी ने उन्हें बिना ही देह के बने रहने की शक्ति दी है। अच्छा, अब तू जा; अगर मङ्गलवार तक तार आ जावे तो समझना कि डर नहीं है। फ़िक्र मत करना। मैं वहाँ जाता हूँ।" अब ब्रह्मचारीजी ने आसन से उठकर सब को बुलाकर कह दिया—"जितने दिन तक भीतर से दरवाज़ा न खोलूँ, कोई न तो इस दरवाज़े को धक्का देना और न इसे खोलने की कोशिश करना।" ब्रह्मचारीजी ने कमरे के भीतर जाकर दरवाज़ा बन्द कर लिया।

उस दिन ढाका से भी पूर्वोक्त सब लोग दरभङ्गा को जा रहे थे। ग्वालन्दो के जहाज़ पर सवार होकर सब लोग उदास बैठे हुए हैं, कोई-कोई रो रहा है। अकस्मात् योगजीवन ने आकाश की ओर देखकर उँगली से दिखाकर, कहा—"वह देखो, ब्रह्मचारीजी भी दरभङ्गा जा रहे हैं।" उन्होंने हाथ हिलाकर मुझसे कहा—'हम भी दरभङ्गा जाते हैं। तुम लोग चिन्ता मत करो, कुछ डर नहीं है।" बूढ़ी महाराजिन ने दरभङ्गा पहुँचकर देखा था कि पास के कमरे में बैठे हुए ब्रह्मचारीजी गोस्वामीजी की ओर देख रहे हैं। मङ्गलवार तक ढाका के गुरुभाई लोग तारघर की ओर दौड़धूप करते रहे थे; ख़बर मिली कि गोस्वामीजी को आराम हो रहा है।

गोस्वामीजी का दरभङ्गा प्रभृति स्थानों में ठहरना

गत फागुन महीने से लेकर असाढ़ तक गोस्वामीजी ढाका में नहीं थे। अतएव उनका, इस समय का, कुछ भी विवरण मेरी डायरी में नहीं रहा। गुरुभ्राता श्रीयुक्त कुञ्जविहारी गुह ठाकुरता और श्रीयुक्त ज्ञानेन्द्रमोहन दत्त ने अपनी डायरियों में गोस्वामीजी की इस समय की अद्भुत घटनाएँ साफ़-साफ़ लिख ली हैं। उनकी डायरियाँ देखकर मैं इस स्थान पर थोड़ा सा आभास लिखे लेता हूँ कि गोस्वामीजी किस समय, कहाँ, किस तरह, थे।

माघ कृष्णा १४ को गोस्वामीजी पश्चिम जाने की इच्छा से कलकत्ते को रवाना हुए। वहाँ एक दिन ठहरकर दूसरे दिन श्यामनगर पहुँचे। वहाँ से नाव में बैठकर चूँचुड़ा गये; बुधवार को महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से भेंट की। महर्षि ने गोस्वामीजी को देखकर बहुत ही आनन्द प्रकट करके कहा—"अहा! सभी कहते हैं कि 'गोस्वामी पागल हो गये हैं, पौत्तलिकों का सा व्यवहार करते हैं;' किन्तु ये तो पागल नहीं हैं। मैं तो इन्हें धूप की सुगन्ध से आवृत सफ़ेद दुर्गाजी की मूर्त्ति की तरह देखता हूँ।"

इसी समय महर्षि के पास एक चिट्ठी आई। किसी प्रसिद्ध ब्राह्मसमाजी ने कुछ प्रश्न करके उनको लिखा है, "आपने एकान्त स्थान में बहुत समय तक रहकर धर्म-साधन किया है—इससे आपको क्या मिला? और इस सम्बन्ध में आप क्या उपदेश देते हैं?" इत्यादि। महर्षि ने अपने अनुगत भक्त श्रीयुक्त प्रियनाथ शास्त्रीजी से उत्तर लिखने के लिए कहा—"लिख दो अब से * * * गोस्वामीजी जो कुछ कहें वह मेरा ही कहना समझा जाय।"

महर्षि से भेंट करके गोस्वामीजी बर्दवान गये। वहाँ, ब्राह्मसमाज-मन्दिर के समीप समाज के सेक्रेटरी के डेरे पर उतरकर नित्य सङ्कीर्तन में बड़ा आनन्दोत्सव करने लगे। श्रीयुक्त नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय प्रभृति प्रसिद्ध ब्राह्मसमाजी लोग कलकत्ता और अन्य दूर-दूर के स्थानों से आकर गोस्वामीजी की उपासना में शामिल होने लगे। उदय और अस्त के समय सभी लोग गोस्वामीजी के साथ धर्मचर्चा में आनन्द करने लगे। एक दिन गोस्वामीजी एक ढाक का पेड़ देखकर ठिठककर खड़े हो गये। फिर उसके प्रत्येक फूल में भगवती का आविर्भाव देखकर मूर्छित होकर गिर पड़े! और एक दिन बर्दवान-नरेश के गुलाब-बाग में गये तो वहाँ गुलाब के फूलों की शोभा देखते-देखते समाधिस्थ हो गये। बर्दवान में रहते समय उन्होंने श्रीयुक्त कुञ्जविहारी गुह, श्रीयुक्त देवेन्द्रनाथ सामन्त प्रभृति को दीक्षा दी; इसके बाद शिष्यों को साथ लेकर वे दरभङ्गा की ओर चल पड़े।

चैत के बीचोबीच गोस्वामीजी दरभङ्गा में पहुँच गये। कुछ ही दिन के बाद उनकी छाती के निचले हिस्से में एक तरह का दर्द होने लगा। होमियोपैथी की 'नक्स वोमिका' का सेवन करने से कई दिन तक कुछ अच्छे रहे। किन्तु फिर उस दवा से कुछ लाभ न हुआ। तब समस्तीपुर से विख्यात डाक्टर नगेन्द्र बाबू बुलाये गये। इधर बाँकीपुर के वकील श्रीयुक्त ब्रजेन्द्रमोहन दास ने अपने शहर से दो सुप्रसिद्ध डाक्टरों को भेजा। बड़े बड़े

चार डाक्टरों के साथ गोस्वामीजी के शिष्य डाक्टर प्रिय बाबू भी थे। किन्तु इन लोगों के इलाज से गोस्वामीजी का दर्द तनिक भी कम नहीं हुआ; बल्कि वह और भी बढ़ने लगा। धीरे-धीरे वे उठने-बैठने से भी लाचार हो गये। बिस्तर पर लेटे-लेटे ही वे पेशाब-पाखाना करने लगे। रोग बढ़ने के साथ-साथ डबल निमोनिया हो गया; इससे गोस्वामीजी के प्राण बचने के सम्बन्ध में सभी लोग निराश हो गये। फिर एक दिन जब गोस्वामीजी मरणासन्न हो गये तब अकस्मात् उनके गुरु मानस-सरोवर-निवासी श्री परमहंसजी कुछ महापुरुषों सहित वहाँ सूक्ष्म शरीर में आ गये। वे अलौकिक-शक्ति द्वारा गोस्वामीजी को चङ्गा करके चले गये।

अब गोस्वामीजी चङ्गे होकर ज्येष्ठ शुक्ला १० बुधवार को अपने घरवालों और शिष्यों के साथ देवघर के लिए रवाना हुए। रास्ते में मुकामाघाट स्टेशन पर गाड़ी बदलती है। इस समय ज्ञान बाबू टिकट लेने को बुकिंग आफ़िस गये। उन्होंने वापस आकर देखा कि रेल के डिब्बे में बहुत सी लीचियाँ रक्खी हुई हैं। उन्होंने पूछा—"लीचियाँ कहाँ से आईं?" गोस्वामीजी ने कहा—**"दरभङ्गा में रहते समय लीची खाने की इच्छा हुई थी, इसी से परमहंसजी दे गये हैं।"** सभी को बड़ा अचरज हुआ। उनमें से किसी ने नहीं देखा कि कौन किस समय लीचियाँ दे गये; इससे भी बढ़कर अचरज की बात यह है कि इस तरफ़ अभी तक लीचियाँ पकी नहीं हैं—ऐसी ख़ूब पकी लीचियाँ कहाँ मिल गईं?

देवघर में पहुँचकर गोस्वामीजी स्कूल में उतरे। कई जगह घूम-फिरकर और मूर्त्तियों के दर्शन करके अगले दिन सबेरे आदर्श ब्राह्मसमाजी श्रीयुक्त राजनारायण बसु के घर गये। उस दिन भक्तप्रवर बूढ़े राजनारायण बसु के साथ धर्मचर्चा में इतनी आनन्द की उमङ्ग आई कि दोपहरी ढल जाने पर भी किसी को ख़बर ही नहीं हुई कि नहाया-धोया है या नहीं, फिर भूख-प्यास की ख़बर ही किसे थी! देवघर से गोस्वामीजी कलकत्ते आये। वहाँ से ज्येष्ठ के आरम्भ में सभी के साथ शान्तिपुर पहुँचे। ज्येष्ठ कृष्णा ७ को गोस्वामीजी ने शिष्यों समेत, शान्तिपुर के समीप, बाबला में जाकर श्री अद्वैत प्रभु की गद्दी के दर्शन किये। स्थान बहुत ही एकान्त और रमणीय है, तपस्या करने के लायक़ है। यहाँ पर गोस्वामीजी ने सभी से कहा—**"देवता के स्थान में जाने पर मूर्ति को टकटकी लगाकर देखते हुए एकाग्र मन से नाम का जप किया जाय तो असली देवता के दर्शन हो सकते हैं।"** अद्वैत प्रभु के दर्शन करके गोस्वामीजी ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

ज्येष्ठ कृष्णा ८ को गोस्वामीजी चुवाडाँगा गये। उनके घर के लोग कुमारखाली चले गये। असाढ़ के आरम्भ में सब लोग एक साथ ढाका पहुँचे। यहाँ दो-चार दिन विश्राम करके सब के साथ गोस्वामीजी, ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने को, बारोदी गये। ब्रह्मचारीजी ने कहा—'दरभङ्गा पहुँचकर हमने तुमको घर में नहीं देखा।' गोस्वामीजी ने कहा—**'गुरुजी ने मुझे देह से बाहर निकाल लिया था।'** बारोदी में कई दिन ठहरकर अब वे ढाका लौट आये हैं और ब्राह्मसमाज के प्रचारक-निवास में पहले की तरह रहते हैं।

रोग से बचने का अद्भुत ब्योरा

गोस्वामीजी ढाका आ गये हैं। तीसरे पहर कोई ५॥ बजे गोस्वामीजी के दर्शन करने को मैं समाज-मन्दिर में गया। मैंने आज ही पहले-पहल गोस्वामीजी की पत्नी के पैरों में गिरकर प्रणाम किया। प्रचारक-निवास में आज बेहद भीड़ है। गोस्वामीजी को प्रणाम करके मैं बैठ गया। एक बात कहने तक का मुझे अवसर न मिला। गोस्वामीजी का चेहरा देखने से बड़ा कष्ट होने लगा। शरीर बहुत ही कमज़ोर हो गया है। सिर के बाल झड़ गये हैं। रङ्ग बिलकुल काला हो गया है, देह दुबली है। हाथ-पैरों की तो बात ही क्या, सिर तक सूख गया है। गोस्वामीजी को देखकर अब घनी जान-पहचानवाले को भी धोखा होता है। वे टकटकी लगाये शुद्धासन पर एक ही तरह बैठे हुए हैं। साधन के सिवा और कुछ काम नहीं करते। कोई कुछ पूछता है तो चौंक पड़ते हैं; बहुत संक्षेप में तनिक उत्तर देकर फिर अपने भाव में मग्न हो जाते हैं। देर तक बैठा-बैठा मैं डेरे को लौट आया।

गोस्वामीजी के चङ्गे हो जाने का हाल सुनने के लिए बड़ा कौतूहल हुआ। उनके शिष्यों के मुँह से जो अद्भुत बातें सुनता हूँ उन पर मुझे विश्वास नहीं होता। २।४ दिन प्रचारक-निवास में जाने-आने पर पण्डितजी और श्रीधर प्रभृति के मुँह से गोस्वामीजी के चङ्गे होने का अद्भुत वृत्तान्त सुना। स्वयं गोस्वामीजी ने भी अपने आराम होने का समय-समय पर जैसा हाल बतलाया उससे इन लोगों की बातें ठीक-ठीक मिल गईं। घटना का वर्णन जैसा सुना है, उसे लिखे लेता हूँ।

गोस्वामीजी का रोग जब बहुत ही बढ़ गया तब उनके नित्य के साथी शिष्य लोग बिलकुल पागल से हो गये। नामी गिरामी डाक्टर लोग सदा आने और यथासाध्य

गोस्वामीजी की चिकित्सा करने लगे। प्रति दिन बेहद खर्च होने लगा। बहुत कोशिश करते रहने पर भी गोस्वामीजी की हालत धीरे-धीरे बिलकुल खराब हो गई। अब सभी लोग हताश हो गये। इस समय गोस्वामीजी के शिष्यों में से कोई-कोई उनके बिछौने की ओर देखकर बीच-बीच में चौंकने लगे। उन्होंने देखा कि चार सूक्ष्म-देहधारी—कोई घुटे सिर का, कोई पकी दाढ़ी-मूँछों और जटाओंवाला, कोई साँवला और कोई तेजःपूर्ण गोरा मोटा और ऊँचे डील-डौल का—प्राचीन महापुरुष गोस्वामीजी के चारों ओर पल-पल भर में प्रकाशित होते हैं और तुरन्त ही गुप्त हो जाते हैं। शिष्य लोग चर्चा करने लगे कि ये महापुरुष कौन हैं और किस लिए प्रकट होते हैं तथा किस लिए चटपट अन्तर्द्धान हो जाते हैं। कोई-कोई तो यह अद्भुत घटना देखने से तुरन्त ही विपत्ति की आशङ्का करके बहुत ही डरे और घबरा गये। किन्तु कोई-कोई उन महापुरुषों में सुपरिचित बारोदी के ब्रह्मचारीजी को देखकर, इसे अपना भाग्य समझकर, प्रसन्न और आश्वस्त होने लगे। इधर गोस्वामीजी अचेत हो गये; नाड़ी रुक गई। डाक्टर लोग आये। वे देखकर बाहर जाकर कह गये—"अब देर नहीं है, मामला ठण्डा समझो।" तब राधाकृष्ण बाबू एकतारा लेकर, बहुत ही व्याकुल होकर, बड़ी लगन के साथ भगवान् का नाम गाने लगे। गोस्वामीजी का शरीर हिलता-डुलता नहीं है, बिलकुल स्थिर है। न जाने किस प्रकार, किस शक्ति का सञ्चार होने से वे दो-एक बार सिर को हिला-डुलाकर, एकाएक चकित की तरह, उछल उठे और जोर-जोर से "हरि बोलो, हरि बोलो" कहकर दौड़-दौड़कर उद्दण्ड नृत्य करने लगे। यह क्या है! यह क्या हुआ, यह क्या देख रहा हूँ, यह तो भगवान् की असाधारण कृपा साक्षात् अवतीर्ण हुई है! गुरु-गत-प्राण गोस्वामीजी के शिष्य, भाव में तन-मन की सुधि भूलकर, "जय दयालु महाराज" "बोलो हरि बोलो" कहकर भगवान् की महिमा का कीर्त्तन करने लगे। संकीर्तन का उच्च शब्द चारों दिशाओं में गूँजने लगा। इसे गोस्वामीजी की विपत्ति की सूचना समझकर बहुत से लोग दौड़ते हुए कीर्तन-स्थान में आ पहुँचे। वे लोग उस समय अद्भुत भावावेश में गोस्वामीजी को नृत्य करते देखकर और हुंकार-गर्जन के साथ जोर-जोर से "हरि बोलो" कहते सुनकर दङ्ग हो गये। संकीर्तन के स्थान में डाक्टर लोग भी आये। गोस्वामीजी को उछल-उछलकर "हरि बोलो" कहकर नृत्य करते देख उनको तो मानों काठ मार गया। धीरे-धीरे कीर्तन रुका। गोस्वामीजी भी नीचे गिरकर भगवान् को

साष्टाङ्ग प्रणाम करके धीरे-धीरे उठ बैठे। अब डाक्टरों ने कहा—"महाशय, हम लोगों की डाक्टरी विद्या झूठी है। आज आपके जीवित हो जाने से यह साफ़ साफ़-प्रमाणित हो गया कि न हम लोग कुछ जानते हैं और न समझते हैं।"

आषाढ़ कृष्णा १, इसके बाद गोस्वामीजी एक बार बारोदी के ब्रह्मचारीजी से भेट करने गये थे। वहाँ भी बहुतेरी अद्भुत घटनाएँ हुई थीं।

धर्म और नीति के सम्बन्ध में उपदेश

आषाढ़ कृष्णा ४, शनिवार, सं० १९४४ आजकल सब जगह गोस्वामीजी की जिस ढंग से चर्चा होती है वह हम लोगों को सहन नहीं होती। किसी प्रकार गोस्वामीजी के मुँह से प्राचीन हिन्दू धर्म के कुसंस्कार और हिन्दूसमाज की दुर्नीति के विरुद्ध दो-चार बातें पा जायँ तो हम लोग गोस्वामीजी को अपनी ही तरह ब्राह्ममतावलम्बी बताकर लोगों का मुँह बन्द कर सकें। किन्तु वे तो धर्म के सम्बन्ध में किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध एक बात तक नहीं कहते, यह बड़ी मुश्किल हो गई है। आज 'धर्म और नीति' के सम्बन्ध में वक्तृता देने के लिए गोस्वामीजी से अनुरोध किया गया। शरीर बहुत ही सुस्त था, फिर भी वे राज़ी हो गये। तीसरे पहर कोई साढ़े पाँच बजे वे ब्राह्मसमाज-मन्दिर में आ गये और एक साधारण बेंच पर बैठकर इस प्रकार कहने लगे। मैं नोट करने लगा। यथा—

आज का बोलने का विषय है—'धर्म और नीति।' धर्म से हम क्या समझें? जैसे आग का धर्म जलाना है, जल का धर्म शीतलता है, वैसे ही धर्म भी मनुष्य का स्वभाव है। जो सभ्य-असभ्य, ज्ञानी-अज्ञानी, बालक-वृद्ध प्रभृति सभी प्रकार की अवस्थाओं के लोगों में साधारण रूप से विद्यमान है, वही मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। यह गुण तीन भागों में बाँटा जाता है। ज्ञान, प्रेम और इच्छा। इन तीनों गुणों को बढ़ाना ही मनुष्य-जीवन का उद्देश्य है—यही मनुष्य का धर्म है।

धर्म सत्य वस्तु है। जो सत्य सर्वसाधारण के आगे सत्य जँचता है, जिस सत्य पर प्रत्येक जाति और प्रत्येक सम्प्रदाय सत्य समझकर विश्वास

करता है, जिस पर व्यक्ति-विशेष का भी मतविरोध नहीं है और जो सभी के लिए सत्य है वही मनुष्य-प्रकृति के लिए भोग्य—स्वभाव का सत्य है।

जगत् को किसी ने उत्पन्न किया है, जगत् है, हम भी एक व्यक्ति हैं। यह तीन तरह का ज्ञान सब मानवों को स्वभाव से होता है। इसको कहीं सीखना नहीं पड़ता। सच बोलना चाहिए, दूसरे पर अत्याचार करना ठीक नहीं, इत्यादि कुछ विषय भी स्वभाव से ही सत्य हैं। जहाँ मनुष्य है वहीं ये सब सत्य विद्यमान हैं; सत्य का बोध स्वभाव के साथ-साथ है। मन की इन सब सत्य बातों को जो जिस परिमाण में समझ सके, उसी परिमाण में उनके आगे ज्ञान प्रकट होगा। सरल सत्य का अनुसरण करने से ही धर्म-प्राप्ति होती है। मनुष्य की वास्तविक प्रकृति अथवा सरल सत्य ही मनुष्य का धर्म है। चित्त सन्तुष्ट न हो तो धर्म कभी प्राप्त नहीं होता। सरलतापूर्वक सत्य का पालन करने से ही चित्त को सन्तोष होता है। असत्य कार्य करने और असत्य विचार करने से चित्त में असन्तोष उत्पन्न होता है; सदा सरलतापूर्वक सत्य का अनुसरण करने से चित्त सन्तुष्ट रहता है।

जो सरल सत्य का व्यवहार करेंगे वे प्राण की स्वाभाविक वृत्ति के अनुरोध से ही करेंगे; किसी वस्तु की आवश्यकता न रक्खेंगे; लोगों की ओर, समाज की ओर, किसी के उपकार या अपकार की ओर—यहाँ तक कि अपने भले-बुरे की ओर—वे देखेंगे तक नहीं; अपनी मर्ज़ी से अपना कर्त्तव्य कर जायँगे। उनका काम दिखाऊ न होगा। बिना किसी की ओर देखे, चन्द्र-सूर्य की तरह, अपना काम चुपचाप कर जायँगे। कोई इस प्रकार का बर्ताव करेगा तो चारों ओर के आदमी उसके जीवन को देखकर जीवन प्राप्त करेंगे, धन्य होंगे।

नीति क्या है? जिस सरल सत्य-समुच्चय की बात कही गई है—अर्थात् सच बोलना, किसी का बुरा न करना, अश्लील और अनिष्टकारी बर्त्ताव से बचे रहना, इत्यादि—वही साधारण नीति है। इस साधारण नीति को सभी मानते हैं। इस प्राकृतिक और मनुष्य-जाति की स्वाभाविक

नीति का पालन सब को करना चाहिए। इसके सिवा और भी दूसरे प्रकार की नीति है। उसकी आवश्यकता देशभेद, कालभेद और स्वभावभेद से कभी तो होती है और कभी नहीं भी होती। यह नीति सब जगह एक सी नहीं है। एक देश के लिए कर्त्तव्य समझकर जिसका अवलम्बन किया जाता है उसी का, दूसरे देश के लिए घोरतर पाप बताकर, त्याग किया जाता है। कहीं तो लोग मांस-मछली खाने को कर्त्तव्य बना लेते हैं और कहीं उसे जघन्य पाप बतलाकर विष की तरह छोड़ देते हैं। किसी स्थान में मलेरिया फैलने पर दूषित जल-वायु और स्थान को सुधारने के लिए, सब की स्वास्थ्य-रक्षा करने के लिए, एक नई नीति का अवलम्बन करना आवश्यक हो जाता है; किन्तु मलेरिया के घटते ही फिर उस नीति के अनुसार चलने की आवश्यकता नहीं रहती; कालभेद से जिस नीति की आवश्यकता होती है उसको काल (समय) ही आवश्यक सिद्ध कर देता है। इसके साथ थोड़े से आदमियों का सम्बन्ध रहता है। हत्यारों को फाँसी दी जाती है, वर्त्तमान समय में इस देश की यही नीति है; किन्तु अमेरिका प्रभृति बहुत से स्थानों में यह नीति बहुत ही बुरी मानी जाकर हटा दी गई है। अतएव देशभेद से नीति इस देश में है, दूसरे देश में नहीं है; कालभेद से नीति आज है, कल नहीं रहेगी; और फिर पात्र-भेद की नीति हमारे लिए है तुम्हारे लिए नहीं। किन्तु जो सहज नीति है, जिसमें देश-काल-पात्र का भेद नहीं होता, वह सदा से सब जगह एक सी रहती है। वह आत्मा के कल्याण और उन्नति के लिए सभी को एक सी है। किन्तु अवस्था-भेद से मनुष्य की साधारण नीति और कर्त्तव्य में भेद-भाव रहेगा ही।

किसी आम के दस-पाँच फल खाकर उनकी गुठलियों को दस-पाँच हाथ के अन्तर पर अलग-अलग गाड़ा जाय तो सभी पौधे सोलहों आने एक से नहीं होते। फिर एक ही आम के सभी फल सब बातों में कभी बिलकुल एक से नहीं पाये जाते। स्वाद, तोल और सूरत का उनमें थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य रहेगा। बीज की प्रकृति और शक्ति के अनुसार जल-वायु-उत्ताप

आदि आकर्षित होने से यह भेद-भाव हो जाता है। इसी तरह एक ही माता के गर्भ से जन्म पाकर भी, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के पाँच सगे भाइयों को भिन्न-भिन्न काम करना पड़ता है। मनुष्य-शरीर में जिन मांसपेशियों, हड्डियों, शिराओं, नाड़ियों, आँतों और अवयव आदि का रहना आवश्यक है वे सबकी देह में एक ही से होते हैं फिर भी रुचि, अनुभव और काम सबमें बिलकुल एक ही सा नहीं पाया जाता। इसी प्रकार कर्तव्य और मूल धर्मनीति यद्यपि सभी की एक है तथापि उसका आचरण प्रत्येक का अपना-अपना अलग ढङ्ग का है। सभी मनुष्यों का कर्तव्य एक सा नहीं है। सभी मनुष्यों का कर्तव्य एक ही न होने पर भी देशगत, समाजगत और कालगत नीति का तथा जो जिस काम को कर्तव्य मानकर स्वीकार कर ले उसका प्रतिपालन सब तरह से करते जाना तब तक आवश्यक है जब तक कि वह साफ़-साफ़ अनुचित न जँच जाय। जिसे कर्तव्य समझकर मान लेंगे वही हमारा धर्म है। मूल धर्म-नीति का प्रतिपालन न करने से जिस प्रकार अनिष्ट होता है, अपराध होता है उसी प्रकार देशगत, समाजगत और कालगत स्वीकृत कर्तव्य के विरुद्ध बर्ताव करने से भी पापग्रस्त होना पड़ता है। अतएव जो जिसे कर्तव्य समझकर विश्वास करता है, सरलता से सत्य मानकर स्वीकार करता है, उसका वही धर्म है, उसका पालन उसे अवश्य करना चाहिए।

शरीर बहुत ही शिथिल था, इसलिए गोस्वामीजी और अधिक न बोल सके। उनका व्याख्यान बहुत अच्छा लगा। किन्तु उन्होंने ऐसा कुछ न कहा जिससे मेरा मतलब सिद्ध होता; इसके लिए तनिक खेद भी हुआ।

त्राटक साधन की रीति

प्रतिदिन जिस प्रकार ब्राह्मसमाज-मन्दिर में जाता हूँ उसी प्रकार आज भी गया। श्रीयुक्त श्यामाकान्त पण्डितजी ने मुझे देखकर कहा—"साधन का एक नया अङ्ग गोस्वामीजी ने हम लोगों को बता दिया है। क्या तुम्हें भी बतलाया है? अगर न बतलाया हो तो अभी जाकर उनसे पूछ लो।"

आषाढ़ कृष्णा ११, सं० १९४४

मैं तुरन्त गोस्वामीजी के पास पहुँचा। वहाँ और कोई नहीं था। प्रणाम करके ज्योंही मैं खड़ा हुआ त्योंहीं उन्होंने पूछा —**'कैसे हो ? साधन कैसा चलता है ?'** मैंने प्राणायाम करने को ही प्रधान साधन समझ रक्खा है ; इससे उत्तर दिया—'घर पर साधन नहीं हुआ। अब किसी तरह निभता जाता है।'

गोस्वामीजी ने कहा—**'नाम जपते हो न ? नाम का जप करने से कैसा मालूम होता है ?'** मैंने कहा—'नाम का जप करने से समय-समय पर आनन्द होता है। पहले की अपेक्षा इस समय भगवान् के भरोसे रहना भला लगता है।' गोस्वामीजी ने कहा—**'ठीक है। तुमने छोटी उम्र में ही साधन ले लिया है, जीवन में ख़ासी उन्नति कर सकोगे। मुझे तो समय बीत जाने पर साधन मिला; बुढ़ापे में अब क्या करूँगा ? किस क्लास में पढ़ते हो ? अच्छी तरह लिखते-पढ़ते जाते हो न ?'**

मैंने 'जी हाँ' कहकर ही उनसे पूछा—'क्या आपने कुछ नया साधन सिखला दिया है ? इसीसे पण्डितजी ने आपसे पूछ लेने को कह दिया है। क्या मैं उसे कर सकूँगा ?'

गोस्वामीजी ने कहा—**हाँ, तुम भी कर सकते हो।**

अब उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। मैंने फिर हिम्मत बाँधकर कहा—'मैं तो नियम आदि कुछ भी नहीं जानता।' गोस्वामीजी ने सिर ऊँचा करके मेरी ओर ताककर कहा—**"पण्डितजी के पास जाकर उन्हीं से सीख लो।"** अब उन्होंने फिर आँखें मूँद लीं। अब मैंने चटपट पण्डितजी के पास जाकर ब्योरा पूछा। उन्होंने मुझे, गोस्वामीजी के आदेशानुसार, योग-क्रिया का 'त्राटक साधन' बतला दिया।

समय पाकर मैंने गोस्वामीजी से इस साधन के करने की रीति आदि खुलासा मालूम कर ली। क्रम-क्रम से यह अभ्यास पञ्चभूतों पर करना पड़ता है। पहले पृथ्वी पर अभ्यास किया जाता है ; उसकी रीति बतला दी। हरे रङ्ग के क्षितिज को सामने करके उसके विशिष्ट स्थान पर टकटकी बाँधकर कोशिश करके दृष्टि एकाग्र की जाती है। गुरु के सङ्केत के अनुसार, भीतर और बाहर निर्दिष्ट लक्ष्य-स्थान पर मन को लगाकर, गुरु के दिये हुए इष्ट मन्त्र का साधन किया जाता है। बारंबार चेष्टा करने से जब विकार न रह जाय, आँसू न गिरें; कम से कम एक घण्टे तक एक आसन से स्थिर बैठने का अभ्यास हो

जाय तब साथ ही साथ अन्य भूतों में साधन किया जाता है। सभी भूतों का साधन करते समय देखने की विचित्र दशा का हाल गुरु को बतलाता जाय और उनकी आज्ञा के अनुसार उपयोगी क्रम-कौशल का अवलम्बन करे। सङ्केत को समझ करके मैंने भी 'अनिमेष साधन' का आरम्भ कर दिया।

व्याख्यान देने में गोस्वामीजी की असम्मति

श्रावण शुक्ला २, शुक्रवार, सं० १९४४

बहुत समय से मैं ब्राह्मसमाज में बहुत आता-जाता हूँ; ब्राह्मसमाजियों के घर भी मैं बेहद आया-जाया करता हूँ; जलसा इत्यादि कामों में भी दौड़-धूप और उछल-कूद में औरों से अधिक करता हूँ; यह सब देख-सुनकर सभी लोग मुझे बड़ा उत्साही ब्राह्मसमाजी-युवक जानते हैं। गोस्वामीजी से मैंने योगधर्म की दीक्षा ली है, इसलिए ब्राह्मसमाज के अधिकारी लोग मुझसे ही उनके ब्राह्मसतविरोधी काम-काज की खबर लेने की चेष्टा करते हैं। मैं भी बहुत सी बातें कहा करता हूँ। आज, रजनी बाबू प्रभृति के कहने से, कुछ मित्रों के साथ मैंने जाकर गोस्वामीजी से कहा— साधारण ब्राह्मसमाजियों का यह अनुरोध है कि आप कल, शनिवार की शाम को, 'अभ्रान्त शास्त्र और गुरुवाद'' पर व्याख्यान दें।

सुनकर गोस्वामीजी ने कहा—"**मैं इसके विरुद्ध कुछ कह न सकूँगा। मैं जिसे ग्रहण करने योग्य कहूँगा उसे ब्राह्मसमाज त्यागने को कहेगा। भला व्याख्यान कैसे हो?**" हम लोगों ने ब्राह्मसमाज के अधिकारियों के पास जाकर उन्हें गोस्वामीजी का उत्तर बतला दिया। इस बात से ब्राह्मसमाज में खासी हलचल मच गई। बहुतेरे लोग कहने लगे कि अब गोस्वामीजी बहुत दिन तक वेदी का काम न कर सकेंगे।

साधु की अवज्ञा का दण्ड

श्रावण शुक्ला ४

जब से गोस्वामीजी दरभङ्गा से लौटे हैं तब से अनेक श्रेणियों के साधक और तरह-तरह की तबीअत के आदमी प्रायः सदा उनके पास आया करते हैं। मणिपुर के भयावने जङ्गल में और पुराने 'रमना' की घनी झाड़ी में टूटी-फूटी मसजिद में, भीड़भाड़ से दूर रहनेवाले, जो प्राचीन मुसलमान फ़क़ीर हैं वे भी समय-समय पर गोस्वामीजी के यहाँ आते हैं। हिन्दू जटाधारी संन्यासी लोग भी एकान्त में और गुप्त रीति से आकर

गोस्वामीजी का सत्सङ्ग कर जाते हैं। आज तीसरे पहर समाज-मन्दिर में जाकर सुना कि बड़ी देर से एक जटाधारी उदासी साधु गोस्वामीजी के पास आये हुए हैं। गोस्वामीजी उनकी बहुत ही श्रद्धा-भक्ति कर रहे हैं। गोस्वामीजी के शिष्यों ने शायद उन्हें प्रचारक-निवास में ही गाँजे का प्रबन्ध करते देखा है; और वे अपनी मौज से गाँजे की दम लगा रहे हैं। संन्यासी देखने में तो खासा तेजस्वी, भजनानन्दी और सौम्यमूर्त्ति है। उसको गाँजा पीने से रोकने का साहस किसी ने नहीं किया। गोस्वामीजी ने देख-सुनकर भी इस गर्हित कार्य का कुछ प्रतिवाद नहीं किया। समाज-गृह में बैठकर ब्राह्म लोग इसकी चर्चा कर रहे थे।

मैं तो सुनते ही जल-भुन गया। मैंने सब लोगों से कहा—"आप लोग देखते रहिए। उस गँजेड़ी को गाँजे की दम लगाते देखते ही मैं उससे समाज के अहाते से चले जाने को कहूँगा। अब मैं बड़ी शेखी के साथ ज्योंही चलने लगा त्योंही अकस्मात् खाली जगह में सीढ़ी समझकर पैर बढ़ाते ही धम से नीचे गिर पड़ा। पैर में बहुत चोट लगी। कोई एक घण्टे तक एक ही जगह रहकर दर्द के मारे छटपटाता रहा। तनिक अँधेरा होने पर मेरा एक मित्र मुझे गोद में लेकर मेरे डेरे पर पहुँचा आया। दो-तीन दिन तक मैं चलने-फिरने लायक़ न रहा। फिर ब्राह्मसमाज-मन्दिर में आकर सुना कि वह संन्यासी ऊँचे दरजे का महात्मा था, उसका परिचय मालूम नहीं। बस्ती में बड़े भाग्य से ही ऐसे सिद्ध पुरुष आ जाते हैं।

छिपकर प्राणायाम करने और उच्छिष्ट की उज्र का उपदेश

श्रावण शुक्ला १४

बहुतेरे गुरु-भाई समझते हैं कि साधन की बहुत सी भीतरी बातें मैंने ब्राह्मसमाजियों को बतला दी हैं। गोस्वामीजी के साथ मेरे बेहद बहस करने और खुल्लम-खुल्ला 'आलोचना-सभा' में साधन-सम्बन्धी प्रश्न आदि करने से ही उन लोगों को मुझ पर ऐसा सन्देह हुआ है। आज गोस्वामीजी ने मुझसे कहा—**"लोगों के सामने प्राणायाम न किया करो। इन कामों के लिए लोग तुम्हारी हँसी करेंगे, चिढ़ावेंगे। और ये काम जितने ही गुप्त रूप से किये जायँ उतना ही लाभ है।"**

मैंने गोस्वामीजी से पूछा—क्या हमें जूठा न खाना चाहिए? खाने से बचा हुआ ही न जूठा है? तो दूसरे के साथ बैठकर एक ही बर्तन में तो खा सकता हूँ न?

गोस्वामीजी ने कहा—**नहीं वह भी मना है।**

मैंने कहा—हमारे मुहल्ले में मेरा एक मित्र है, भुवन* । वह ब्राह्मसमाजी हो गया है। बचपन से ही उसके साथ मेरी घनिष्ठ मित्रता है। मुझे कुछ बीमारी हो जाती है तो बहुत दूर रहने पर भी उसे पता लग जाता है—वह बेचैन हो उठता है। उस पर भी ऐसा कुछ संकट पड़ता है तो मुझे चट से मालूम हो जाता है। हम दोनों बचपन से ही साथ-साथ एक थाली में भोजन करते आते हैं। तो क्या अब मैं उसके साथ भी एक थाली में न खाने पाऊँगा ? गोस्वामीजी ने मुसकुराकर कहा—**"अच्छा, अच्छा, उसके साथ खा लेना। इससे तुम्हारी कुछ हानि न होगी। तुम दोनों का आपस में जो सद्भाव है उससे जूठे-मीठे का कुछ दोष तुम को स्पर्श न करेगा।"**

कुम्भक

कई दिन से गोस्वामीजी बीमार हैं। किसी से उनकी भेंट नहीं हो पाती। श्रीयुक्त मन्मथनाथ मुखोपाध्याय वेदी का काम किया करते हैं। आज श्यामाकान्त पण्डितजी ने मुझे बुलाकर एकान्त में कहा—"साधन के एक नये अङ्ग को ग्रहण करने की आज्ञा हुई है। गोस्वामीजी ने वह तुम लोगों को बतला देने के लिए कहा है, सो वह देख लो।" अब उन्होंने एक प्रकार की अद्भुत प्रक्रिया दिखला दी। इसे कुम्भक कहते हैं। प्रतिदिन साधन करते समय आरम्भ में और अन्त में तीन बार यह कुम्भक करना होगा। देहात में पण्डितों को सन्ध्या-पूजा करते समय नाक दबाकर बाहर की हवा को खींचकर उसे रोके हुए जिस प्रकार कुम्भक करते देखा है, यह कुम्भक उस प्रकार का नहीं है। हमारे गुरु महाराज की बतलाई रीति से प्राणायाम द्वारा युक्ति से प्राणवायु को धीरे-धीरे खींचकर उसे एकदम मूलाधार में पहुँचाकर स्थापन करना होगा। फिर ऊपर के और नीचे के तमाम इन्द्रिय-छिद्रों को मूँद करके, श्वास-प्रश्वास और साधारण वायु की अन्तर्गति को बिलकुल रोक करके, नाम-जप में चित्त को लगाकर, दृढ़ता के साथ उसे यथासाध्य धारण करना होगा। इस प्रक्रिया को करते समय सारी बाहरी स्मृति—देह का संस्कार तक—धीरे-धीरे विलुप्त हो जाती है। उस समय सिर्फ़ नाम के अस्तित्व का अनुभव होता रहता है। इसका थोड़ा सा आभास मुझे मिला। मैंने सुना कि इस

श्रावण कृष्णा १०, रविवार

---

* श्रीयुक्त भुवनमोहन चट्टोपाध्याय (मिस्टर बा० एम० चैटर्जी, बार-एट-लॉ) बैरिस्टर।

प्राणायाम के द्वारा कुम्भक करने का विषय श्रीमद्भगवद्गीता में संक्षेप में कहा गया है। सब लोगों में इसका प्रचार नहीं है। यह सिर्फ़ गुरुपरम्परा से प्राप्त है। अतएव इसका उल्लेख मैंने भी संकेत में ही कर लिया है।

ढाका की जन्माष्टमी का जुलूस

आज जन्माष्टमी का जुलूस निकलेगा। न जाने कहाँ-कहाँ के आदमी आज इस जुलूस के देखने को ढाका आये हैं। शहर में आज बेहद भीड़भाड़ है। इस जुलूस के उपलक्ष में हर साल स्कूल, कालेज और कचहरियों में तातील रहती है। एक दिन नवाबपुर से और एक दिन इसलामपुर से बड़ी होड़ लगकर यह जुलूस निकलता है। लूट-खसोट, मार-पीट और उपद्रव को रोकने के लिए सरकार हर साल इस समय पर पुलिस का ख़ास प्रबन्ध रखती है।

हर साल की तरह इस साल भी तीसरे पहर तीन बजे के लगभग यह जुलूस निकला। चौड़े रास्ते से चलकर अण्टाघर का मैदान, बँगला बाज़ार और पटुवाटूली प्रभृति स्थानों में होता हुआ आज का जुलूस चलने लगा। उमङ्ग भरे नवाबपुरवालों की सम्मिलित चेष्टा और चतुराई से जुलूस आज इतना लम्बा हुआ कि कोई ३ मील रास्ते को मण्डलाकार में घेरकर एक ओर का छोर पूरा हुए बिना ही वह खालपार में, आरम्भ-स्थान में, आ गया। यह देखने से बड़ा आश्चर्य हुआ।

जुलूस में सबके आगे अखाड़ा था जिसमें कसरती लोग देशी बाजे के पीछे-पीछे डण्ड, कुश्ती, और लाठी के हाथ आदि तरह-तरह के खेल दिखलाते जा रहे थे। उनके साथ ग्वाल लोग नन्दोत्सव करते जा रहे थे। रङ्ग-बिरङ्गे ऊँचे-ऊँचे निशान और मूल्यवान् आसा-सोटा लिये हुए बहुत से आदमी उनके पीछे-पीछे जा रहे थे। उनके पीछे बड़े-बड़े हाथियों की क़तारें थीं जिन पर बहुमूल्य ज़रदोज़ी की, कामदार, विचित्र रङ्ग की मख़मली झूलें पड़ी हुई थीं। इन हाथियों के माथे पर सफ़ेद और बड़ी-बड़ी, सोने-चाँदी की, ढालें थीं; वे जब बड़ी सजधज से माथे को हिलाते-डुलाते हुए, अँगरेज़ी बाजे के साथ, ताल से चलने लगे तब दर्शकों का चित्त उमङ्ग के मारे नाचने लगा। हाथियों के जलूस के पीछे वैसे ही विचित्र साज से सजे हुए बहुत से घोड़े निकले। इसके पीछे ढाका के अपूर्व शिल्पनैपुण्य की आदर्श-स्वरूप 'चौकियाँ' एक के बाद एक निकलने लगीं। इनमें राँगे और

अभरक की बनी हुई सोने और चाँदी की प्रतिमाएँ झलमला रही थीं। अनेक प्रकार के छोटे-बड़े मन्दिरों, मठों, नावों और महलों में कौतूहल बढ़ानेवाली पुराणसम्बन्धी और अन्य प्रकार की घटनाओं के दृश्य देख पड़े। कहीं पर कौरवों की सभा में द्रौपदी-चीर-हरण के अत्याचार से भीमसेन का तड़पना और युधिष्ठिर का अमानुषिक धैर्य दिखलाया गया था; और कहीं भगवत्कृपा से असहाय-विपन्न शरणागत द्रौपदी की लाज का बच जाना दिखलाया गया था; कहीं पर पिता की वचन-रक्षा के लिए श्रीरामचन्द्र का वन को जाना, और पीछे से बड़े भाई रामचन्द्र को राजगद्दी पर बिठाने के लिए बुलाने को भरत का रोना और प्रार्थना करना दिखलाया गया था; किसी में जनमेजय का सर्पयज्ञ और उसमें, जलती हुई आग में, ऋषियों का साँपों की आहुति देना दिखलाया गया था; किसी में नैमिषारण्य में ऋषियों का पुराण सुनना दिखलाया गया था। ऐसे ही बहुत से पौराणिक दृश्य दिखलाते-दिखलाते 'चौकियाँ' सिलसिलेवार निकलने लगीं। इन 'चौकियों' के आगे-पीछे हरि-सङ्कीर्तन, बाउल-वैष्णवों का सङ्गीत, 'मनसा' का विसर्जन और चण्डी का गाना प्रभृति भी होने लगा। इसमें 'जुलूस' का एक जत्था अपने प्रतिपक्षी दूसरे जत्थे के दोष और दुराचार या दुर्व्यवहार के विषयों को चित्रों की सहायता से सर्वसाधारण के सामने प्रकट या प्रचारित करने में नहीं हिचकता है। इनका ताँता टूट जाने पर फिर खूब बड़ी-बड़ी चौकियों का नम्बर आता है। वे लोग जिस कुशलता और जिस विचित्रता से इन चौकियों को सजाते हैं उसका विचार करने से सचमुच विस्मित होना पड़ता है। २०।२५ फुट का चौकोन लकड़ी का मचान बनाकर उसपर कोई ४०।५० फुट ऊँचा तिमञ्ज़िला-चौमञ्ज़िला मन्दिर की तरह बनाया जाता है। जुलूस निकलने से दो-तीन घण्टे पहले लोग भिन्न-भिन्न स्थानों से बाँसों की सैकड़ों 'टट्टियाँ' लाते हैं। टट्टियों का बाहरी भाग सुन्दर विचित्र काग़ज़ों से मढ़ा रहता है। अचरज की बात यह है कि वे जब मचान पर एक के बाद दूसरी बाँधी जाती हैं तब ठीक-ठीक मिलकर बैठ जाती हैं—किसी स्थान का मचान या टट्टी दो-तीन इञ्च भी छोटी-बड़ी या बे-मेल नहीं होती। इस प्रकार चौकी में क्रम से ५०।६० या इससे भी अधिक टट्टियाँ संयुक्त हो जाने पर शिल्पनैपुण्य के पराकाष्ठास्वरूप कामदार, अत्यन्त अपूर्व, दोष-हीन, बड़े-बड़े मन्दिर, मठ, महल, दुर्ग इत्यादि बन जाते और कोई प्राचीन कीर्ति प्रदर्शित हो जाती है। इस प्रकार की चौकियाँ पाँच-छः से अधिक नहीं होतीं। जुलूस का काम हो जाने पर प्रायः हर साल, फोटो

उतारने के लिए, ये चौकियाँ किसी-किसी चौड़ी सड़क पर अथवा अण्टाघर के मैदान में या नहर-किनारे कई दिन तक रक्खी रहती हैं। दिन डूबने पर बढ़िया रोशनी की जाती है।

रात को, भीड़भाड़ कम हो जाने पर, जन्माष्टमी के जुलूस की बड़ी चौकी देखने के लिए, मैं गोस्वामीजी के साथ गया। गज-कच्छप को लिये हुए गरुड़ आकाशमार्ग से उड़कर एक पेड़ की डाल पर बैठने की चेष्टा कर रहे हैं, यह दृश्य ऐसे कौशल से बनाया गया है कि गोस्वामीजी कोई बीस मिनट तक उसकी ओर देखते रहे। कुस्तुनतुनिया का क़िला भी बहुत अद्भुत बनाया है। यह सब देखकर गोस्वामीजी ने कहा—**"ढाका के जन्माष्टमी के जुलूस की तरह जुलूस, ऐसा अद्भुत कारुकार्य, इस समय कहीं नहीं होता। शान्तिपुर का रास और ढाका का जन्माष्टमी का जुलूस देखने की चीज़ है, यह देश का गौरव है।"**

बड़ी चौकी देख करके गोस्वामीजी के साथ मैं समाज-मन्दिर में गया। आज कुछ अधिक रात को साधन में सम्मिलित होकर रात को कोई दस बजे डेरे पर पहुँचा।

अद्भुत फ़क़ीर

तीसरे पहर प्रचारक-निवास में जाकर देखा कि भीतर बड़ी भीड़ है; गोस्वामीजी के सामने एक फ़क़ीर बैठे हुए हैं। फ़क़ीर साहब सिर्फ़ लँगोटी लगाये हुए हैं और एक पुराना सा कम्बल ओढ़े हुए हैं। उनके पास और कुछ कपड़ा-लत्ता नहीं। गोस्वामीजी से, संकेत में, न जाने क्या बातचीत कर रहे हैं। उनकी फ़क़ीरी भाषा और भाव को मैं तनिक भी न समझ सका। समाज-मन्दिर की अँगनाई में और इधर-उधर कई लोग बातचीत करने लगे कि "यह पहुँचा हुआ फ़क़ीर है।" सोचा, 'यह बुरा नहीं है! बिना अर्थ के कुछ शब्दों की उलटी-सीधी योजना करने से ही वह भाव की बात हो गई और मुसलमान होकर गुरुतत्त्व की चर्चा छेड़ने से ही वे एक महात्मा हो गये।' जो हो, कुतूहल के वश होकर मैं पता लगाने लगा कि फ़क़ीर साहब में कुछ करामात भी है या नहीं। कमरे में मामूली धुँधला सा उजेला था। फ़क़ीर साहब ने कई बार मेरी ओर मुँह घुमाया। उनकी आँखों की ओर देखते ही मैं आश्चर्य के मारे दङ्ग हो गया। मैंने देखा कि मानों दो चमकीले तारे चमक रहे हैं। मैंने इससे पहले कभी अँधेरे में आँखों की ज्योति को बाहर प्रकट होते नहीं देखा। भव्भड़ देखकर फ़क़ीर साहब गोस्वामीजी

को नमस्कार करके चल दिये। मैं उनका पीछा करने लगा। फ़क़ीर साहब पैदल रास्ता नहीं चलते; वे बड़ी फुर्ती से लम्बे-लम्बे डग रखकर टेढ़े-मेढ़े कूदते हुए सड़क पर दौड़ने लगे। पटुवाटोली में थोड़ी दूर तक मैंने बड़ी मुशकिल से उनका पीछा किया, फिर लौट आया। मैं नहीं जान सका कि वे किस ओर होकर एकाएक चले गये।

ब्राह्मसमाज में शास्त्रीय व्याख्या और हरिसङ्कीर्तन।

ब्राह्मसमाजियों का आन्दोलन

गोस्वामीजी आजकल जिस ढँग से वेदी का काम कर रहे हैं उससे सभी सन्तुष्ट हैं; किन्तु साधारण ब्राह्मसमाजवाले लोग गोस्वामीजी के इस ढँग के, सम्प्रदाय-विहीन, उपदेशों और व्याख्यानों से चिढ़ते हैं। वे चाहते हैं कि गोस्वामीजी उन्हीं लोगों के ढँग और इच्छानुरूप उपदेश तथा वक्तृता आदि दें। वेदी पर बैठकर उपदेश देते समय अक्सर गोस्वामीजी शास्त्र आदि की चर्चा करते हैं। पुराण की एक-एक कहानी लेकर उसकी आध्यात्मिक व्याख्या का आरम्भ पहले-पहल गोस्वामीजी ने ही किया। सुना है कि इससे पहले इस ढँग की व्याख्या और कभी नहीं की गई। इस प्रकार की रूपक-व्याख्या सुनकर बहुतेरे ब्राह्मभावापन्न व्यक्ति महाभारत, रामायण और पुराण आदि की ओर धीरे-धीरे आकृष्ट हो रहे हैं। किन्तु मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि ब्राह्मसमाज में शास्त्र-पुराण आदि को प्रचलित करने के लिए गोस्वामीजी की यह पक्की चाल है।

गोस्वामीजी के यहाँ प्रतिदिन शाम को संकीर्तन होता है। शनिवार और रविवार को प्रचारक-निवास के सामनेवाली अँगनाई में देर तक कीर्तन होता रहता है; कभी समाज-मन्दिर के सामने की अँगनाई में भी होता है। इस कीर्तन में बहुत भीड़-भाड़ होती है। संकीर्तन में गोस्वामीजी की और उनके चेलों की भाव की उमंग देखकर सभी विस्मित हो जाते हैं। संकीर्त्तन का शब्द और मृदङ्ग की ध्वनि सुनते ही गोस्वामीजी को न जाने क्या हो जाता है। खूब ऊँचे-ऊँचे उछलकर "हरि बोलो" "हरि बोलो" कहते-कहते वे अचेत हो जाते हैं, कभी तो बिलकुल अचेत होकर गिर पड़ते हैं। गोस्वामीजी की इस ढँग की मत्तता से बहुतों का 'भाव' जाग जाता है। साधारणतया गोस्वामीजी के कुछ शिष्यों में ही यह उन्मत्तता का सा भाव अधिक देखा जाता है। हम लोग भी भाव

करने की चेष्टा करते हैं, किन्तु असली भाव तक हमारी पहुँच ही नहीं होती ; निरी 'मेहनत' हाथ लगती है ; इसलिए मन में बड़ा खेद होता है।

आज प्रचारक-निवास की अँगनाई में सङ्कीर्तन की बड़ी हलचल मची हुई है। ब्राह्मसमाज-मन्दिर का प्राङ्गण आनन्द-कोलाहल से परिपूर्ण है। आज बहुतेरे लोग भाव के आवेश में मग्न हैं। असंख्य लोग चारों ओर खड़े होकर संकीर्तन सुन रहे हैं। श्रीधर बाबू मस्त होकर नृत्य करने लगे। उनका नृत्य देखने से ऐसा जान पड़ा मानों पुतला नाच रहा है। बाहरी चेत न रहने पर भी ऐसा क़ायदे से नृत्य करना विशिष्ट शक्ति के प्रभाव बिना नहीं हो सकता। श्रीधर मत्त होकर नृत्य करते-करते जोर-जोर से "अल्लाहो अकबर" "अल्लाहो अकबर" कहते हुए दौड़ने लगे। हमारे एक श्रद्धास्पद ब्राह्मसमाजी ने श्रीधर की यह दशा देखकर 'भाई रे' 'भाई रे' कहकर श्रीधर को पकड़ लिया और वे स्वयं उनके साथ नृत्य करने लगे। श्रीधर की पलकों का गिरना बन्द था। वे अकस्मात् उछलकर आकाश की ओर उँगली दिखाते हुए चिल्लाकर कहने लगे—"वह देख काली हैं, वह देख काली हैं।" श्रीधर से लिपटकर निष्ठावान् ब्राह्म महाशय बड़ा आनन्द कर रहे थे ; किन्तु वह काली शब्द सुनते ही श्रीधर को धक्का देकर आलिङ्गन से हटाकर बोले—"दुर साले! परब्रह्म कह, परब्रह्म कह।" वे "बोल परब्रह्म बोल परब्रह्म" कहकर चिल्लाने लगे। "जय काली! जय काली!" कहते-कहते श्रीधर मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

सङ्कीर्तन हो चुकने पर कुछ ब्राह्मसमाजी लोग इस विषय पर थोड़ी देर तक बातचीत करते रहे। उन्होंने कहा—"गोस्वामीजी ब्राह्मसमाज में हरिनाम को चला रहे हैं, उनके शिष्य अब काली, दुर्गा प्रभृति नामों के भी चलाने की धुन में हैं। यह बड़ा बेढङ्गा काम है। इसका प्रतिवाद होना चाहिए। वे पक्के निष्ठावान् ब्राह्मसमाजी हैं। भाव के समय काली का नाम सुनने से उनके विवेक को कड़ा धक्का लगा है ; इसी से उनके मुँह से "साले" निकल पड़ा। इसके लिए उन्हें कभी दोष नहीं दिया जा सकता।"

गोस्वामीजी का प्रतिदिन का आचरण और साधन की "बैठक"

प्रतिदिन सबेरे कोई सात बजे गोस्वामीजी चाय पीते हैं। इसके बाद आसन पर बैठकर टकटकी बाँधकर बड़ी देर तक अँगनाई में लगे हरसिंगार की ओर देखते हैं। कुछ दिन चढ़ने पर पाठ करने लगते हैं। कोई ग्यारह बजे तक धर्मग्रन्थों का पाठ होता रहता है।

दोपहर को भोजन करके गेंडारिया के जङ्गल में 'आनन्द मास्टर' के बाग़ में जाते हैं। वहाँ पर पूर्व ओर एक पुराने आम के तले वे तीन घण्टे तक साधन किया करते हैं।

तीसरे पहर समाज-मन्दिर में लौट आते हैं। चार बजे के बाद प्रतिदिन प्रचारक-निवास में बहुत लोग आते हैं। केदार बाबू (रामकृष्ण परमहंस देव के अनुगत भक्त) और आशानन्द बाउल प्रतिदिन आते हैं। गोस्वामीजी के शिष्य और अन्य लोग इसी समय आते हैं। तीसरे पहर विविध धर्म-चर्चा होने के बाद नित्य सङ्गीत होता है।

शाम को कोई एक घण्टे तक सङ्कीर्तन होता है। इसके बाद कमरा बन्द कर दिया जाता है। उस समय केवल साधन करनेवाले ही भीतर रहने पाते हैं। रात को लगभग ९॥, १० बजे तक साधन होता है। सभी लोग मिलकर एक साथ, मात्रा और क्रम को समान रखते हुए, एक ही ढँग से एक घण्टे तक प्राणायाम करते हैं। इसके बाद एक या दो गीत गाये जाते हैं। गीतों के बाद फिर घण्टे भर तक पहले की तरह प्राणायाम किया जाता है। बगल के कमरे में बैठी हुई स्त्रियाँ भी एकसाथ प्राणायाम करती हैं। 'बैठक' में साधन के समय अलग-अलग आसन का कोई नियम या प्रबन्ध नहीं है। साधन करते-करते इस समय बहुतों के भीतर पारलौकिक आत्माएँ आ जाती हैं। भाव का आवेश होने से कोई अचेत हो जाता है; कोई-कोई ज़ोर से चिल्लाने लगता है और कोई-कोई साधक भयङ्कर अट्टहास करने लगता है। इस समय अनेक प्रकार के भावों की उमङ्ग आने से बहुतेरों के भीतर अनेक प्रकार की दशा हुआ करती है। गोस्वामीजी धीरे-धीरे इन उद्दाम उच्छ्वासों के वेग को रोकते हैं। इस साधन-बैठक में वे कभी-कभी भावावेश में बहुत सी बातें कहते हैं; देव-देवियों, ऋषि-मुनियों और महात्माओं का प्रकाश देखकर स्तुति करने लगते हैं। जो लोग बैठक में बैठते हैं उनमें से बहुतेरों को किसी न किसी के दर्शन होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि सभी को एक ही दृश्य देख पड़े। एक-एक व्यक्ति को भिन्न-भिन्न देवी-देवता, भिन्न-भिन्न ज्योति, भिन्न-भिन्न आकृति अथवा रूप एक-एक तरह का देख पड़ता है। किन्तु मैं तो सिर्फ़ साँस चढ़ाता-उतारता रहता हूँ; मुझे किसी के दर्शन नहीं होते। रामकृष्ण परमहंस देव और बारोदी के ब्रह्मचारीजी साधन के समय अक्सर आ जाते हैं। गोस्वामीजी और भी जिन-जिन महात्माओं का नाम लेते हैं उनमें से मैं किसी को नहीं जानता। सूक्ष्म शरीर धारण करके आये हुए महापुरुषों के दर्शन सभी को

नहीं होते; हाँ, कोई-कोई यह जरूर समझ लेता है कि कुछ अलौकिक घटना हुई है। गोस्वामीजी की दशा आदि के सम्बन्ध में लोगों से मैं जो बातें सुनता हूँ उनपर मैं सोलहों आने विश्वास नहीं कर सकता। और जिन बातों के देखने-सुनने से चमत्कार जान पड़ता है उन्हें भी लोगों के आगे प्रकट करने का साहस नहीं होता। अतएव सर्व साधारण को जो प्रतिदिन देख पड़ता है उसी को याद रखने के लिए आभास लिखता जाता हूँ।

आजकल गोस्वामीजी के समाधिमग्न होने का कोई निर्दिष्ट समय अथवा नियम नहीं है। किसी-किसी दिन भोजन करने बैठकर हाथ का ग्रास मुँह में रखते ही वे समाधिस्थ हो जाते हैं—मुँह का भात मुँह में ही रह जाता है। डेढ़-दो घण्टा एक ही दशा में बीत जाता है। परिचित या अपरिचित आदमी से साधारण बात-चीत करते-करते भी वे अकस्मात् बेसुध हो जाते हैं; बहुत देर तक कुछ आहट ही नहीं मिलती। वही जानें कि भीतर क्या हुआ करता है। पाठ करते-करते गला रुक जाता है, फफक-फफक कर रोते-रोते बाहरी चेत नहीं रहता; यह दशा देर तक बनी रहती है। सङ्कीर्तन के समय भगवान् का नाम सुनते ही उछल पड़ते हैं; नृत्य करते-करते मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। शरीर जड़ की तरह अ-वश हो जाता है। ऐसी दशा में कोई देर तक सामने बैठे-बैठे जब भगवान् के नाम लेता रहता है, तब उन्हें बाहरी चेत होता है।

प्रचारक-निवास में तरह-तरह के आदमी आते हैं। वे लोग गोस्वामीजी को सुनाकर अनेक प्रकार की बातचीत और चर्चा आदि करते हैं। गोस्वामीजी सभी की बातों में 'हाँ, हाँ' करते जाते हैं और अपने ही भाव में मस्त बने रहकर झूम-झूमकर गिर पड़ते हैं; मानों मन सदा दूसरी ओर लगा हुआ है। जिन गीतों में भगवान् के नाम की गन्ध तक नहीं है, बल्कि जिनसे स्त्री-पुरुष के प्रणय-सम्बन्धी भाव को उत्तेजना मिलती है ऐसे गीत सुनने से भी गोस्वामीजी भावमग्न हो जाते हैं। प्रेम-सङ्गीत, टप्पा वगैरह को भी वे बड़ी उमङ्ग से सुनते हैं, और उन्हें सुनते हुए भी 'वाह, वाह, ओहो' कहते-कहते रोने लगते हैं। राधा-कृष्ण अथवा गौर-निताई-सम्बन्धी गाना होते ही गोस्वामीजी का वंशगत भाव जान पड़ता है। ब्राह्मसङ्गीत की अपेक्ष उल्लिखित गीत सुनने की ओर गोस्वामीजी की रुचि और भाव की स्फूर्ति भी अधिक देख पड़ती है। कृष्णकान्त पाठक के गीतों को गोस्वामीजी बहुत पसन्द करते हैं। सोलहों आने ब्राह्मसमाजी श्रीयुक्त नवकान्त चट्टोपाध्याय प्रतिदिन तीसरे

पहर एक बार गोस्वामीजी के पास आते हैं। वे खूब गा सकते हैं। गोस्वामीजी की रुचि परख करके वे अक्सर कृष्णकान्त पाठक के गीत गाया करते हैं। अपनी सङ्कलित सङ्गीतमुक्तावली और प्रेम-सङ्गीत से भी वे बीच-बीच में निम्नलिखित गीत गाया करते हैं, यथा—"जले ढेउ दिओ ना गो सखि; आमि कालो रूप निरखी"; "तारे दिये प्राण कुलमान चरण पेलाम ना स्वजनि, आमि हलेम गौरकलङ्किनी!"* इत्यादि। इन गीतों को सुनकर गोस्वामीजी भाव में मग्न हो जाते हैं। गोस्वामीजी का भाव में मग्न होना देखकर और लोग भी विमुग्ध हो जाते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि ब्राह्मसमाजी लोग भी यह परखने का अवसर नहीं पाते कि ये गीत आखिर हैं किस ढङ्ग के, इनका विषय क्या है। जो हो, इसके बाद शाम को छात्रसमाज के हमजोलीवाले हम लोग सभी मिलकर अच्छे गलेवाले गायक श्रीयुक्त रेवतीमोहन के साथ जोर-जोर से कीर्त्तन करते हैं—"गाओ रे आनन्दे सबे जय ब्रह्म जय।" गोस्वामीजी को बैरागियों का गीत "जीवेर थाकते चेतन हरि बोलो मन, दिन गेलो दिन गेलो"† बहुत पसन्द है, अतएव इसे हम लोग प्रायः प्रतिदिन गाया करते हैं। सङ्कीर्तन के समय गोस्वामीजी की जैसी कुछ दशा हो जाती है उसे प्रकट करने का मेरे पास कोई साधन नहीं है। भिन्न-भिन्न समयों पर देखने से मुझे जान पड़ता है कि गोस्वामीजी लगातार दिन-रात मानों एक भाव में डूबे हुए रहते हैं। गोस्वामीजी को यद्यपि मैं बहुत चाहता हूँ तथापि मैं समझता हूँ कि भक्तिभाव की अधिकता के कारण वे विशुद्ध ब्राह्ममत को छोड़कर बहुत कुछ प्राचीन भ्रान्तमत में जा पहुँचे हैं।

गोस्वामीजी के शिष्यों की बात

जिन लोगों ने गोस्वामीजी से योग-साधन प्राप्त कर लिया है उनके भीतर की दशा को समझने का मेरे पास कुछ उपाय नहीं है। हाँ, हिलने-मिलने और बात-चीत से मुझे जो कुछ मालूम होता है उससे मैं बहुत ही विस्मित हूँ। कोई दो वर्ष से गोस्वामीजी पात्रों को छाँटकर यह साधन देने लगे हैं; इतने थोड़े समय के भीतर ही साधन प्राप्त करनेवाले

---

* पानी में तरङ्ग मत उठाना सखि, मैं कृष्ण के रूप को देख लूँ। यद्यपि मैंने उन्हें अपने प्राण और कुल का मान सौंप दिया है तो भी मुझे उनके चरण प्राप्त नहीं हुए, मुझे नाहक़ गौर का कलङ्क लगा।

† हे मन, जब तक ज़िन्दगी है तब तक हरि हरि कहो, समय बीता जा रहा है।

व्यक्तियों में किसी-किसी के भीतर अद्भुत भाव, अलौकिक शक्ति और अद्भुत योगैश्वर्य प्रकट हो गया है। इन लोगों में सङ्कीर्तन के भाव की उमङ्ग एक नये ढङ्ग की देखता हूँ जो कि पहले कहीं और किसी में नहीं देखी। साधारण मनुष्य तो इन दशाओं को देखकर विस्मित हो जाते हैं, कोई-कोई तो इसे भूत-प्रेतों की माया समझकर घबरा जाते हैं। सङ्कीर्तन में इनका आनन्द, उमङ्ग, मस्ती अथवा भावावेश बिलकुल नये ढङ्ग का होता है; इसके सिवा इनकी स्वाभाविक दशा भी दूसरे ढङ्ग की है। ये लोग सदा साधन में तत्पर, सत्यनिष्ठ, प्रफुल्ल चित्त और विनयी रहते हैं। सुनता हूँ कि गोस्वामीजी के शिष्य आपस में जितना अधिक स्नेह रखते हैं उतना पिता-माता या बाल-बच्चों पर नहीं रखते। दिन में एक बार सभी की परस्पर भेंट होनी ही चाहिए। गोस्वामीजी के शिष्य मान-मर्यादा की परवा न करके, हमजोली की तरह, बालक और बूढ़े परस्पर इतने हिलते-मिलते हैं, इतना स्नेह करते हैं कि यह बात और कहीं देखने को नहीं मिलती। यह तो विधाता ही जाने कि आगे चलकर यह सद्भाव इन लोगों में कब तक स्थायी रूप से बना रहेगा; किन्तु इस समय इनकी यह दुर्लभ दशा देखकर जान पड़ता है कि इसमें कभी अन्तर नहीं पड़ेगा। धीरे-धीरे अब मेरी भी यह हालत हो गई है कि अनेक प्रकार की उथल-पुथल और बेचैनी में भी यदि कोई साधन-प्राप्त व्यक्ति मिल जाता है तो जी ठण्डा हो जाता है, भीतर का सारा दुःख हट जाता है। इन लोगों को देखते ही चित्त में सरस सन्तोष का फुहारा छूटने लगता है। नहीं मालूम ऐसा क्यों होता है।

इतने थोड़े समय के भीतर ही किसी-किसी साधन-निष्ठ व्यक्ति के भीतर अलौकिक शक्ति और अद्भुत योगैश्वर्य उत्पन्न हो गया है। और किसी-किसी को यह समझने या विश्वास करने तक का अधिकार नहीं हुआ! किसी-किसी को तो अन्नमय प्राणमय कोष को लाँघकर मनोमय कोष में पहुँचने और सूक्ष्म शरीर द्वारा जहाँ तहाँ विचरण करने की भी शक्ति हो गई है। न केवल पृथिवी पर ही बल्कि अन्य लोकों में भी ये लोग समय-समय पर आया-जाया करते हैं। दूर के किसी अज्ञात और गोपनीय मामले को जानने के लिए कोई व्यक्ति ज्योंही ध्यान लगाता है त्योंही, चित्रपट की तरह, वह घटना उसके आगे प्रकट हो जाती है। किसी आवश्यक, दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने के लिए कोई भगवान् से प्रार्थना करके आसन पर ध्यान लगाकर बैठा कि वहीं पर वह वस्तु उसके पास आ जाती है। किसी

मनुष्य अथवा जीव-जन्तु की सहायता से ऐसा नहीं होता, बल्कि सोलहों आने ध्यान के प्रभाव से, अप्राकृत ढँग से, यह होता है ।

इसी बीच गोस्वामीजी के एक शिष्य और बहुत ही समीपी रिश्तेदार को इष्ट मन्त्र की शक्ति की जाँच करने के लिए बड़ा कौतूहल हुआ । इसके लिए वे सूर्यमण्डल के अधिष्ठाता देवता का आकर्षण करने लगे । इससे कुछ प्राकृतिक दुर्घटना की सूचना देख पड़ी । यह मालूम होते ही गोस्वामीजी ने उस व्यक्ति को वैसा करने से रोक दिया, और उसे बहुत धमकाकर कहा—**भगवान् की इच्छा के बिना भगवच्छक्ति का प्रयोग किया जाय तो उससे सारा ब्रह्माण्ड ध्वस्त हो सकता है । इस सम्बन्ध में बहुत ही संयत और सावधान रहना चाहिए ।**

किसी की चञ्चलता और असावधानी के कारण अलौकिक शक्ति का प्रयोग हो जाने से कुछ-कुछ आकस्मिक दुर्निमित्त होने का आरम्भ हो गया था । किसी प्रकार का प्राकृतिक उलट-फेर अथवा साधारण नियम से बाहर की कोई असम्भव घटना किसी व्यक्ति की इच्छा-शक्ति अथवा साधन के प्रभाव से हो जाती है, इसे आजकल के लोग चण्डूखाने की गप समझकर दिल्लगी की बात समझेंगे । इसी कारण मैंने उन घटनाओं का विस्तृत वर्णन अपनी डायरी से यहाँ उद्धृत नहीं किया है । सुनता हूँ कि शिष्यों के इस ढँग के हठ और सांघातिक मौज का परिचय पाकर गोस्वामीजी ने उनकी ऐश्वर्य-प्राप्ति और शक्ति-प्रकाश का मार्ग बन्द कर दिया है; सच-झूठ भगवान् जानें ।

खोई हुई मन्त्र की शक्ति के उद्धार का उपाय बतलाना

ढाका नार्मल स्कूल के हेड पण्डितजी तीसरे पहर, जगन्नाथ स्कूल के, एक सोलह-सत्रह साल के छात्र को साथ लाकर गोस्वामीजी के यहाँ आये । लड़के का दिमाग़ बे तरह गरम हो गया है—वह आधा सीड़ी हो गया है । पण्डितजी उसे इसलिए साथ लाये हैं कि गोस्वामीजी की कृपा से वह चङ्गा हो जायगा । छात्र ने अपना ब्योरा यह सुनाया—"कुछ दिन हुए कि एक तान्त्रिक संन्यासी ढाका में आये थे । उन्होंने रमना के जङ्गल के समीप एक पेड़ के नीचे अपना आसन लगाया था । एक दिन घूमते-घूमते वहाँ जाकर उनके दर्शन किये तो मुझे उनपर बड़ी भक्ति हो गई । संन्यासीजी थोड़े ही दिन में वहाँ से चले जानेवाले थे, इसलिए स्कूल जाना बन्द करके कई दिन तक मैंने उनकी खूब सेवा की ।

चलते समय संन्यासीजी ने खूब सन्तुष्ट होकर मुझसे कहा, 'तुमने मेरी बहुत सेवा की है, मैं तुम पर बहुत खुश हूँ, इससे मैं तुम्हें एक विद्या दिये जाता हूँ। तुम बिना मतलब के चाहे जहाँ किसी पर इस शक्ति का प्रयोग न करना।' बस, उन्होंने कान में मुझे एक मन्त्र सुनाकर कहा 'इस मन्त्र को पढ़कर एक चुल्लू पानी किसी पेड़ या लता पर छिड़कने से वह तुरन्त सूख जायगा। फिर इस मन्त्र को पढ़कर पानी छिड़कने से वह तुरन्त हरा हो जायगा।' मैंने तुरन्त ही मन्त्रशक्ति को आज़माने के लिए उसे कर देखा और सच पाया। संन्यासीजी ने इस मन्त्र का प्रयोग चाहे जहाँ न करने के लिए कह दिया था। इसके बाद एक दिन बँगला बाज़ार में, रुद्र बाबू के दवाख़ाने में, ब्राह्मसमाजी मित्रों के साथ मेरा मन्त्र-शक्ति पर विवाद हुआ। उन्हें मन्त्रशक्ति पर विश्वास न था; अतएव वे लोग कुसंस्कारी कहकर मुझे चिढ़ाने लगे। तब मैंने ज़िद में आकर मन्त्रशक्ति दिखाने के लिए एक टब में लगे फूल के पेड़ पर, मन्त्र पढ़कर, पानी छिड़क दिया। बात की बात में पेड़ मुरझा गया। फिर तुरन्त ही मन्त्र पढ़कर जल छिड़का तो वह हरा हो गया। मित्रों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अब वे लोग उस मन्त्र को सुनाने के लिए ज़िद करने लगे। मैंने बहुत नाहीं-नूहीं की, किन्तु उन लोगों ने मेरा पीछा न छोड़ा; उन्होंने समझाया कि उक्त मन्त्रशक्ति जब तुम को सिद्ध हो चुकी है तब उसके नष्ट होने का डर व्यर्थ है। उनकी बातों में आकर मैंने मन्त्र को प्रकट कर दिया। उस दिन से मन्त्र में कुछ असर नहीं रहा। ऐसी अद्भुत शक्ति मुझे मिल गई थी और अब मैं उसे खो बैठा, इसी चिन्ता और क्लेश के मारे मैं सिड़ी हो गया हूँ। आप कृपा करके ऐसा कर दीजिए जिससे मेरे उस मन्त्र में फिर वही शक्ति आ जाय।"

गोस्वामीजी ने उस लड़के की बहुत ही व्याकुलता देखकर पूछा—**"तुम्हें मन्त्र याद है?"**

लड़के ने कहा—पहले तो याद था, इस समय तनिक गड़बड़ हो गया है।

गोस्वामीजी—**एक अक्षर तो याद होगा? ख़ैर, तुम्हें अपने गुरु की सूरत याद पड़ती है?**

लड़के ने कहा—हाँ, याद है। लेकिन साफ़-साफ़ चेहरा याद नहीं पड़ता।

यह सुनकर गोस्वामीजी ने उसे एक ढँग बतलाकर कहा—**अच्छा, तुम जाकर एक रात को एकान्त में बैठकर यही करो। मन्त्र भी याद हो जायगा और मन्त्रशक्ति भी वापस मिल जायगी।**

खबर मिली कि गोस्वामीजी के उपदेश के अनुसार चलने से लड़के की कामना पूरी हो गई है। अब उसका दिमाग़ भी दुरुस्त हो गया है।

शक्ति-हरण

आज एक शक्तिसम्पन्न बाउलिनी की बात सुनकर मैं दङ्ग रह गया। गोस्वामीजी के यहाँ प्रतिदिन असंख्य लोग आते-जाते रहते थे, इस कारण बाउलिनी पर मेरा ध्यान विशेष रूप से नहीं गया। बातों ही बातों में गोस्वामीजी ने उसके सम्बन्ध में कहा—**मैं तनिक अनमना था। एक बाउलिनी ने आकर मुझे नमस्कार किया। उस समय मैंने देखा नहीं। एकाएक बाउलिनी मेरे पैर के अँगूठे को चूसने लगी। तब मुझे होश हुआ। एक भयानक शक्ति ने अकस्मात् मेरे शरीर में पहुँचकर मुझे बेचैन कर दिया। मैंने उसे एक ऊपरी शक्ति समझकर गुरुदेव का स्मरण किया, और उनके चरणों में उस शक्ति को चटपट अर्पित करके मैं बेखटके हो गया। अब बाउलिनी नीचे गिरकर तड़पने लगी; और चिल्लाकर रो-रोकर कहने लगी—'प्रभो, मेरी चीज़ मुझे लौटा दीजिए। अब मैं कभी वैसा न करूँगी।' मैंने कहा—'अब वह नहीं हो सकता; ज्योंही वह मेरे भीतर पहुँची त्योंही मैंने उसे गुरुदेव के हवाले कर दिया। जो चीज़ दे चुका हूँ उसे वापस नहीं माँग सकता।' बाउलिनी समाज में दो दिन तक बहुत रोती-पीटती रही; फिर जब उसे मालूम हो गया कि गई वस्तु वापस नहीं मिलेगी तब अधमरी सी निस्तेज होकर यहाँ से चली गई।**

प्रश्न—ये किस रीति से शक्ति को चुराती हैं? क्या बिना ही अँगूठा चूसे यह काम हो सकता है?

गोस्वामीजी—**अँगूठा चूसने से यह काम आसानी से हो जाता है; इसके सिवा चरण-रज लेते-लेते और देह से लिपटाकर भी शक्ति चुरा ली जाती है। कोई दृष्टि जमा करके भी यह काम कर लेता है। अपनी शक्ति और भाव को दूसरे के भीतर पहुँचाकर फिर अपनी शक्ति को खींचने पर साथ-साथ दूसरे की शक्ति और सद्भाव खिंच आता है।**

प्रश्न—इन उत्पातों से बचाव क्योंकर हो सकता है?

गोस्वामीजी—**अभिमान से बचे रहकर अपने को बहुत ही लघु समझना होता है। ऐसा होने पर दूसरे को लेने के लिए कुछ नहीं मिलता। और अपने इष्टदेव के चरणों में ध्यान लगाये रहने से सारी आपदाएँ टल जाती हैं।**

प्रश्न—मालूम होने ही पर तो इन उपायों से काम लिया जा सकता है। किन्तु यदि कोई शक्ति की चोरी इस तरह करे कि जिसकी चोरी की जा रही है उसे पता ही न लगे तो, उस दशा में, बचाव किस तरह हो सकता है?

गोस्वामीजी—**योगैश्वर्य प्राप्त हो जाने पर योगी लोग गुरु का दिया हुआ त्रिशूल लिये रहते हैं। उससे अपने तेज की रक्षा तो होती ही है, साथ ही दूसरे का कोई असद्भाव साधक के भीतर सञ्चारित नहीं हो सकता।**

प्रश्न—बड़े-बड़े त्रिशूल लेकर तो गृहत्यागी संन्यासी तक नहीं चल सकते। भला साधारण मनुष्य वैसा कब कर सकेंगे?

गोस्वामीजी—**३।४ इञ्च का छोटा सा, इस्पात का, त्रिशूल लिये रहने से ही काम चल जाता है।**

हमारे देश में छोटे-छोटे बच्चों की कमर में, भूत-प्रेतों और चुड़ैलों की नजर बचाये रखने के लिए, लोहा बाँध देते हैं। माता-पिता आदि बड़ों के अशौच के समय पर भी, अशौच का अन्त न होने तक, ऊपरी उपद्रव से बचाव के लिए लोग लोहे को धारण करते हैं—इस सबको तो हम भयङ्कर कुसंस्कार ही समझते हैं। पता नहीं कि योगियों के त्रिशूल-धारण की भाँति इन नियमों का भी कुछ न कुछ उद्देश्य है या नहीं।

वार्षिक उत्सव में महासंकीर्तन-भावावेश की बात

मार्गशीर्ष कृष्णा, सं० १९४४

आज वार्षिक उत्सव है। देखता हूँ कि ढाका ब्राह्मसमाज का उत्सव धीरे-धीरे सभी सम्प्रदायों का उत्सव बन गया है। साधारण मनुष्यों, बड़े आदमियों, हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, साधु-संन्यासियों और फ़क़ीरों ने आकर आज ब्राह्मसमाज-मन्दिर के अहाते को परिपूर्ण कर दिया है। पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस आदमियों ने, एक-एक स्थान में कीर्तन आरम्भ कर दिया। सौकड़ों मनुष्य अनेक स्थानों में खड़े होकर या बैठकर कीर्तन सुनने लगे। समाज-मन्दिर की लम्बी-चौड़ी अँगनाई के सामने गोस्वामीजी ध्यान

लगाये बैठे हुए थे। जगन्नाथ कालेज के प्रिंसिपल श्रीयुक्त कुंजलाल नाग, अध्यापक प्रसन्न बाबू और डाक्टर प्रसन्न मजूमदार के साथ, मृदङ्ग बजाकर गाने लगे। इन लोगों के इस कीर्तन के आरम्भ से ही भाव की उमंग की बढ़िया आ गई। स्कूल-कालेज के छात्र, कुंज बाबू के साथ बड़ी उमङ्ग से गोस्वामीजी को घेरकर, घूम-घूमकर ज़ोर-ज़ोर से कीर्तन करने लगे। थोड़ी देर में गोस्वामीजी को बाहरी ज्ञान हुआ। वे साष्टाङ्ग प्रणाम करके खड़े हो गये। मुँद रही आँखों से चारों ओर देखकर वे पल-पल भर में कम्पित होने लगे। फिर भाव के आवेश में बेसुध होकर उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम में दौड़ने लगे। इसी समय न जाने कहाँ से एक अपरिचित परम तेजस्वी संन्यासी कीर्तन के स्थान में फुर्ती से आ गये। वे संगीत की एक-एक टोली में मिलकर, दोनों हाथ ऊँचे उठाये हुए, संकीर्तन में दो-एक बार नृत्य करके अहाते भर में दौड़ने लगे। बात की बात में एक अपूर्व महाशक्ति ने सञ्चारित होकर क्या बालक क्या बूढ़े सभी दर्शकों को कँपा दिया। 'हरि बोलो, हरि बोलो' कहते-कहते गोस्वामीजी मूर्च्छित होकर गिर पड़े। संकीर्तन करनेवाली भिन्न-भिन्न टोलियाँ न जाने कब एकत्र सम्मिलित हो गईं। बहुत से मृदङ्गों और मँजीरों की ध्वनि, संकीर्तन के शब्द के साथ मिलकर, झमाझम की आवाज़ से समाज के प्राङ्गण को कँपाने लगी। बहुत से दर्शक पेड़ों के नीचे, रास्ते में, सीढ़ी के समीप और घास के ऊपर गिरकर हाथ-पैर पटकते हुए अनेक दशाओं में अचेत हो गये। न मालूम यह दशा कब तक रही। दिन डूबने के थोड़ी देर बाद ब्राह्मसमाज के मुखिया आकर ज़ोर-ज़ोर से कहने लगे—'अब आप लोग उठिए, उपासना करने का समय हो गया है।' इसी समय गोस्वामीजी ने आँखें खोलीं; चारों ओर की दशा देखकर वे थोड़ी देर तक चुपचाप रहे। फिर प्रत्येक अचेत व्यक्ति के समीप जा-जाकर, किसी को छूकर, किसी के कान के पास 'हरि बोलो हरि बोलो' कहकर, सचेत करने लगे। समाज-मन्दिर के बरामदे में, सीढ़ियों के समीप, १३।१४ वर्ष के एक लड़के को अचेत पड़ा देखकर गोस्वामीजी उसकी देह पर हाथ फेरकर बार-बार भगवान् का नाम लेने लगे। किन्तु उसे किसी तरह चेत न हुआ। अन्त में गोस्वामीजी उसे गोद में लेकर ज़ोर-ज़ोर से हरिनाम का उच्चारण करने लगे। बड़ी देर के बाद लड़के ने अव्यक्त क्लेशसूचक करुण स्वर में यन्त्रणा प्रकट करना आरम्भ किया। कोई बीस मिनट में उसे, धीरे-धीरे, बाहरी चेत हुआ। गोस्वामीजी ने कहा—"लड़का सहस्रार में जा बैठा

था।" मैं नहीं जानता, इसका क्या मतलब है। यह लड़का कुंज बाबू का नातेदार है, मेरा घनिष्ठ मित्र है—नाम वसुधा है।

सबको सावधान करके गोस्वामीजी वेदी पर जा बैठे। वे आज वेदी पर बैठकर, प्रणाली के अनुसार, उपासना नहीं कर सके। नारद, वाल्मीकि, श्री चैतन्य, राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस प्रभृति का प्रकाश देखकर वे उन्हीं की स्तुति करने लगे। जो लोग वहाँ पर मौजूद थे उन सबकी आँखों से आँसू झरने लगे। यद्यपि गोस्वामीजी ने कहा-सुना थोड़ा ही तथापि उनके भाव में सभी मस्त हो गये। अन्त में भाव के आवेश में नीचे लिखी बातें कहने पर गोस्वामीजी का गला भर आया। उन्होंने कहा—**वह देखो, माँ आ रही हैं। आज वे थाली भर के प्रसाद लिये आ रही हैं। देखो, माँ मुझको यह बात कहने से रोक रही हैं। क्यों माँ, क्यों न बतलाऊँ? रोज़ छिपा-छिपाकर मुझे प्रसाद खिलाती हो; आज अपने सभी बेटों को तुम्हें प्रसाद देना होगा। एक मुझी को दोगी तो मैं न खाऊँगा। तुम सभी की तो माँ हो। भला इन लोगों को क्यों नहीं देतीं? ये तो भूखे बने रहते हैं। माता, तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? माँ, आज तुम्हारी चालाकी का हाल मैं सबको बता दूँगा। विक्रमपुर की वही 'पातक्षीर' (मिठाई) की बात कह दूँगा, राम बाबू की बात कह दूँगा। यह भी कह दूँगा कि तुमने जंज़ीर खोल दी थी। तुम्हारे घर की सारी बातें प्रकट कर दूँगा। मैं आज बतला दूँगा कि कैसा-कैसा व्यवहार करने से तुम्हारा प्रसाद मिल सकता है। देखिए, आप लोगों से कहता हूँ—आप लोग इन तीन नियमों का पालन करने लगें तो आपको माता का प्रसाद मिलने लगे। जब जो कुछ लें, खावें-पीवें, पहले वह माता को निवेदन कर लें। बिना निवेदन की हुई वस्तु कभी न लें। दूसरे की निन्दा, बदनामी कभी न करें। देखिए, माँ मेरे मुँह को दबा रही हैं। अब कुछ कहने नहीं देतीं। माँ ने हाथ से मेरा मुँह दबा दिया है। जय माँ! जय माँ! जय माँ!**

अस्फुट स्वर में ये बातें कहते-कहते गोस्वामीजी का गला रुँध गया; बहुत चेष्टा करके भी वे और कुछ न कह सके। चारों ओर क्या हिन्दू और क्या ब्राह्मसमाजी सभी

के रोने और भाव की धूम मच गई। थोड़ी देर में चन्द्रनाथ बाबू गाने लगे। आज गोस्वामीजी वेदी का काम फिर न कर सके। धीरे-धीरे सन्नाटा खिंचने पर सभी लोग अपने-अपने घर चले गये। मैं भी चला आया। पता नहीं कि गोस्वामीजी कितनी देर तक वेदी पर बैठे रहे।

कुछ अद्भुत घटनाओं का सूत्र

गोस्वामीजी के ढाका आने के बाद इन दो-तीन वर्षों में कुछ अद्भुत घटनाएँ हुई हैं। उनकी चर्चा भी हिन्दुओं में और ब्राह्मसमाज में जहाँ-तहाँ अक्सर होती है। ये बातें सचमुच सत्य हों तब तो दरअसल बड़ी अद्भुत हैं। गोस्वामीजी के मुँह से सुने बिना उन बातों को मैं 'डायरी' में लिखना नहीं चाहता। बातचीत के सिलसिले में अथवा प्रश्न करके मैं जब उन घटनाओं का खुलासा हाल गोस्वामीजी से मालूम कर लूँगा तब सब ब्योरेवार ठीक-ठीक लिख लूँगा। यहाँ तो अभी सिर्फ याद रखने के लिए, सूत्र रूप में, उनका उल्लेख कर रखता हूँ।

(१) गोस्वामीजी की दोनों लड़कियों ने जब बड़े कौतूहल से पद्मा देवी के दर्शनों की इच्छा साग्रह प्रकट की तब गोस्वामीजी के आज्ञानुसार चावल, केले, नैवेद्य इत्यादि लेकर कन्याओं ने पद्मा के गर्भ में पद्मा की पूजा की और उसी समय अकस्मात् पद्मा देवी का आविर्भाव हुआ।

(२) विक्रमपुर के चाँचरतला में, काली के स्थान में, अद्भुत रीति से हरिसंकीर्तन हुआ और उसी समय आकाश से बहुत पुष्पों की वृष्टि हुई।

(३) कामाख्या तीर्थ में श्री भुवनेश्वरी के अद्भुत दर्शन हुए और कामाख्या देवी का रजोनिःसरण (मासिक धर्म) देखा। इसके साथ वहाँ पर अचलानन्द स्वामी के विश्वास के प्रभाव से चावल बोकर धान के पौदे उपजाये।

(४) गेंडारिया में, आनन्द बाबू के सूनसान बाग में, कठोर साधन किया; दुर्जय परीक्षा दी और भयंकर विभीषिका आदि को देखा।

(५) धर्मार्जन से निराश होकर बूढ़ी गंगा में डूब मरने को तैयार एक व्यक्ति को, अकस्मात् घनी आधी रात में, नदी पर पहुँचकर दीक्षा दी और उसे मरने से बचा लिया।

(६) प्रचार करने के लिए जाकर विक्रमपुर के पण्डित-समाज में बहुत ही अद्भुत प्रभाव दिखलाया और हरिसंकीर्तन में महाभाव की उमङ्ग द्वारा जनता को विमुग्ध कर दिया।

(७) ब्राह्मसमाज में विकट विरुद्ध आन्दोलन के समय प्रश्न के बहाने मन्मथ बाबू द्वारा "योग-साधन" का प्रणयन और प्रचार किया।

मेरी असाध्य बीमारी

मार्गशीर्ष, सं० १९४४

कफाश्रित वायु और पित्तशूल के दर्द के मारे मरणापन्न होकर मैंने स्कूल से नाम कटा लिया। आयुर्वैदिक चिकित्सा कराने के लिए मैं घर आ गया हूँ। ये दोनों बीमारियाँ मुझे पिता-माता से मिली हैं, यह अनुमान मेरे सगे और इष्ट मित्र करते हैं। किन्तु मैं समझता हूँ कि शरीर पर बहुत ज्यादती करने से ये रोग मेरी ही बदौलत उत्पन्न हुए हैं। बचपन से ही 'धर्म-धर्म' करके मुझे एक बेढब अस्थिरता रही है। पिछले तीन-चार वर्ष से तो इसमें और भी वृद्धि हो गई है। सदा यही सोचता रहता हूँ कि कहाँ जाने से भगवान् मिलेंगे; कैसा व्यवहार करने से, किस प्रकार का साधन करने से उनकी प्राप्ति होगी। जितेन्द्रिय होकर, किसी दुर्गम निर्जन पहाड़ पर रहकर, व्याकुलता से भगवान् को पुकारूँगा तो वे अवश्य दया करके मुझे दर्शन देंगे—इस पक्के संस्कार के वशवर्ती होकर अपने मन का जीवन गढ़ने जाकर ही मैं ऐसा पीड़ित हो गया हूँ।

हमारे कुल के गुरु एक विख्यात अध्यापक और प्रसिद्ध तान्त्रिक हैं। उनकी धीर गम्भीर प्रकृति और मधुर व्यवहार से मैं उनपर बहुत ही अनुरक्त हूँ। एक दिन मैंने यह सोचकर उनके चरण पकड़ लिये कि उनकी व्यवस्था के अनुसार चलने से मैं अपने आशानुरूप अवस्था सहज ही प्राप्त कर लूँगा। बहुत ही कातर होकर मैंने अपने मन की दशा उन्हें बतलाकर कहा—'आप दया करके मुझे ऐसा उपाय बता दीजिए जिसके करने से मैं काम-विजयी हो जाऊँ और मुझे भोजन करने की भी आवश्यकता न रहे। मैं पहाड़ पर जाकर साधन करूँगा।' इस पर शरीर की उत्तेजना को नष्ट करने के लिए पञ्चनिम्बबटिका और आहार त्यागने के लिए बिल्व-बटिका को रीति से बनाकर सेवन करने की सलाह उन्होंने मुझे दी। किन्तु यह सब गोस्वामीजी को बिना सूचना दिये ही हुआ था।

जो हो, 'न तो स्त्री के चेहरे की ओर देखूँगा और न जीभ के स्वाद के लिए कोई चीज खाऊँगा', यह प्रतिज्ञा करके मैं पिछले दो वर्ष से प्रतिदिन उक्त दोनों ओषधियों का सेवन कर रहा हूँ। निम्बबटिका के अद्भुत गुण से मेरा दुर्वार काम का भाव बहुत कुछ तेजहीन हो गया है और बिल्वबटी का सेवन करने से भूख बड़ी विचित्रता से घट गई है। धीरे-धीरे चेष्टा करके सिर्फ एक मुट्ठी भर अन्न खाने के लिए निर्दिष्ट कर लिया है। इन चेष्टाओं के साथ-साथ एक प्रकार का कुम्भक भी बहुत दिन तक किया था। अब जान पड़ता है कि मुद्दत

तक वही निम्ब और बिल्व-बटिका का सेवन करते रहने और भोजन की मात्रा बहुत कम कर देने से ही मुझे यह दुःसह और दुरारोग्य पित्तशूल रोग हो गया है तथा साँस को रोक रखने की अस्वाभाविक उत्कट चेष्टा से यह दारुण कफाश्रित वायु उत्पन्न हो गया है । जो हो, अब बीमार होकर घर आने पर मैंने उक्त दोनों दवाएँ छोड़ दी हैं । वायुरोग की सूचना मिलते ही मैंने साँस रोकने की चेष्टा बन्द कर दी है ; आनुषङ्गिक अन्यान्य नियमों का अनुष्ठान आदि भी छूट गया है ; भोजन का परिमाण अवश्य पहले की तरह एक मुट्ठी भात निर्दिष्ट है ।

घर आकर, देश के नामी गिरामी वैद्यों से रोग का निर्णय करवाकर, ओषधि की व्यवस्था ली । ढाका के सुप्रसिद्ध श्रीयुक्त काली कविराज के आज्ञानुसार, उन्हीं के व्यवस्थापत्र के निर्देश से, घर पर दवा बनवाकर विधिपूर्वक उसका सेवन करता हूँ । किन्तु रत्ती भर उपकार नहीं हो रहा है ; बल्कि ऐसा जान पड़ता है कि वायु और दर्द का प्रकोप और भी बढ़ता जाता है । बहुतेरे चिकित्सकों ने एक राय होकर कहा था कि रोगी की जो हालत है उसमें चङ्गे होने की आशा नहीं ; हाँ सोना, लोहा, मोती प्रभृति को 'जारित' करके, अच्छे वैद्य के द्वारा बड़ी सावधानी से घर पर मूल्यवान् ओषधि बनवाकर उसका सेवन विधि से किया जाय तो रोग थोड़े दिनों के लिए कुछ दब जा सकता है । मैंने भी मन ही मन एक प्रकार से समझ लिया है कि इस यातना को भुगवाने के लिए भगवान् मुझे संसार में बहुत दिन नहीं रक्खेंगे । अतएव मौत को पास ही समझकर साधन-भजन की ओर मेरे मन का झुकाव और अधिक हो गया है । रोग की चिकित्सा तो एक अनावश्यक काम सा जान पड़ता है । सूर्योदय से लेकर साढ़े ९ बजे तक एक आदमी रोज़ मेरे बदन में तेल की मालिश करता और सिर में तेल लगाता है । सबेरे दो बार दवा खाता हूँ । यह समय मैं ख़ूब भगवान् का नाम ले करके अच्छी तरह बिताता हूँ । दोपहर को भोजन करके घर के पश्चिम ओर, गाँव के बच्चों के क़ब्रिस्तान में, 'छकी के घर' के भयङ्कर जङ्गल में जा बैठता हूँ ; तीसरे पहर पाँच बजे तक सूनसान में भगवान् का नाम लेकर बड़ा आनन्द पाता हूँ । किसी दिन, किसी कारण, यदि मैं सूनसान में बैठकर यह साधन नहीं कर पाता हूँ तो मन में बड़ा दुःख होता है ।

अयोध्या जाने का विचार और गोस्वामीजी की आज्ञा

घर आये बहुत दिन हो गये । गोस्वामीजी के दर्शन करने के लिए जी बहुत ही व्याकुल हो रहा है । सुना है, ढाका में गोस्वामीजी के सम्बन्ध में बड़ी गड़बड़ मची हुई है ।

उन्होंने ब्राह्म-समाज के प्रचारक-निवास में रहना भी छोड़ दिया है; (लक्ष्मीबाजार, सीकचेवाले घर के आगे) इकरामपुर के कदमतला में किराये का मकान लेकर वे सपरिवार रहते हैं। यह खबर सुनते ही मेरा सिर चकरा गया। ब्राह्मसमाज को छोड़ दिया! साफ़-साफ़ समझ में न आया कि मामला क्या है। गोस्वामीजी के दर्शन करने के लिए मैं बेचैन हो उठा।

इधर वैद्य की ओषधि करने पर भी रोग में कुछ अन्तर न पड़ा। वह तो और भी दिन-पर-दिन बढ़ने लगा। इसके सिवा आँखों की भी शिकायत हो गई। देखने की शक्ति धीरे-धीरे घटने लगी। अब घरवाले और नातेदार मुझे चटपट बड़े दादा के पास अयोध्या भेजने के लिए उतावले हो गये। अयोध्या जाने से पहले मेरी इच्छा बारोदी के ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने की हुई। गोस्वामीजी की सम्मति प्राप्त करने के लिए सारा हाल श्रद्धेय श्यामाकान्त पण्डितजी को लिख भेजा। पाँच-छः दिन के भीतर ही उत्तर आ गया। गोस्वामीजी ने जैसा-जैसा कहा है ठीक वही पण्डितजी ने लिख भेजा है—

(१) अयोध्या जाने से पहले एक बार ढाका में आकर भेंट कर जाना—

(२) आँखों में तकलीफ़ है इसलिए दृष्टि-साधन की आवश्यकता नहीं है।

(३) ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने जा सकते हो; पसोपेश की कोई बात नहीं।

निवेदक—श्यामाकान्त चट्टोपाध्याय। इकरामपुर, ढाका।

पौष शुक्ला ५, सं० १९४४

यह पत्र पाने पर मैंने दृष्टि-साधन करना छोड़ दिया। प्रतिदिन या तीनों समय बड़ी लगन से प्रार्थना करने लगा। नाम भी जपता हूँ, किन्तु नाम की अपेक्षा प्रार्थना करने से ही मुझे अधिक आनन्द मिलता है। लाभ भी प्रार्थना से ही अधिक होता जान पड़ता है। सुना है, साधन-मार्ग पर चलने में सब से पहले 'आदौ श्रद्धा' गुरुभक्ति आवश्यक है। गुरु पर भक्ति हुए बिना न तो गुरु पर विश्वास होता है और न नाम के जप में रुचि होती है। किन्तु मुझमें गुरुभक्ति की बहुत ही कमी है। साधारण मनुष्य की अपेक्षा गोस्वामीजी की मैं अधिक श्रद्धा तो करता हूँ; किन्तु उन्हें सोलहों आने भ्रम-रहित अथवा कुछ असाधारण सा नहीं समझ पाता। जिसे मैं जानता या समझता नहीं हूँ ऐसे किसी अलौकिक अथवा अस्वाभाविक गुण और ऐश्वर्य की गुरु में अयथा कल्पना करना मैं दोष मानता हूँ। गोस्वामीजी को मैं छल-कपट-विहीन भला मनुष्य और धर्मात्मा मानता हूँ; उन्होंने कह

दिया है कि यह साधन करने से लाभ होगा इसी लिए, इच्छा न रहने पर भी, नाम का जप और प्राणायाम करता जाता हूँ। बस।

स्वप्न—अद्वैत भाव—गोस्वामीजी की कृपा

ऐसा जँचता है कि गोस्वामीजी के दिये हुए साधन से मुझे कुछ लाभ नहीं हो रहा है। जब तक उनपर मुझे निष्ठा अथवा भक्ति नहीं होती तब तक उनकी बातों पर मुझे अधिक श्रद्धा क्यों होने लगी? लगातार साथ रहकर उनकी 'असाधारण दशाओं' को अपनी आँखों देखे बिना उनपर मुझे भक्ति होगी ही क्योंकर? यह तो मेरे लिए असम्भव है; अतएव यह साधन लेना मेरे लिए तो विडम्बना है। इसके लिए मुझे अब प्रतिदिन कष्ट मालूम होता है। मैं एक दिन के लिए भी घबराहट से पीछा नहीं छुड़ा सकता।

पौष शुक्ला ९
शुक्रवार, सं० १९४४

आज मन के दुःख से विकल होकर मैंने प्रार्थना की—'हे अन्तर्यामी परमेश्वर, तुमसे मेरे भीतर की बात छिपी नहीं है। प्रभो, मैं रत्ती भर भी नहीं समझता कि जीवन का कल्याण किस तरह क्या करने से होता है, क्या करने से वास्तविक धर्म का लाभ होता है। दया करके तुम्हीं बतला दो। मुझे समझा दो कि कौन सा उपाय करने से नाम जपने की रुचि होगी, तुममें भक्ति होगी। गोस्वामीजी से साधन लिया है। वे यहाँ पर हैं नहीं; इसलिए दया करके तुम्हीं ऐसी व्यवस्था कर दो जिससे मेरा सचमुच भला हो।' प्रार्थना के अन्त में रात को कोई ११ बजे बिछौने से उतरकर, चिन्ता के मारे हताश होकर, गोस्वामीजी के चरणों को लक्ष्य करके मैंने फ़र्श पर साष्टाङ्ग नमस्कार किया और व्याकुल होकर कहा—"गोस्वामीजी, यह जीवन मैंने तुम्हें सौंप दिया है। किन्तु तुम्हारे दिये हुए साधन में मुझे रुचि नहीं हुई, तुम पर भक्ति भी नहीं उपजी। दया करके मेरा उद्धार करो। गुरुदेव, तुम दया न करोगे तो मेरे लिए फ़िक्र और कौन करेगा?" बहुत ही कातर होकर मैं थोड़ी देर तक इस तरह प्रार्थना करके बिस्तर पर लेट रहा।

पौष शुक्ला १०
शनिवार

रात को चौथे पहर स्वप्न देखा। बहुत दिन तक ब्राह्मत से उपासना आदि करते रहने से 'एकमेवाद्वितीयं' वाक्य का भाव और मर्म हृदय में आ गया। तब प्रकृति को ईश्वर से अभिन्न देखने लगा। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, स्थावर, जङ्गम समेत सारे ब्रह्माण्ड को एक परब्रह्म का ही विकाश सोचकर मैं

सर्वत्र सिर झुकाने लगा। इसी समय गोस्वामीजी अकस्मात् सामने आकर अनेक प्रकार के प्रश्न करने लगे। मेरे भीतर अद्वैत भाव का सञ्चार हो रहा देखकर बोले—**'वाह! यह तो बढ़िया साधन करते हो! अगर सब कुछ ईश्वर है तो अपने तई क्यों अलग रखते हो? हम तुम भी तो ईश्वर हैं। अपने आप को ईश्वर समझकर सन्तुष्ट क्यों नहीं रहते?'** मैंने कहा—'इससे मेरा जी नहीं भरता। मैं गुरु में भक्ति और नाम में रुचि चाहता हूँ। आप मेरे ऊपर दया कीजिए।' गोस्वामीजी ने कहा—**'अच्छी बात है! तो प्रतिदिन साधन करने के पहले * * * * इस नाम का हज़ार बार जप कर लिया करो।'** बस, अब वे अन्तर्द्धान हो गये। इधर मेरी भी नींद टूट गई। मैंने तुरन्त पृथ्वी पर पड़कर गोस्वामीजी को नमस्कार करके उस नाम का हज़ार बार जप किया। इस घटना से मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ है। बहुत दूर से भी प्रार्थना करने पर गोस्वामीजी उसे जान जाते हैं, इस प्रकार का एक संस्कार मेरे मन में आ गया। स्वयं गोस्वामीजी ही मुझे स्वप्न के द्वारा यह समझा गये हैं, इस विषय में मुझे रत्ती भर भी सन्देह नहीं रह गया।

प्रार्थना की व्यर्थता समझना

जब से स्वप्न देखा है तब से, बतलाया हुआ काम करने के साथ-साथ, मेरी दशा में दिन-प्रतिदिन परिवर्तन हो रहा है। ब्राह्मधर्म की प्रणाली के अनुरूप उपासना आदि बहुत दिनों से करता आ रहा हूँ। प्रार्थना करने से मुझे बड़ा आनन्द मिलता है। जिस दिन प्रार्थना करने में आँसू नहीं बहते उस दिन यह सोचकर बड़ी बेचैनी रहती है कि मानों आज प्रार्थना की ही नहीं। मेरा प्रतिदिन तीनों वक्त प्रार्थना करने का नियम है। कारण का तो पता नहीं, किन्तु जिस दिन से स्वप्न देखा है उस दिन से प्रार्थना में मेरा पहले का भाव नहीं रह गया। गति एकदम पलट गई। प्रार्थना के भीतर से ही भगवान् मुझे साफ़-साफ़ 'प्रार्थना की असारता' समझाने लगे। देखता हूँ कि जब जिस भाव को लेकर प्रार्थना करता हूँ तब उसी भाव में डूब जाता हूँ और आनन्द-उच्छ्वास में मग्न हो जाता हूँ। सोचता हूँ कि यही तो ईश्वर का अनुभव किया है; किन्तु प्रार्थना के बाद उठते ही कुछ देर में न वह भाव ठहरता है, न वह आनन्द रहता है और न वह उत्साह ही, मानों सभी ठण्डा पड़ जाता है। बारम्बार ऐसा होने पर सोचा कि 'ऐसा क्यों होता है? यदि सत्य स्वरूप उन्हीं

नित्य आनन्दमय परमेश्वर को प्रार्थना के समय पा जाता हूँ तब वह भाव स्थायी क्यों नहीं होता ? उनका उस भाव में यदि एक बार ठीक-ठीक अनुभव हो जाय तो क्या दूसरा भाव मन में आ सकता है, भाव में परिवर्तन हो सकता है, या आनन्दशून्य अवस्था भीतर आ सकती है ?' कई दिन तक इस मामले पर ध्यान देता रहा। अन्त में एक दिन प्रार्थना करते-करते ही समझ गया—साफ़ समझ पड़ा—कि अपने हृदय में वर्तमान भावों को प्रार्थना द्वारा जगाकर जिस आनन्द का अनुभव करता हूँ उसे ईश्वर के प्रकाश से उत्पन्न आनन्द समझ लेता हूँ; सचमुच ईश्वर की उपासना नहीं करता हूँ—निरे भीतर के भाव की ही उपासना करता हूँ।

किसी-किसी दिन परमेश्वर में एक-एक सद्गुण का आरोप करके, उन्हें उसी गुण का एकमात्र आधार सोचकर मैं उपासना करता हूँ। भगवान् को सत्य स्वरूप, पवित्र स्वरूप, मङ्गलमय, आनन्दमय, परम दयालु आदि कहकर, अपनी धारणा और अभिज्ञता के अनुसार चन्द्र-सूर्य-अग्नि-जल-वायु प्रभृति संसार की सारी वस्तुओं में उन्हीं का प्रकाश या गुण देखकर स्तुति करता हूँ। क्रमशः वैसा ध्यान करते-करते एकाग्रता होते ही उल्लिखित भावों में बिलकुल अभिभूत हो जाता हूँ; तब 'यही परमेश्वर हैं' 'यही परमेश्वर हैं' समझकर आनन्द और उमङ्ग में मुग्ध हो जाता हूँ। प्रार्थना द्वारा ही अब साफ़-साफ़ समझ में आ गया है कि वह ईश्वर नहीं है। वाक्य द्वारा, ध्यान द्वारा, एकाग्रता द्वारा वह हमारे ही अन्तर्निहित भाव-विशेष का स्फुरण है; ध्यान-धारणा से उत्पन्न अथवा एकाग्रता से लब्ध ऐसे किसी भाव को मैं अब ईश्वर समझकर परितृप्त नहीं रहना चाहता। मैं तो वाक्य-कल्पना से मुक्त, भाव-संस्कार से दूर, सत्यस्वरूप परमेश्वर के सत्य प्रकाश का ही अभिलाषी हूँ। मैं प्रार्थना करके अपने वाक्य आप ही सुनकर अथवा अपने संस्कार या भाव के अनुरूप ध्यान करके जो अनिर्वचनीय आराम पाता हूँ उसे आनन्दहेतुक मोह के मारे उस समय सत्य-स्वरूप आनन्दमय परमेश्वर के प्रकाश के सिवा और कुछ नहीं सोच सकता सही; किन्तु कुछ देर में उस मोह के हट जाने पर साफ़ समझ जाता हूँ कि वह मेरे ही भीतर के एक भाव की उमंग या एक काल्पनिक सुख का अनुभव है। ईश्वरी अनुभव होता तो अवश्य ही स्थायी होता; और उस सम्बन्ध में ऐसा कोई सन्देह भी कभी मेरे मन में किसी तरह न उठता। परमेश्वर तो सत्य वस्तु है; उनका जरा सा भी अनुभव हो जाने पर उसमें भूल या सन्देह क्या कभी हो सकता है ? यदि किसी मनुष्य की देह में आग लग जाय तो वह चाहे सोता हो या जागता—

उचक उठेगा; जल जाने की जलन रहेगी ही; जलन के मिट जाने पर भी कुछ दिनों तक घाव बना रहता है, कम से कम कुछ निशानी जरूर रह जाती है। किन्तु अपने सबेरे के ईश्वरानुभव का तिल भर भी चिह्न शाम को हृदय में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता। अतएव स्पष्ट है कि मैं कभी ईश्वर की उपासना नहीं करता हूँ; मैं तो कल्पना की, वाक्य की और भाव की ही उपासना किया करता हूँ। प्रार्थना करने पर आनन्द तो खूब मिलता है: किन्तु वह देर तक नहीं टिकता। उसके हटते ही मानों सौगुनी यन्त्रणा होने लगती है। प्रार्थना से इस प्रकार अस्थायी असार आनन्द का अनुभव होने से मेरे प्राण छिन्न-भिन्न हो गये। प्रार्थना से चिढ़ हो गई, खीझ भी हुई। निश्चय किया कि अब प्रार्थना न करूँगा—अस्थायी असार आनन्द को अब कभी ईश्वर-प्राप्ति से उत्पन्न आनन्द न मानूँगा। मेरा दृढ़ संस्कार हो गया कि ईश्वर का साक्षात्कार हुए विना उनकी उपासना नहीं होती।

जिस प्रार्थना का अभ्यास मुझे मुद्दत से था उसे मैंने छोड़ दिया। सोचा—'अब और क्या लेकर रहूँ? लाचार होकर परमेश्वर के नाम का ही जप किया करूँ; अब जो करना हो, भगवान् ही करें।'

कुछ समय हुआ, मैंने प्रार्थना करना बिलकुल बन्द कर दिया है। गोस्वामीजी ने जो साधन दिया है उसे ही करता हूँ। दोनों वक्त प्राणायाम करता हूँ, और सदा मन में नाम का स्मरण करने की चेष्टा किया करता हूँ। किन्तु नाम-स्मरण करने का कुछ लाभ मैं नहीं समझता, मुझे उसमें आनन्द भी नहीं मिलता। दिन-पर-दिन बेतरह रुखाई से मैं बेचैन हो रहा हूँ।

भगवत् के नाम का जप करता हूँ, कभी-कभी इस भाव के घनिष्ठ होने पर मुझे आनन्द मिल जाता है; किन्तु उसको भी स्थायी न होते देख मैं उसकी भी विशेष रूप से चेष्टा नहीं करता।

इष्ट-नाम की उत्पत्ति का अनुभव

कुछ दिन से नाम का जप करते-करते ऐसा जान पड़ता है—'यह नाम का जप कौन करता है? यह नाम शरीर में कहाँ से उठता है और मैं ही कहाँ पर हूँ?' नाम का जप किया करता हूँ और साथ ही साथ प्रतिदिन यह छान-बीन किया करता हूँ। प्रत्येक बार नाम जपने के साथ तलाश करता हूँ कि यह नाम कहाँ से आ रहा है। ऐसा जान पड़ता है, मानों अपार सागर में गिरकर बुलबुले की जड़ को ढूँढ़ रहा हूँ। नाम मुझे समुद्र के बुलबुले जान पड़ते हैं; बुलबुलों को पकड़कर बारम्बार गोता लगाता हूँ; किन्तु अगाध समुद्र में गोते

लगाते-लगाते कुछ गहराई में पहुँच जाने पर फिर बुलबुले के साथ ही उतरा आता हूँ। पेट के भीतर अनेक स्थानों में घूम रहा हूँ; किन्तु कहीं मूल को पाकर ठहरने का स्थान नहीं मिलता। यह खोज करते समय मेरे चित्त में एक प्रकार का उतावलापन रहने पर भी बाहरी कुछ ज्ञान बहुत नहीं रहता। सारी इन्द्रियों की शक्ति मानों अन्तर्मुखी हो रही है। इन्हीं कुछ दिनों में मुझे धीरे-धीरे तलपेट, हृदय, कण्ठ और अन्त में भौंहों के बीच नाम की उत्पत्ति होने का अनुभव हुआ; किन्तु बिलकुल साफ़-साफ़ नहीं।

इस समय गोस्वामीजी के दर्शन करने की मुझे बड़ी इच्छा हो रही है। माघोत्सव भी समीप ही है। गोस्वामीजी के दर्शन करने और उनसे ये सब बातें पूछने के लिए मैंने झटपट ढाका जाने का निश्चय किया।

भावुकता में गोस्वामीजी का धमकाना

कल शाम को ढाका आ गया हूँ। आज सवेरे कुछ ब्राह्मसमाजी मित्रों के साथ भेंट की और भोजन कर चुकने पर इकरामपुर कदमतला में गोस्वामीजी के यहाँ पहुँचा। देखा कि रास्ता के समीपवाले कमरे में, उत्तर ओर मुँह किये, अपने आसन पर गोस्वामीजी चुपचाप बैठे हुए हैं। कमरे में हैं तो बहुत आदमी, लेकिन सभी चुप साधे हुए हैं। मैं कमरे में एक कोने में जा बैठा।

विक्रमपुर का रहनेवाला जगन्नाथ स्कूल का एक छात्र, राधाकृष्ण का चित्रपट लिये हुए, कमरे में बैठे हुए सभी को लाँघ करके सीधा गोस्वामीजी के दाहिनी ओर जा बैठा। वह बारबार गोस्वामीजी के चरणों में लोटने लगा। राधाकृष्ण के चित्र को गोस्वामीजी के मुँह के पास रखकर बारबार कहने लगा—"गोस्वामीजी, बतला दीजिए, बतला दीजिए मुझे किस तरह मिलेंगे। अहा! कैसी सुन्दर मूर्ति है! मैं और कुछ नहीं चाहता। बतला दीजिए, वे मुझे किस तरह मिलेंगे।" गोस्वामीजी ने उससे कई बार कहा कि **'शान्त होओ, शान्त होओ,'** किन्तु उसकी अस्थिरता को वे किसी तरह न रोक सके। वह छात्र मानों और भी सनक गया। तब गोस्वामीजी ने धमकाकर कहा—'**हाँ! यहाँ पर चालाकी करते हो! तो और कुछ नहीं चाहते? सोचकर बतलाओ कि अगर नवाब के बाग़ में सूनसान स्थान में कोई सुन्दरी युवती मिल जाय तो उसे चाहते हो कि नहीं। चालाकी क्यों करते हो?**' गोस्वामीजी की बात सुनते ही उस छात्र का सारा भाव लुप्त हो गया। वह थोड़ी देर चुपचाप बैठा रहा, फिर उदास मुँह किये हुए चला गया।

अनुगत का विरुद्धाचरण

पिछले साल एक दिन समाधि की अवस्था में गोस्वामीजी के मुँह से ये बातें निकल गई थीं—**साधन के भीतर का एक कृतविद्य, सुशिक्षित युवक ब्राह्मसमाज में उपाचार्य का आसन ग्रहण करेगा। ब्राह्मसमाजियों के साथ हिलमिलकर वह मुझे नीचा दिखाने की चेष्टा अनेक प्रकार से करेगा। अन्त में बुरी तरह सङ्कट में पड़कर ढाका से भाग जायगा।**

गोस्वामीजी के ब्राह्मसमाज से अलग हो जाने पर बहुत लोगों ने समझ लिया कि उक्त व्यक्ति हैं गोस्वामीजी के प्रिय शिष्य श्रीयुक्त मन्मथनाथ मुखोपाध्याय। प्रचारक-निवास में गोस्वामीजी के रहते समय ही उनके मधुर सत्सङ्ग को प्राप्त करने के लिए मन्मथ बाबू ढाका आये और ब्राह्मसमाज-मन्दिर में पण्डित श्यामाकान्त चट्टोपाध्याय के साथ रहने लगे। उस समय गोस्वामीजी की आज्ञा से कभी तो छात्र-समाज में और कभी ब्राह्मसमाज-मन्दिर में उन्होंने व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। उनके ४।५ व्याख्यानों से ही बस्ती में धूम मच गई। बहुत लोग कहने लगे कि 'ढाका में केशव बाबू के बाद कोई ऐसा अच्छा व्याख्यान देनेवाला नहीं आया।' व्याख्यान देने की अद्भुत शक्ति के प्रभाव से, बहुत थोड़े समय में, मन्मथ बाबू की खासी धाक शिशित समाज पर जम गई। गोस्वामीजी के ब्राह्मसमाज से अलग हो जाने पर भी ब्राह्मसमाजियों से मिले-जुले रहकर मन्मथ बाबू अपनी अद्भुत शक्ति और तेजस्विता का प्रयोग गोस्वामीजी के—अभ्रान्त शास्त्र-वाद, अभ्रान्त गुरुवाद आदि—मत के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला व्याख्यान देकर बड़ी तीव्रता से करने लगे। गोस्वामीजी के ब्राह्मसमाज को छोड़कर चले आने पर मन्मथ बाबू के उत्साह, उद्योग और चेष्टा से ब्राह्मसमाज की ओर लोगों का आकर्षण हो रहा है। शहर में सब जगह मन्मथ बाबू का जयजयकार हो रहा है। ब्राह्मसमाजियों के यहाँ घर-घर उनका आदर हो रहा है; कोई-कोई बड़ी उम्र के ब्राह्मसमाजी भी उनकी चरण-रज लेकर भक्ति दिखाया करते हैं।

माघोत्सव की उपासना

आज माघोत्सव है। हर साल इस माघोत्सव में भगवान् का नाम लेकर न जाने कितना आनन्द किया करता हूँ। सबेरे गोस्वामीजी के पास न जाकर मैं ब्राह्मसमाज-मन्दिर में गया। मन्मथ बाबू उपासना कर रहे थे। बड़ी

माघ शुक्ला ११

भीड़ थी। मैं लम्बे-चौड़े समाज-गृह में चुपचाप एक ओर जा बैठा। उपासना बहुत अच्छी लगी। मन्मथ बाबू की तेज-पूर्ण भाषा से मानों हृदय के सोये हुए भाव जाग उठने लगे। खूब दृढ़ होकर बैठ गया और सोचने लगा कि 'यह तो निरे भाव की उपासना है, वाक्यों का आडम्बर और कल्पना की दौड़ है। इसमें परमेश्वर कहाँ हैं?' इस प्रकार के विचारों द्वारा मैं मन को खूब कड़ा करने लगा। इसी समय मन्मथ बाबू एकाएक ज़ोर से चिल्लाकर कहने लगे—"माँ आनन्दमयी, आज माघोत्सव में तुमने सभी के हृदय को उज्ज्वल कर दिया है किन्तु माता, एक पुत्र अपनी सूनी अँधेरी कुटिया में बैठा देखो क्या सोच रहा है। माँ आनन्दमयी, आज उसके अँधेरे कमरे में क्या तुम अपना उजेला न पहुँचाओगी?" इत्यादि। यह सुनकर मेरे प्राण काँपने लगे; सोचा—'तो मन्मथ बाबू में हृदय के भाव को पहचान लेने की शक्ति है; इस बार मेरी शुष्कता का पता पाकर वे अपनी भावुकता से मुझे अभिभूत करने की चेष्टा करेंगे।' मैं उसी दम वहाँ से उठकर अपने डेरे पर लौट आया।

दोपहर को खा-पीकर इकरामपुर के कदमतला में गोस्वामीजी के स्थान पर पहुँचा। दो-मंजिले पर पहुँचकर देखा कि गोस्वामीजी २०।२५ शिष्यों समेत एक बड़े कमरे में चुपचाप बैठे हुए हैं; श्रीयुक्त रजनी बाबू और आनन्द बाबू प्रभृति गण्य-मान्य ब्राह्मसमाजी भी मौजूद हैं।

कोई महीने भर से ऊपर हो गया, मैं भाव से दूर रहता हूँ। भाव होगा तो स्थायी तो होगा ही नहीं, थोड़ी देर ठहरकर हट जायगा, इसी डर से मैं भाव की बात नहीं सुनता। न तो भाव का गाना पसन्द करता हूँ और न भावुकों के पास बैठने को जी चाहता है। मेरा दिल सूखी लकड़ी जैसा हो गया है। मेरा विश्वास है कि गोस्वामीजी भगवान् के साक्षात् दर्शन करके उपासना करते हैं। इसीसे अपनी शुष्कता की रक्षा दृढ़ता के साथ करके उनकी उपासना में शामिल हो गया। ब्राह्मसमाज की ही रीति से उन्होंने यहाँ भी उद्बोधन करके प्रार्थना करना आरम्भ किया।

माँ अन्नपूर्णा, आज छोटे-बड़े, कंगाल-फ़क़ीर सभी को तुम भरपेट अन्न दे रही हो। देश-विदेश में आज न जाने कितने आदमी तुम्हारा प्रसाद पाकर तृप्त हो रहे हैं। हमें भी भरपेट अन्न देती हो। बचपन से इस तिथि को माँ, तुम हमें विशेष रूप से अपना प्रसाद देती आई हो। इस साल भी माँ, आज हम पर तुम विशेष रूप से दया करो।

इन वाक्यों को कहने के बाद ही मैंने गोस्वामीजी की अपूर्व दशा देखी। वे रोते-रोते कहने लगे—**हो गया, हो गया! माँ; ओफ़! ओफ़! ओफ़! अब नहीं, अब नहीं, माँ अब नहीं। फूटी कौड़ी—एक फूटी कौड़ी, माँ, मैं तुम्हारा कङ्गाल बेटा तुम्हारे हाथ से एक फूटी कौड़ी माँगता हूँ। मेरे लिए यही बहुत है। माँ, इतना हज़म कर लेने की मुझमें शक्ति ही कहाँ है? तुम प्रतिदिन देना माँ, एक फूटी कौड़ी देना। अब नहीं चाहिए, अब रहने दो।** इतना कहते-कहते गला भर आने से वे चुप हो गये। शरीर कई जगह से थर-थर काँपने लगा। आँसुओं की धारा बह चली। वे एक-एक बार रोती आवाज़ में 'जय माँ जय माँ' कहने लगे। इस समय, दयामयी के गुण से हो या गोस्वामीजी के शब्दों के प्रभाव से, मेरे शुष्क कठोर प्राण भी अकस्मात् न जाने कैसे हो गये। देह बार-बार काँपने लगी। मैं ज़ोर-ज़ोर से रोकर ज़मीन में लोटने लगा। कई लोगों ने कङ्गाल का गीत छेड़ दिया—"माँ आमि तोमार पोषा पाखी*।" कमरे के भीतर और बाहर रोने की ध्वनि सुन पड़ने लगी। गुरु-भाई लोग कोई घण्टे भर से भी ऊपर तक भावावेश में मग्न रहने के बाद सावधान हुए।

बिना सोचे-विचारे ब्राह्मदीक्षा देने का प्रतिवाद

दोपहर के बाद दो-तीन गुरुभाइयों के साथ गोस्वामीजी के यहाँ बैठा हुआ हूँ। श्यामाकान्त पण्डितजी ने आकर कहा—उस दिन जो लड़का चित्रपट लिये हुए आया था वह आज ब्राह्मधर्म की दीक्षा लेगा। यह सुनकर गोस्वामीजी ने बहुत ही आश्चर्य प्रकट करके कहा—**क्या? तो उसी लड़के को ब्राह्मधर्म की दीक्षा दी जायगी? यह सब क्या है? कल जिसने राधाकृष्ण का चित्रपट लिये हुए हमारे पास आकर इतना गोलमाल मचाया था और जिसे धमकाकर शान्त करना पड़ा था वही आज ब्राह्मधर्म में दीक्षित होगा! ऐसे-ऐसे लोगों को दीक्षा देने से ही तो ब्राह्मसमाज की इतनी हानि हो रही है। कल जो राय थी वह आज बदल गई; कौन कह सकता है कि अब कल ही उसकी राय पलट न जायगी? क्या जत्थे को बढ़ाना ही उद्देश्य है? समुदाय को बढ़ाने से ही सब कुछ हो**

* माँ, मैं तुम्हारी पालतू चिड़िया हूँ।

जायगा ! तब तो पागलों को भी दीक्षा दी जा सकती है। ओफ़ कैसा भयानक काम है ! शायद उन लोगों को सब भीतरी बातें मालूम नहीं हैं। एक बार उन लोगों को बतला देना चाहिए। क्या तुममें से कोई जा सकता है ?

जाने के लिए तुरन्त ही राजी होकर मैंने कहा—'मैं जाऊँगा। बतलाइए, किससे क्या कहना है।' गोस्वामीजी ने कहा—**तुम जाकर एकान्त में मन्मथ से मेरी बात कहना कि कल जो चित्र लिये हुए घूमता-फिरता था उसे आज ही ब्राह्मसमाज दीक्षित नहीं कर सकता। उस लड़के की निगरानी कम से कम पन्द्रह दिन तो कर लेनी चाहिए।** मैं दौड़ा हुआ ब्राह्मसमाज-मन्दिर में पहुँचा। मन्मथ बाबू को एक ओर बुला ले जाकर बतलाया कि मुझे गोस्वामीजी ने भेजा है; फिर मैंने उन्हें सब हाल बतला दिया। मन्मथ बाबू ने कहा—"मैं यह कुछ भी नहीं जानता। ख़ैर, तुम जाओ। मुझसे पूछे-ताछे बिना कोई दीक्षा नहीं लेने पावेगा, गोस्वामीजी से जाकर यह कह देना।" मैंने तुरन्त इकरामपुर में आकर गोस्वामीजी को सब हाल कह सुनाया।

ब्राह्मसमाज-मन्दिर से बाहर आकर इकरामपुर जाते समय मैं अपने एक मित्र श्रीयुक्त रेवतीमोहन सेन से, अपने साथ गोस्वामीजी के पास चलने के लिए, ज़िद करने लगा। पटुवा-टोली के रास्ते के किनारे रेवती बाबू गोस्वामीजी के साधन-सम्बन्ध में मुझसे बहुत सी बातें पूछने लगे। रेवती बाबू गोस्वामीजी से दीक्षा ले लें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हो। ये ख़ासे गवैया हैं—इनका गाना सुनकर गोस्वामीजी को तन-बदन की सुधि नहीं रहती। दीक्षा ले लेने के लिए मैं रेवती बाबू से बारम्बार कहने लगा। वे कहने लगे—"दीक्षा लेने की मुझे बड़ी इच्छा है; किन्तु अभी और कुछ दिन तक देखूँ-भालूँगा। और मेरे इच्छा करने से ही क्या वे दीक्षा दे देंगे ?" इत्यादि।

साधना के अनुभव में उत्साह देना। भक्त माली की इच्छा-पूर्ति

माघ शुक्ला १३, बृहस्पतिवार

मैं सबेरे उठकर गोस्वामीजी के पास गया। उन्हें ध्यान-मग्न देखकर मैं चुपचाप बैठा रहा। अपने घर पर सङ्कीर्तन में गोस्वामीजी को ले जाने के लिए एक सज्जन उतावले हो गये। उन्होंने हम लोगों के मना करने की परवा न की; गोस्वामीजी को उनके आसन से पुकारकर उठाने जाकर वे एकाएक गिर पड़े। वे

जो नई धोती पहने हुए थे वह कई जगह पर फट गई। पैर में भी बहुत चोट लगी। गोस्वामीजी का ध्यानभङ्ग किये बिना ही वह भला आदमी खेद के मारे चला गया। थोड़ी देर में गोस्वामीजी सचेत हुए। सबके चले जाने पर मैंने गोस्वामीजी से कहा—कल मैं घर जाऊँगा।

गोस्वामीजी—तुम्हारे देश में, ईछापुरा में, कल हम लोग भी जायँगे। दोपहर को खा-पीकर आ जाना, साथ ही साथ चलेंगे। अब तुम्हारा क्या हाल है? तुम्हारी तन्दुरुस्ती अच्छी है न? हाँ, तुम अपने दादा के पास जानेवाले थे न? पछाँह में जाने का अच्छा मौक़ा था। कब जाओगे?

मैं—दादा बहुत जल्द घर आनेवाले हैं। इसीसे मैं नहीं गया।

गोस्वामीजी—जान पड़ता है, तुम्हारी लिखाई-पढ़ाई बन्द है। रहने भी दो। पहले तन्दुरुस्ती को सुधार लो। लिखने-पढ़ने के लिए उतावले होने की ज़रूरत नहीं। साधन कैसा हो रहा है? नाम का जप करते जाते हो न?

मैं—देश में अच्छा साथ नहीं है। बुरे विचार और बुरी कल्पनाएँ बीच-बीच में चित्त को बेतरह बेचैन कर देती हैं। बीमारी भी पीछा नहीं छोड़ती। मुझे अब कुछ नहीं सुहाता। नाम को तो जपता हूँ, किन्तु शुष्कता के मारे दिन-दिन लकड़ी होता जाता हूँ। बड़ा कष्ट है। बड़ी निराशा होती है।

गोस्वामीजी—हाँ, सब समझता हूँ। साधन किया करो, सब साफ़ हो जायगा। थोड़ा-थोड़ा दृष्टि-साधन भी किया करो। प्राणायाम करने में कष्ट हो तो मत किया करो। किन्तु धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा प्राणायाम कर सको तो देखना यह बीमारी न ठहरेगी। इस प्राणायाम का एक बार भली भाँति अभ्यास हो जाने पर फिर कोई भी रोग नहीं टिक सकता। और प्राणायाम के समय थोड़ा-थोड़ा निःश्वास को रोककर नाम का जप किया करो। शुष्कता से कुछ हानि नहीं है। नाम का जप करते-करते यह शुष्कता भी हट जायगी। इसमें निराश होने की क्या ज़रूरत?

मैं—मैं जिन्हें बहुत अच्छा समझता हूँ, श्रद्धा-भक्ति करता हूँ, ऐसे कुछ मनुष्यों का मैं प्रतिदिन साधन करने से प्रथम स्मरण कर लिया करता हूँ। ऐसी कल्पना से कुछ हानि तो नहीं होती?

गोस्वामीजी—**यह तो बहुत अच्छा काम है। इससे हानि तो रत्ती भर नहीं होती, उलटा लाभ ही होता है। अच्छी बात है, वैसा किया करो। हम भी ऐसा करते हैं।**

मैं—साधन के समय नाम कहाँ से आता है, इसका पता लगाने की इच्छा होती है। तलपेट, नाभि और कण्ठ इसी प्रकार अनेक स्थानों में नाम का अनुभव करता हूँ। अब मस्तक की पिछली ओर एक स्थान में धारणा होती है। इस प्रकार खोज करने से जिस-जिस स्थान में अनुभव हो, धारणा किया करूँ ?

गोस्वामीजी—**हाँ, हाँ, किया करो। ये धारणाएँ अनेक स्थानों में होंगी।** (माथे में और तालू में उँगली से संकेत करके कहा—) **क्रमशः इन स्थानों में भी होंगी। साधन करते-करते ये धारणाएँ अपने आप होती हैं। इनका होना बहुत अच्छा है।**

यह बातचीत होने के बाद गोस्वामीजी ने आँखें बन्द कर लीं। हम लोग चुपचाप बैठे रहे। थोड़ी ही देर में हरिसङ्कीर्तन की मण्डली कदमतला में आ गई। दूर से मृदंग की आवाज सुनते ही गोस्वामीजी धीरे-धीरे सिर हिला रहे थे। सङ्कीर्तन-मण्डली के कदमतला में आते ही वे आसन से उछल पड़े और मण्डली के बीच में जाकर नृत्य करने लगे। संकीर्तन-मण्डली आगे बढ़ी, साथ ही वे भी नृत्य करते हुए चले। क्रम से हम लोग बेनियाटोला के श्रीयुक्त विहारी मालाकार के घर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही गोस्वामीजी बेहोश होकर गिर पड़े। इसके थोड़ी देर बाद कीर्तन भी रुक गया। थोड़ा समय बीतने पर गोस्वामीजी ने सचेत होकर इधर-उधर देखकर कहा—**यह क्या ? मैं यहाँ किस तरह आ गया ? सोचता था कि मैं कदमतला में ही हूँ।**

इस समय सामने राधाकृष्ण की मूर्ति देखकर गोस्वामीजी ने नीचे गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। मालाकार ने हाथ जोड़कर गोस्वामीजी से कहा—"प्रभो, आज ही हमारे ठाकुरजी की प्रतिष्ठा हुई है। बड़ी आशा थी कि एक बार यहाँ आपका शुभागमन हो, आपके चरणों की रज गिरे। आप से प्रार्थना करने गया था, किन्तु कहने की हिम्मत नहीं हुई। आप बड़े दयालु हैं, इसी से मेरी इच्छा को जानकर आपने मुझे कृतार्थ कर दिया।" अब वह गोस्वामीजी के चरणों में गिरकर लोटने लगा। इससे पहले मैंने कभी गोस्वामीजी को प्रतिमूर्त्ति के आगे नमस्कार करते नहीं देखा। मन में बड़ा दुःख हुआ। सोचा, हाय भगवान् मुझे यह दृश्य क्यों दिखाया।

ईछापुरा गाँव में गोस्वामीजी और लाल । महोत्सव में मल्लवेश में नृत्य

माघ शुक्ला १४, शुक्रवार

सवेरे दिशा-फ़रागत से छुट्टी पाकर बैठा हूँ। छोटे दादा ने आकर कहा—"अभी तक बैठा क्यों है ? गयना (इस पार-उस पार पहुँचानेवाली नाव) का समय हो गया है। आज घर न जायगा ?" मैंने कहा— आज गोस्वामीजी भी ईछापुरा के हरिचरण चक्रवर्ती के यहाँ जायँगे ; मैं उन्हीं के साथ जाने को कह आया हूँ। उनके साथ जाने की बात सुनकर छोटे दादा ने बहुत ही चिढ़कर कहा—"तो गोस्वामी का साथ हुए बिना घर नहीं जा सकता ? 'गोस्वामी ! गोस्वामी !' केवल गोस्वामी, यह न होगा। तू अभी नाव पर बैठकर चला जा।" अब मैं क्या करता ? छोटे दादा की बात मानकर चल पड़ा। नाव में सवार होने पर मुझे रोना आ गया। मन ही मन गोस्वामीजी को प्रणाम करके जतलाया कि छोटे दादा के कहने से, इच्छा न रहने पर भी, मैं इस नाव में सवार होकर जा रहा हूँ। आप मेरी बाट न जोहिएगा। और जो अपराध मैंने जान-बूझकर नहीं किया है उसके लिए मुझे क्षमा कीजिएगा।" सारा रास्ता मैंने बड़ी बेचैनी से काटा।

माघी पौर्णिमा, शनिवार

सवेरे उठने पर गोस्वामीजी को देखने की फ़िक्र हुई। घर से आध घण्टे की दूरी पर ईछापुरा गाँव है। श्रीयुक्त हरिचरण चक्रवर्ती वकील के घर बेहद भीड़भाड़ है। चक्रवर्तीजी के घर आज महोत्सव होगा। नीची श्रेणी के लोग, वैष्णव, बाउल आदि के सिवा भले आदमी इस देश में महाप्रभु का उत्सव प्रायः नहीं करते; हम लोग उक्त उत्सव को नीची जातिवालों का गुल-गपाड़ा समझते हैं। और इस उत्सव में बारोदी के ब्रह्मचारीजी भी आवेंगे ; कल गोस्वामीजी तो आ ही गये हैं—यह खबर पाकर इज़्ज़तदार समाज के मुखिया लोग भी इस उत्सव में शामिल हो गये हैं।

गोस्वामीजी के पास जाकर, उन्हें प्रणाम करके, मैं एक ओर जा बैठा। उस समय उस घर में किसी प्रकार का गोलमाल नहीं था, सिर्फ़ गोस्वामीजी के कुछ शिष्य मौजूद थे। मैं क्यों गोस्वामीजी का साथ नहीं कर सका, यह उनसे कहते ही उन्होंने कहा—**तुम्हारा कल सवेरे नाव में सवार होकर आना मुझे उसी समय मालूम हो गया था।**

मैं—तो क्या आपको किसी ने इसकी सूचना दी थी ?

गोस्वामीजी—नहीं, यह बात नहीं है ।

संक्षेप में यह उत्तर देकर ही, मुझे और कुछ पूछने का अवसर न देकर, वे बराबर हरिचरण बाबू को पुकारने लगे। हरिचरण बाबू के आते ही उतावले होकर गोस्वामीजी ने कहा—

घर में मूड़ी (भुने चावल) है ? दो मुट्ठी मूड़ी तो ला दीजिए। कलेजे में दर्द जान पड़ता है। पित्त के दर्द में मूड़ी से आराम पहुँचता है; समय-समय पर खाते ही रोग 'दब जाता है।' मेरा शरीर बहुत ही रोगी है। कलेजे में दर्द प्रायः चौबीसों घण्टे बना रहता है। आध घण्टे के रास्ते को मैंने बड़े क्लेश से कोई डेढ़ घण्टे में तय किया है। गोस्वामीजी के पास आकर दर्द के मारे कलेजे को दबाये हुए बैठा था। हरिचरण बाबू मूड़ी ले आये। दो-एक कौर खाकर, गोस्वामीजी ने बाक़ी सब खाने को मुझसे कहा। मूड़ी खाने से मेरा दर्द बहुत कुछ कम हो गया।

मैंने देखा कि गोस्वामीजी के पास मुझसे भी कम उम्र का एक लड़का चुपचाप बैठा हुआ है। वह लड़का देखने में बहुत ही अच्छा लगा। उसका परिचय जानने के लिए श्रीधर बाबू को साथ लेकर मैं घर से बाहर गया। पूछने पर श्रीधर बाबू ने कहा—"इसका नाम लालविहारी बसु है; शान्तिपुर में घर है। देखने में तो बालक जान पड़ता है; किन्तु है यह जातिस्मर महापुरुष। आठ वर्ष की उम्र में इसने धर्म-धर्म करके घर-द्वार छोड़ दिया था। संन्यासी, फ़क़ीर, दरवेश-प्रभृति अनेक संप्रदायों के छः सिद्ध पुरुषों से क्रमशः दीक्षा लेकर इसने कठोर साधन-भजन किया और बहुत सा योगैश्वर्य प्राप्त किया। किन्तु कहीं भी यथार्थ तृप्ति न पाकर अब अद्भुत रीति से, दैवी घटना होने से, गोस्वामीजी के पास आ गया है। इसका परिचय और क्या दूँ ? इसका सत्सङ्ग करने से धीरे-धीरे सब मालूम हो जायगा। श्रीधर की बातें सुनकर मैं चुप हो गया।

इधर महोत्सव के बाजे बजने लगे। चक्रवर्तीजी के बाहरवाले मकान के विशाल आँगन में उत्तर ओर महाप्रभुजी प्रतिष्ठित हैं। गोस्वामीजी के साथ हम सभी वहाँ पर पहुँचे। महाप्रभु को साष्टाङ्ग प्रणाम करके गोस्वामीजी खड़े हुए। हाथ जोड़े हुए सतृष्ण दृष्टि से महाप्रभु की ओर देखकर वे पैर से लेकर सिर तक काँपने लगे। चारों ओर बाउल वैष्णव गोस्वामीजी का भाव देखकर, बड़ी उमङ्ग के साथ, अनेक टोलियों में जोर-जोर से कीर्तन करने लगे। बहुत से मृदंगों और मँजीरों की झमाझम आवाज से शरीर में रोमाञ्च होने लगा।

गोस्वामीजी कई बार प्रत्येक ताल पर चुटकी बजाकर हाथ नचाते-नचाते अकस्मात् एकदम उछल पड़े; तुरन्त ही बायें हाथ से लाल को पकड़कर नृत्य करने लगे। अब लाल भाव के आवेश में ऊँचे कूद-कूदकर, हाथ छुड़ाकर, एक ओर हट गया। गोस्वामीजी तीव्र दृष्टि से लाल की ओर देखकर मल्लवेश में ताल ठोकने लगे। लाल ने भी गोस्वामीजी की ओर टकटकी बाँधे रहकर उद्दण्ड नृत्य आरम्भ कर दिया। इस समय गोस्वामीजी ने भयङ्कर हुङ्कार करते-करते मुट्ठी बाँधकर बायाँ हाथ सामने की ओर फैला दिया और बाणयोद्धा की भाँति दहने हाथ की तर्जनी का लाल की ओर सन्धान करके वे बार-बार कान तक आकर्षण करते हुए आगे बढ़ने लगे। कुछ क़दम आगे जाकर ही बार-बार कूदते हुए टेढ़े होकर बायाँ पैर आगे फेंकते-फेंकते बड़े ज़ोर से हरिध्वनि करके फुर्ती से लाल की ओर दौड़ चले। लाल चटपट बायें हाथ को सामने की ओर ढाल के आकार में फैलाकर डरे हुए और सताये गये के भाव से पीछे हटने लगा। २५।३० हाथ पीछे हटकर लाल अकस्मात् बड़े ज़ोर से 'जय निताई, जय निताई' बोल उठा; और एकाएक सामने की ओर ऊँचा उछल कर दाहने हाथ को बार-बार कान तक सन्धान करके, गोस्वामीजी की तरह, उन्हें लक्ष्य करके दौड़ पड़ा। तब गोस्वामीजी मानों लाल के वेग को सँभालने में असमर्थ होकर सामने हाथ की ओट करके त्रस्त भाव से चटपट पीछे हटने लगे। २५।३० हाथ पीछे हटकर गोस्वामीजी फिर बड़ा ज़ोर लगाकर प्रचण्ड हुङ्कार करके "हरि बोलो" "हरि बोलो" कहते-कहते लाल की ओर लपके। अब लाल फिर पहले की तरह पीछे हटने लगा। इस प्रकार एक पर दूसरा, लगातार भयङ्कर हमला करके, दुर्धर्ष योद्धा के वेष में दौड़धूप करने लगा। असंख्य बाउल-वैष्णवों से घिरे हुए श्रीधर लम्बे-चौड़े आँगन में उच्च कण्ठ से हरिध्वनि करके मण्डलाकार में नृत्य कर रहे थे। प्रतिष्ठा की गई मूर्ति की ओर एकाएक उछलते-उछलते जाकर उन्होंने आग-भरी हुई धूप-दानी उठा ली, और 'बोलो-बोलो' की ध्वनि से दिशाओं को कँपाकर वे फिर कूदने लगे। सिर नीचा किये हुए श्रीधर अब गोस्वामीजी के चरणों में दृष्टि जमाये हुए धुएँ-समेत धूपदानी द्वारा आरती करते हुए उनके पीछे-पीछे लपके। इस समय बड़ी गड़बड़ मच गई। असंख्य दर्शक बार-बार ज़ोर-ज़ोर से हरिध्वनि करने लगे। चारों ओर लोग बेहोश हो-होकर गिरने लगे। कीर्तन के कोलाहल में मिलकर बहुत से मृदङ्गों और मँजीरों की ध्वनि ने सभी को कम्पित कर दिया। बावलों की तरह चिल्ला-चिल्लाकर सब लोग गाने लगे,—

कि शुनि, कि शुनि, सिंह रवरे नदियाय ।
नित्यानन्द बजाय भेरी, 'भों-भों, भों-रव करि' ;
(हुंकारिया) श्री अद्वैत बगल बजाय रे (नदियाय);
जगा बोले, माधा भाई, पालाबार आर स्थान नाई,
संसार घेरिलो हरि-नाम रे (नदियाय) !
श्रीचैतन्य महारथी, नित्यानन्द सारथि ;
श्री अद्वैत युद्धे अगुआय रे (नदियाय) ।*

बहुत देर तक इस प्रकार नाचते रहने के बाद लाल अकस्मात् गोस्वामीजी के चरणों में गिरकर लोटने लगा। गोस्वामीजी भी जोर से उछलकर और कई बार हरिध्वनि करके बेहोश होकर गिर पड़े। गोस्वामीजी के पैरों को मैंने और हरिचरण बाबू ने इसलिए कपड़े से ढक लिया कि और लोग उन्हें छूने न पावें। हम लोग उनको पंखे से हवा करने लगे। श्रीधर भी मूर्च्छित पड़े हुए हैं। धीरे-धीरे संकीर्तन रुक गया।

ठीक समय पर, गोस्वामीजी की आज्ञा के अनुसार, महाप्रभु को भोग लगाया गया। खा-पीकर तीसरे पहर हम लोग सभी आराम करने लगे।

चन्द्रग्रहण

लाल के साथ आज ही पहले-पहल मेरी बात-चीत हुई। उसके जीवन की बहुत सी अद्भुत घटनाओं का हाल सुनने से मैं विस्मित हो गया। आज के इस उत्सव में बारोदी के ब्रह्मचारीजी के सम्मिलित होने की खबर थी; पर वे नहीं आये। गोस्वामीजी तो कल बारोदी जायँगे। रात को श्रीधर और लाल दूसरे घर में सोये। चक्रवर्तीजी और मैं दोनों ही गोस्वामीजी के पास रहे। आज चन्द्रग्रहण है।

कुछ अधिक रात होने पर गोस्वामीजी ने कहा—'**आज ग्रहण है। सारी रात**

---

* नदिया नगरी में यह सिंहनाद क्या सुन रहे हैं। नित्यानन्द भेरी बजाकर भों-भों शब्द कर रहे हैं और श्री अद्वैताचार्य हुङ्कार करके बग़ल बजा रहे हैं। जगाई कहता है कि भाई मधाई, भागने को जगह नहीं है; हरि के नाम ने संसार को घेर लिया है। श्री चैतन्य महारथी हैं, नित्यानन्द सारथि हैं और श्री अद्वैत युद्ध में आगे बढ़ रहे हैं।

जागते रहकर आज बहुत लोग जप-तप करेंगे।' मैंने पूछा—'किस लिए? आज के दिन जप करने से क्या कुछ विशेष फल होता है?'

गोस्वामीजी—**यह नहीं कह सकते। हाँ, तिथि में तो गुण अवश्य है।** तनिक ठहरकर बातचीत के सिलसिले में गोस्वामीजी ने कहा—**सेराजदीघा नदी के उस पार एक आश्रम हो तो बहुत अच्छा हो। शहर के कोलाहल से बचकर समय-समय पर वहाँ आकर एकान्त में ठहर सकेंगे।**

सब के सो जाने पर गोस्वामीजी ने मुझसे भी लेट रहने के लिए कहा। मैं ढाई बजे रात के बाद सो रहा। गोस्वामीजी के सामने धूनी जल रही थी, वे सारी रात एक ही भाव में बैठे रहे। इस समय एक बार कहा—**एक पहाड़ पर एक बार हम सभी को सम्मिलित होना होगा। गुरुजी हम लोगों को, अलग-अलग कार्य सिद्ध करने के लिए, एक-एक जत्था बनाकर संसार में भेजेंगे।**

नींद की खुमारी में सुनकर मैंने इस बात पर कुछ प्रश्न नहीं किया।

साधन का सङ्कल्प

गोस्वामीजी के दिये हुए साधन में मेरी आन्तरिक आस्था कुछ आशाप्रद अब तक

फागुन नहीं हो पाई है। किन्तु उनके शिष्यों के साथ जितना मिलता-जुलता हूँ उतना ही उनकी हालत देखकर विस्मित होता हूँ। कुसंस्कारापन्न हिन्दू-समाज के जिन व्यक्तियों ने यह साधन लिया है उनकी चाहे जैसी हालत हो जाना अथवा उस ढँग का कुछ कहने लगना मेरे नजदीक असम्भव नहीं। उसको तो मैं हिसाब में लेता ही नहीं; किन्तु ब्राह्मभावापन्न, प्रत्यक्षवादी, बहुत ही कट्टर गोस्वामीजी के शिष्यों को भी जब मैं इस साधन के लेने से सन्तुष्ट देखता हूँ और अनेक अद्भुत अवस्थाओं का परिचय देते सुनता हूँ,—खासकर जन्म भर के सच्चे, बेलाग गोस्वामीजी इस साधन की सफलता के सम्बन्ध में जब अपने जीवन की साफ़ गवाही दे रहे हैं, तब इसमें सन्देह को किस प्रकार रहने दूँ? अपने ऊपर यह सोचकर धिक्कार उपजा कि अपने उद्योग में कमी रहने से ही मुझे साधन करने से लाभ नहीं हो रहा है। मैंने प्रतिज्ञा की कि लगन से साधन करके, देह और प्राण को जलाकर, अङ्गारा बना दूँगा। स्नान, भोजन और सोने में जितना समय लगता था उसको छोड़कर तड़के से लेकर रात के ११ बजे तक प्रतिदिन लगातार नाम का

जप करने लगा। प्राणायाम, कुम्भक और दृष्टि-साधन को ठीक-ठीक करने लगा। कोई एक महीने से अधिक हुआ, इसी प्रकार साधन कर रहा हूँ।

ज्योति के दर्शन में अचेत हो जाना

और-और दिनों की तरह आज भी बड़े तड़के उठकर मैं अपने आसन पर बैठकर नाम का जप स्थिरता से कर रहा हूँ, अकस्मात् देखा कि एक अद्भुत ज्योति झिलमिलाकर प्रकट हुई। देखते-देखते वह ज्योति क्रमशः स्पष्ट हो गई; उसने हजारों बिजली की बत्तियों के उजेले की तरह अद्भुत छटा फैला करके दिशाओं को प्रकाशित कर दिया। गहरे तरङ्गों से परिपूर्ण स्वच्छ जलाशय में चन्द्र के प्रतिबिम्ब की भाँति, बहुत ही चमकीली, चञ्चल ज्योति को अपने माथे में देखते-देखते मैं आनन्द के मारे मूर्च्छित सा हो गया। ५।७ मिनट तक यह ज्योति लगातार चमकीली होकर स्थिर हो गई। उसका निर्मल मनोहर सौन्दर्य देखकर मेरा चित्त उस पर बिलकुल लट्टू हो गया, मुझे और कुछ भी ज्ञान न रहा। याद नहीं कि इस दशा में मैं नाम का जप करता था या नहीं। यह भी स्मरण नहीं कि इस दर्शन के बाद मेरी आच्छन्न अवस्था कितनी देर तक बनी रही।

फागुन का अन्त

जाग उठने पर, उस ज्योति का स्मरण करने से अब मैं पागल सा हो गया हूँ। सदा यही सोचता हूँ कि कहाँ जाने और क्या करने से मुझे फिर उसके दर्शन मिलेंगे।

मैंने निश्चय किया है कि कल ही गोस्वामीजी के पास जाऊँगा। आज तो सब कुछ मानों मेरे लिए विषादमय, नीरस और चिढ़ पैदा करनेवाला जँचता है। ज्योति की याद एक सी बनी हुई है।

ढाका पहुँचकर गोस्वामीजी के शिष्यों में से श्रीयुक्त श्यामाकान्त पण्डित, श्रीधर घोष और श्रीमान् लालविहारी से भेंट की। उनमें से हर एक को अलग-अलग एकान्त में ले जाकर ज्योति के दर्शन होने का विवरण कह सुनाया। उन सभी ने इसके दर्शन की यथार्थता को ठीक बतलाया। पण्डितजी ने कहा—"वही तो भौंहों के बीचवाला दिव्य चक्षु है। उसके प्रकाशित रहने से सारा विश्व दिव्य प्रकाश में मधुमय देख पड़ता है। जिस पर्दे की ओट में परलोक है वह इसी प्रकाश से साफ़ हो जाता है। तब देख पड़ता है कि जीवन और मरण, इहलोक और परलोक सब एक ही वस्तु है। गुरु की कृपा से ही यह अवस्था प्राप्त होती है। उन्हीं की इच्छा से यह स्थायी होती है।" लाल ने कहा—"यह ज्योति धीरे-धीरे हृदय में पहुँच जाती है और आठों पहर आनन्दरूप में बनी रहती

है। इसके लुप्त होने पर निराशा और शुष्कता से जीवन मसान सा बन जाता है; उस समय अनेक प्रकार के प्रलोभन और परीक्षाएँ उपस्थित होती हैं, जलन और दर्द के मारे हृदय खाली हो जाता है। नाम के प्रभाव से ही उक्त ज्योति का प्रकाश होता है; और नाम के न रहने से ही ज्योति अन्तर्द्धान हो जाती है।" श्रीधर ने कहा—"अरे भाई, यही तो चीज है। इसी को ब्रह्मज्योति कहते हैं। यदि यह अवस्था स्थायी हो जाय तो फिर क्या बचाव हो सकता है? क्या वासना और क्या कामना सब का लय हो जाता है, मनुष्य अपनी सत्ता को भूलकर उक्त ज्योति में डूब जाता है। साधन में निष्ठा और आकर्षण बढ़ाने के लिए गुरुदेव समय-समय पर चरम अवस्था की किञ्चित् आभास-स्वरूप इस ज्योति को साधक के आगे प्रकट कर देते हैं; और फिर उसे हटा लेते हैं। यह दशा सिर्फ़ तुम्हारी ही नहीं हुई है; बल्कि पहले पहले ऐसी एक न एक विचित्र अवस्था प्रत्येक व्यक्ति की होती है। न यह प्रयत्न करने से प्राप्त होती है और न साधन करने से। यह अवस्था तो गुरु की कृपा से ही प्राप्त होती है। बिना उनकी कृपा के कुछ भी नहीं हो सकता।"

इन लोगों की बातें सुनने से मुझे आनन्द तो हुआ; किन्तु इससे देर तक सन्तोष नहीं हुआ। सोचा कि सत्य वस्तु का ज्ञान हो तो हजार आदमी भी एक ही ढङ्ग का उत्तर देंगे। देखता हूँ कि इनमें से प्रत्येक ने अलग-अलग ढङ्ग की बात कही है। इनकी बातों में यद्यपि कुछ परस्पर-विरोधी भाव नहीं है तो भी मुझे ऐसा जान पड़ता है कि शायद इन्होंने 'अटकल' की बातें कही हैं! अब मैं दूसरी ओर छान-बीन करने के लिए ब्राह्मसमाजी डाक्टर कैलास बाबू के पास गया। उन्हें अपनी सारी बातें सुनाकर मैंने पूछा—"उक्त ज्योति के दर्शन मुझे आँखों के दोष अथवा दिमाग़ की खराबी से तो नहीं हुए?" डाक्टर साहब ने कहा—"इसके सिवा और क्या कहूँ? तुम्हारी तो 'शार्ट साईट' है ही। आँखों में खराबी हो तो मनुष्य को ऐन दोपहरी में जुगनू देख पड़ता है। हम लोगों का यह 'परफ़ेक्ट सायंस' है, डाक्टरी की किताबों में वैसे बहुत से प्रमाण मौजूद हैं। 'योग-ओग' करते-करते दिमाग़ और आँखें खराब हो जाने पर और भी बहुत कुछ देखोगे।"

डाक्टर साहब की बातों से मेरे दिल में दर्शन के विषय में बेढब खटका पैदा हो गया। अतएव गोस्वामीजी से और कुछ पूछने को जी न चाहा। किन्तु भीतर ही भीतर उक्त ज्योति के दर्शन के लिए एक आकांक्षा और बेचैनी अपने आप होने लगी।

जो हो, मैं पहले की अपेक्षा और भी अधिक लगन के साथ साधन करने लगा। सदैव उस ज्योति की याद मेरे मन में रहने लगी। मैं उसको हटा नहीं सका।

ढाका का टर्नेडो

चैत्र कृष्णा ११, शनिवार

दिन ढलने पर ढाका के पश्चिमी आकाश में नदी के ऊपर काले बादल का एक टुकड़ा देख पड़ा। नवाब गनी मियाँ साहब के मकान के दक्षिण ओर अकस्मात् ऐसा बवंडर उठा, जिसने बूढ़ी गङ्गा के जल में हलचल मचा दी। देखते ही देखते नदी से, हाथी की सूँड़ के आकार का, पानी का खम्भा सा ऊपर को उठा और काले बादल में मिल गया। अब उसमें से आग के असंख्य गोले चारों ओर गिरने लगे। एक साथ २०।२५ इञ्जिनों के चलने से जैसा शब्द होता है वैसे ही भयङ्कर शब्द से शहर एकदम काँप उठा। अकस्मात् उस शब्द को सुनकर गोस्वामीजी आसन से उठ बैठे और उतावली के साथ घर के दरवाज़े पर आ खड़े हुए। वे रोने के स्वर में काली और महावीर की स्तुति करने लगे। उन्होंने पश्चिम आकाश की ओर नजर उठाकर देखा कि महावीर और महाकाली ने भीषण मूर्ति में प्रकाशित होकर गम्भीर गर्जन के साथ-साथ दिशाओं को कँपा दिया है; दोनों देवता आग के गोले फेकते हुए नाचते-नाचते आगे बढ़ रहे हैं! काली की अनुचरियों को सामने जो कुछ मिल जाता है उसे नष्ट-भ्रष्ट करती हुई वे भयङ्कर गति से काली के पीछे-पीछे दौड़ी जा रही हैं! गोस्वामीजी की आँखें डबडबाई हुई थीं, शरीर काँप रहा था, हाथ जोड़कर नमस्कार करते-करते वे जोर-ज़ोर से कहने लगे—**जय माँ काली! जय माँ काली! दया करो, दयामयि, दया करो माँ। प्रसन्न होओ, माता, प्रसन्न होओ।** थोड़ी देर में फिर घबराहट के साथ कहा—**जय महावीर! जय महावीर! आग के उन गोलों को मेरी छाती पर फेको। सबके ऊपर दया करो, सबकी रक्षा करो।** इस प्रकार स्तुति करके वे उन लोगों को मनाने लगे। इधर जो कुछ होना था, २।३ मिनिटों में हो गया। उपद्रव ठण्डा हो गया। किन्तु शहर भर में बड़ा गुल-गपाड़ा मच गया। इन चन्द मिनिटों में ढाका और विक्रमपुर में, सैकड़ों गाँवों में, जो अस्वाभाविक काम हो गये वे बुद्धि से परे हैं और अचरज उत्पन्न करनेवाले हैं। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि एक अद्भुत अलौकिक शक्ति के प्रभाव से ये अद्भुत घटनाएँ हो गई हैं। कुछ घटनाओं का उल्लेख करता हूँ:—

१—बूड़ी गङ्गा के दाहने किनारे से एक बुढ़िया को नदी के बाँयें तट पर, शहर के बीच में, बहुत ऊँचे-ऊँचे मकानों को लाँघकर नार्मल स्कूल के दो-मंजिले में एक कमरे में पहुँचा दिया है ! किन्तु ६५ वर्ष की बुढ़िया के किसी अङ्ग में ज़रा सी चोट नहीं लगी ।

२—"ढाकाप्रकाश" छापाख़ाने की एक बड़ी सी टेबिल को ५।६ मिनिट के मार्ग पर एक भले आदमी के घर में पहुँचा दिया है । जिस कमरे में मेज़ रक्खी हुई थी उसमें से केवल एक दरवाज़े में होकर होशियारी से उसे टेढ़ा करके निकाले बिना वह और किसी उपाय से बाहर नहीं लाई जा सकती थी । टेबिल कोई ढाई मन की थी ! उसका कोई हिस्सा टूटा-फूटा नहीं है ।

३—मूड़ी से भरे हुए घड़े को एक मकान के मचान से उठाकर ३।४ मिनिट की दूरी के एक मकान में लाकर रख दिया है । ढक्कन समेत घड़े में कहीं तनिक सी भी गड़बड़ नहीं हुई है ।

४—एक १५।१६ हाथ लम्बे और ५।६ फुट नीचे गड़े हुए 'दस्ती' खम्भे को (शायद चड़क-पूजा के) उखाड़कर उसी गड्ढे में उसके सिरे के बल, पहले की ही तरह, गाड़ दिया है ।

५—ख़ासे मजबूत मकान का कुछ अंश तोड़-फोड़कर, ईंट-गारे तक का चिह्न न रहने देकर, उठा ले गया है । और मज़ा यह कि उसके पास ही, १२।१४ फुट के अन्तर पर लगे अधसूखे गुलाब की एक पखुरी तक नहीं टूटी है ।

६—एक युवती के सारे शरीर में तो कहीं कुछ नहीं हुआ है ; सिर्फ़ उसके दोनों स्तनों को, एक बराबर, इस तरह उखाड़ लिया है जैसे छुरे से काट लिया हो ।

७—उँगली बराबर मोटी और कोई एक हाथ लम्बी बाँस की नुकीली खपची से एक सुपारी के पेड़ को आर-पार छेद रक्खा है । ख़ासा मजबूत आदमी भी उसे खींचकर बाहर नहीं निकाल सकता ।

जिन-जिन स्थानों में होकर यह बवंडर निकला है वे सब जल गये हैं । पक्की दीवारों का—यहाँ तक कि जमीन का भी—रङ्ग तक जली हुई मिट्टी की तरह हो गया है । मैदानों की दूब और घास भी मानों झुलस गई है । अच्छे बलवान् आदमी भी अनेक स्थानों में, इसी आँधी के बीच में पड़कर, मर गये हैं ; और बहुत से बच्चे, बालक, गर्भवती स्त्रियाँ तथा बुड्ढे तक इस आँधी के चक्कर में पड़कर साफ़ बेदाग़ बच गये हैं । समझ में नहीं आता कि चन्द मिनिटों की आँधी से किस प्रकार यह सब उलट-पलट हो गया । यह मानना

ही पड़ता है कि भगवान् की इच्छा से जड़शक्ति के साथ चैतन्य के मिलने पर उसके द्वारा सर्वथा असम्भव काम भी सम्भव हो जाता है। किन्तु देव-देवी या भूत-प्रेत आदि का तो मैं अस्तित्व ही नहीं मानता, अतएव इन घटनाओं को मैं उनका कोई कार्य नहीं समझ सकता।

ब्रह्मचारीजी का सत्सङ्ग। विचित्र जीवन-कथा, अज्ञात भूगोल का वृत्तान्त

ढाका ज़िले के अन्तर्गत बारोदी गाँव में बहुत समय से जो महापुरुष गुप्त रूप से रहते हैं उन्हें सभी लोग अब 'बारोदी के ब्रह्मचारी' कहते हैं। गोस्वामीजी के मुँह से कई बार इन महापुरुष के अद्भुत योगैश्वर्य और असाधारण महत्त्व की बातें सुनी हैं। गोस्वामीजी ने कहा है—**"बहुत से देशों की यात्रा करने और बहुत से पहाड़ों में घूमने-फिरने पर भी ऐसी उच्च अवस्था के एक भी महापुरुष के दर्शन नहीं हुए। समूचे भारत में इस समय इस कोटि का एक भी पुरुष नहीं है।"** गोस्वामीजी के बहुतेरे शिष्य कई बार बारोदी हो आये हैं। ढाका और विक्रमपुर के अनेक प्रतिष्ठित शिक्षित लोग ब्रह्मचारीजी की अलौकिक शक्ति का परिचय पाकर दङ्ग हो चुके हैं। समूचे ढाका और पूर्वी बङ्गाल में ब्रह्मचारीजी की ही चर्चा है। बातों ही बातों में एक दिन गोस्वामीजी ने मुझसे भी कहा था—**"ब्रह्मचारीजी की पलकें नहीं गिरतीं। पाँच मिनिट तक लगातार उनकी आँखों की ओर देखते रहने से मूर्च्छित होकर गिर पड़ोगे। हिमालय और तिब्बत आदि से प्राचीन योगी लोग योग सीखने के लिए रात को इन ब्रह्मचारीजी के पास आते हैं। इसलिए रात को कोई उस घर में नहीं जाने पाता। वे दिन डूबने के बाद ही घर का दरवाज़ा बन्द कर देते हैं।"**

मैंने पूछा था—तो मैं क्या एक बार उनके दर्शन कर आऊँ?

गोस्वामीजी—**हाँ हाँ, ज़रूर जाना। जाने से लाभ होगा। वहाँ जाकर अपनी ओर से उनसे कुछ पूछ-ताछ मत करना। चुपचाप ज़रा अन्तर पर बैठे रहना। तुम्हारे लिए जो कुछ आवश्यक होगा वह वे स्वयं, तुम्हें बुलाकर, कह देंगे।**

गोस्वामीजी की बातों से मुझे ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने की प्रबल इच्छा हुई है। बहुत दिनों के बाद बड़े दादा (श्रीयुक्त हरकान्त वन्द्योपाध्याय) घर आये हैं; छुट्टी होने से मँझले दादा और छोटे दादा भी घर ही पर हैं। बड़े दादा प्रायः हर वक़्त मेरे साथ

धर्मसम्बन्धी बातचीत किया करते हैं। बातचीत के सिलसिले में मौक़ा मिलते ही मैं उनसे गोस्वामीजी के असाधारण धर्मजीवन की बात कहता हूँ। गोस्वामीजी की सत्यनिष्ठा, दया और सरलता के उदाहरण सुनकर दादा बहुत ही प्रसन्न होते हैं। उस समय मैं भी गोस्वामीजी से दीक्षा ले लेने का उनसे अनुरोध करता हूँ; वास्तविक धर्मजीवन को प्राप्त करने के लिए दीक्षा ले लेना परम आवश्यक है; किन्तु दादा गोस्वामीजी की इस बात को नहीं मानते। बचपन से ही वे केशव बाबू पर विशेष रूप से अनुरक्त हैं। वे केशव बाबू को गोस्वामीजी की अपेक्षा बहुत बड़ा समझते हैं। दादा यही जानते हैं कि केशव बाबू ने कभी दीक्षा ली ही नहीं; अतएव उनके दृष्टान्त से दादा यही समझे बैठे हैं कि गुरु का आश्रय लिये बिना भी पुरुषकार द्वारा धर्मजीवन प्राप्त कर लिया जाता है। मैंने सोचा कि किसी प्रकार दादा को एक बार बारोदी में ले जाने से ही काम हो जायगा। ब्रह्मचारीजी यदि एक बार दीक्षा लेने की आवश्यकता पर कुछ कहेंगे तो उसपर दादा को विश्वास हो जायगा। श्रीयुक्त ताराकान्त गंगोपाध्यायजी हमारे ही गाँव के रहनेवाले हैं, दादा की हमजोली के हैं और उनके घनिष्ठ मित्र भी हैं। उनसे सिफ़ारिश कराके मैंने दादा को बारोदी जाने के लिए राजी करा लिया। निश्चय हो गया कि हम लोग बहुत जल्द बारोदी जायँगे।

रात के पिछले पहर, अर्धनिद्रित अवस्था में, मैंने एक विचित्र स्वप्न देखा। आज जागृत अवस्था में भी प्रत्यक्ष सत्य घटना की भाँति लगातार यह स्वप्न मुझे याद आ रहा है। इस स्वप्न में मुझे ब्रह्मचारीजी के स्पष्ट दर्शन हो गये। मुझे निश्चयपूर्वक जान पड़ता है कि मैंने इस स्वप्न में जिन विचित्र घटनाओं को देखा है उनके साथ मेरे जीवन का विशेष सम्बन्ध है। गोस्वामीजी से उसका तात्पर्य पूछे बिना उसको डायरी में चढ़ाने की इच्छा नहीं है।

वैशाख शुक्ला २, रविवार, सं० १९४५

सबेरे खा-पीकर बड़े दादा, मँझले दादा, ताराकान्त दादा और मैं, सभी बारोदी के लिए रवाना हुए। दादा बहुत मोटे हैं, ४।५ मिनिट चलने से ही वे हाँफने लगते हैं। तालतला तक डेढ़ घण्टा रास्ता चलने से उनकी मोटी जाँघों में, रगड़ खाते-खाते, फफोले पड़कर घाव हो गया। पैदल जाकर ही साधु के दर्शन करेंगे, उनकी इस ज़िद के कारण ही यह उपद्रव हुआ। तालतला से नाव करके चले तो दिन डूबने से तनिक पहले हम लोग बारोदी के बाज़ार में पहुँचे। सभी जानते हैं कि सन्ध्या होने के बाद ही ब्रह्मचारीजी का दरवाज़ा
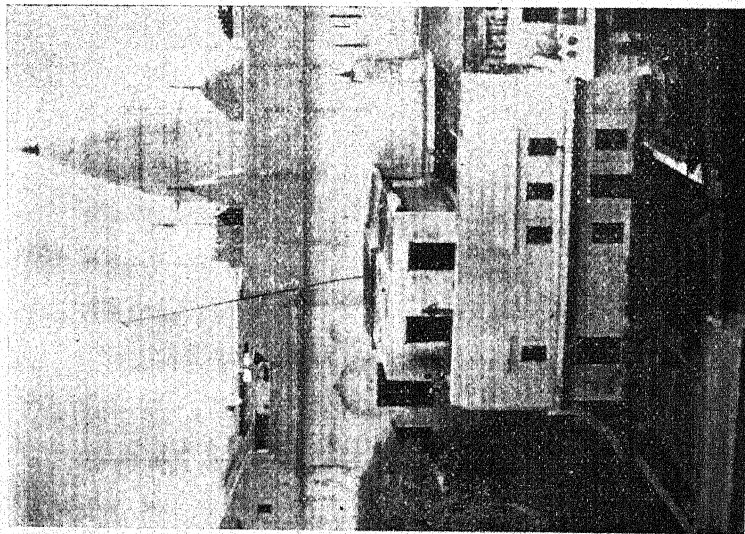
गढ़ी
अयोध्यार हनुमान्गौरेर मन्दिर

श्रीश्रीधरचन्द्र घोष
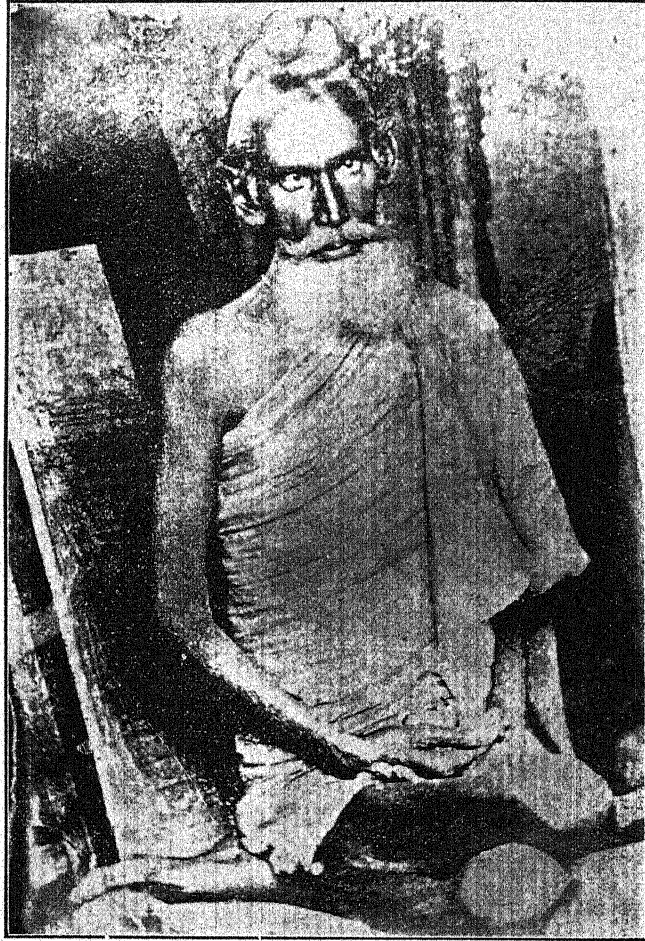
श्रीश्रीवारद्दि ब्रह्मचारी

बन्द हो जाता है। किन्तु चित्त के आवेग के कारण दादा रात को ही दर्शन करने के लिए जाने को उतावले हो गये। सब लोग चले गये; मेरी इच्छा नहीं हुई, इससे मैं नाव पर ही रह गया। थोड़ी देर में उन लोगों ने वापस आकर कहा कि दर्शन हो गये। उन लोगों के पहुँचते ही ब्रह्मचारीजी ने कहा—"तुम लोगों के लिए ही मैंने इतनी रात तक दरवाजा बन्द नहीं किया है; अब जाकर आराम करो, कल आना।" बस, उन्होंने सबको नाव पर भेजकर किवाड़ लगा लिये।

वैशाख शुक्ला ३, सोमवार, सं १९४६

सबेरे नहा-धोकर हम लोग ब्रह्मचारीजी के आश्रम में पहुँचे। बरामदे के सामने पहुँचते ही ब्रह्मचारीजी ने आकर दादा का हाथ थाम लिया और अपने आसन की दाहनी ओर ले जाकर बैठा दिया। उन्होंने दादा से कहा—"तुम तो महापुरुष हो। नक़ली वेष में, बाबू बनकर, मेरे पास आये हो।" दादा ने कहा—"मैं तो सदा इसी लिबास में रहता हूँ।" अब देर तक दादा के साथ अनेक प्रकार की बातें होती रहीं। दादा की अवस्था का ब्योरा सुनकर उन्होंने सन्तोष प्रकट करके कहा—"मैं देखता हूँ कि तुम्हारा कर्म प्रायः पूरा होने पर आ गया है। फिर तुम मेरे दर्शन करने आये हो? दस वर्ष के बाद सैकड़ों आदमी तुम्हारे ही दर्शन करके धन्य-धन्य होंगे।" दादा ने कहा—"आप बतला दीजिए कि मेरा वास्तविक भला क्या करने से होगा।" ब्रह्मचारीजी ने कहा—"तो जाकर गोस्वामीजी से दीक्षा ले लो। उन्हीं के पास सत्य-वस्तु है। वे आश्रय दे देंगे तो बहुत जल्द कल्याण की प्राप्ति हो जायगी।" ब्रह्मचारीजी ने और भी बहुत सी बातें कहीं; किन्तु ये थोड़ी सी बातें मुझे पसन्द आईं इसलिए इन्हें यहाँ लिख लिया है। मँझले दादा से भी बहुत बातें कीं, उनमें यही बात विशेष रूप से कही—"धन कमाओ, और बेलाग रहकर उसे लोगों की सेवा में खर्च करो।" जब सब से बातचीत कर चुके तब मुझे बुलाकर कहा—"अरे तू किसलिए आया है? देवता के दर्शन करने आया है?" मैं बरामदे में चुपचाप यह निश्चय किये स्थिर बैठा था कि मैं एक भी बात न कहूँगा। ब्रह्मचारीजी का प्रश्न सुनकर मैंने सिर हिलाकर बतला दिया 'नहीं'। ब्रह्मचारीजी ने मुझे घूँसा दिखलाकर धमकाते हुए कहा—"सिर हिलाता है! खोपड़ी फोड़ दूँगा! मुँह से बोल!" अब ब्रह्मचारीजी ने मुझे अपने आसन के बगल में बैठने को कहा। मैं घर में जा बैठा। ब्रह्मचारीजी ने मुझे बहुत उपदेश देकर अन्त में कहा—"अरे तू तो प्रतिदिन

'नोट' न लिखता है ? (ब्रह्मचारीजी को यह कैसे मालूम हो गया, सोचने से मुझे अचरज हुआ।) उसमें अपने सम्बन्ध में मेरी दो बातें लिख रखना—'विलासिता को छोड़ दे ! विद्या न आवेगी।' बतला तो, मेरी इन बातों का मतलब तूने क्या समझा ?" मैंने कहा—'सभी प्रकार का सुख-भोग छोड़ देने के लिए आपने कहा है; ऐसा करने से ही धर्म में मन लगेगा और वैसा होने से लिखना-पढ़ना छूट जायगा।' ब्रह्मचारीजी ने फिर धमकाकर कहा—"मूर्ख ! तो क्या मैंने यही कहा है ? क्या तू नहीं जानता कि विद्या किसे कहते हैं और अविद्या किसे ? लिखेगा-पढ़ेगा क्यों नहीं ? जाकर लिखने-पढ़ने में खूब मन लगा। लिखेगा-पढ़ेगा तो पास हो जायगा। विलासिता न करना। पोशाक न पहनना। बस, धोती पहनना और चदरा ओढ़ना। जूता पहनने की ज़रूरत नहीं। मामूली एक जोड़ी चट्टी जूता रखना चाहे तो रख। कमीज़ वग़ैरह मत पहनना। मन में विकार होने पर यहाँ आकर उपदेश ले जाना। हमें चिट्ठी लिखना। धर्म-कर्म सब होगा। घबराना मत। कुछ डर नहीं है। एक दर्द से तुझे बहुत तकलीफ़ हुआ करती है, क्यों ? पास आ—मैं तेरी छाती पर हाथ फेर दूँ, अभी दर्द हट जायगा।" मैंने कहा—'मैं इसलिए नहीं आया हूँ कि आप मेरा रोग हटा दें। मैं तो आपके दर्शन करने आया हूँ। मैंने स्वप्न में आपको बिलकुल ऐसा ही देखा था।'

ब्रह्मचारीजी—"तो स्वप्न का विवरण बतला न ?" मैंने बतला दिया। सुनकर उन्होंने कहा—"स्वप्न को लिख रखना। तेरा रास्ता तो तुझे मैंने स्वप्न में ही दिखला दिया है। बतला तो, तूने हमसे बात-चीत क्यों नहीं की थी ?" मैंने कहा—'गोस्वामीजी ने मुझसे कह दिया था कि तेरे लिए भविष्यत् में जो कुछ आवश्यक होगा वह सब वे अपने-आप तुझे बुलाकर कह देंगे। उन्होंने आप से पूछ-ताछ करने के लिए मुझे रोक दिया था; इसी से मैं चुप था।' ब्रह्मचारीजी ने इसके बाद कहा—"अच्छा, तो अपनी सब बातें तुझे मिल गईं न ?" मैंने 'हाँ' कहा। ब्रह्मचारीजी—"तो जा। स्वप्न को 'नोट' में लिख रखना। दर्द तो तेरे भाग्य का है। हाथ फेर देने से हट ज़रूर जाता; किन्तु फिर कभी तो उसे भोगना ही पड़ता। दवा-अवा कुछ मत खाना; उससे और भी बढ़ जायगा। भोगफल पूरा होने पर अपने आप टल जायगा। (दादा को दिखलाकर) इन लोगों की दवा से कुछ लाभ न होगा। दर्द जब सहा न जावे तब ताज़ा मिट्टी मल लेना; उसका

असर कम हो जायगा।'' मैं उनको प्रणाम करके बरामदे में आ बैठा। दोपहर को खाने-पीने से छुट्टी पाकर फिर हम लोग ब्रह्मचारीजी के पास गये। उन्होंने अपने जीवन की बहुत सी बातें बतलाईं। जितनी याद हैं उन्हें लिखे लेता हूँ।

ब्रह्मचारीजी ने कहा—उनका जन्म शान्तिपुर के विशुद्ध 'अद्वैत-वंश' में हुआ है। गोस्वामीजी के पड़बाबा के वे सगे भाई थे। वे अपने जीवन के सम्बन्ध में कहने लगे—'हम चार भाई थे, इसलिए हमारे माँ-बाप ने मुझे, जनेऊ होने के बाद ही, एक षट्चक्रभेदी संन्यासी को सौंप दिया। वे मुझे दीक्षा देकर साधन की शिक्षा देने लगे; और बड़ी सावधानी से मुझे सदा अपने साथ लेकर तीर्थ-भ्रमण करने लगे। इस प्रकार कई वर्ष बीत गये। युवावस्था आने पर धीरे-धीरे मैं दुर्वार 'काम' आदि की उत्तेजना से बेचैन रहने लगा, तब गुरुजी मुझे साथ ले जाकर किसी पहाड़ के समीप एक गाँव में जाकर कुटिया में रहने लगे। भाग्य की बात है, पड़ोस में ही एक विधवा सुन्दरी युवती रहती थी। गुरुजी भिक्षा माँगकर बढ़िया सामान लाते और निर्दिष्ट समय पर प्रतिदिन रसोईं बनाकर मुझे भोजन कराते थे, फिर कुटिया सूनी छोड़कर वे दिन भर इधर-उधर बिचरते रहते थे। मैं बेखटके होकर अनेक प्रकार से उस युवती के साथ मौज करने लगा। इसी प्रकार कोई तीन वर्ष बीत गये। इधर धीरे-धीरे मेरी लालसा भी घटने लगी। इसी समय अकस्मात् एक दिन मैंने सोचा कि 'यह क्या कर रहा हूँ? क्या सदा यही करते रहने के लिए मैं माता-पिता को छोड़-छाड़कर महापुरुष के साथ आया हूँ?' अब मेरे मन में बड़ी जलन होने लगी। मैं किसी दूसरी जगह चलने के लिए गुरुजी से बार-बार अनुरोध करने लगा। कुछ दिनों तक उन्होंने मेरी बात पर ध्यान ही नहीं दिया। फिर 'आज चलेंगे, कल चलेंगे' कहकर समय को टालने लगे। धीरे-धीरे मेरी भी बेचैनी बढ़ने लगी। जब मैंने स्थान छोड़ देने के लिए गुरुजी से हठ किया तब उन्होंने बीमारी का बहाना बनाया। भीतर की जलन को सहने में असमर्थ होने से पागल-सा होकर एक दिन मैंने गुरुजी से कहा—'अब मैं यहाँ एक दिन भी नहीं ठहरूँगा।' गुरुजी ने कहा—'मेरी तबीअत बहुत खराब है। दो दिन और रुके रहो।' तब मैं डण्डा लेकर उनकी ओर झपटा; कहा—"कुटिया छोड़कर दिन भर घूम-फिर सकते हो, प्रतिदिन भीख माँग लाकर रसोई बना सकते और मुझे खिला-पिला सकते हो, उस समय तुम्हारी तबीअत ठीक बनी रहती है और यहाँ से चलने को कहते ही तुम बीमार हो जाते हो! आज तुम्हें भी

जिन्दा न रहने दूँगा और खुद भी अपनी जान दे दूँगा।" गुरुजी वहाँ से भाग गये। फिर वापस आकर कहा—"चलो, अब मैं चङ्गा हो गया।"

रास्ता चलते-चलते मैंने गुरुजी से कहा—'इतने दिन तक तो मेरी बात की परवा ही नहीं की और आज एकदम राजी कैसे हो गये?' गुरुजी ने उत्तर दिया—'अब तक तो बेटा इस तरह तूने कहा नहीं था। तुमने भोग को छोड़ दिया था, किन्तु भोग ने तो तुम्हें छोड़ा न था, आज छोड़ा है।'

इसके बाद किसी निर्जन पहाड़ पर ले जाकर पैंतीस वर्ष तक गुरुजी ने मुझे हठयोग का अभ्यास कराया। राजयोग सीखने के लिए उतावले होने पर गुरुजी ने मेरे हठयोग की परीक्षा ली; कहा—"अपने घुटनों के बीच हंडी को दबाये रखकर उसमें मिठाई बनाकर मुझे खिलाना होगा। मैंने वैसा ही कर दिया। इसके बाद राजयोग का उपदेश देना आरम्भ किया। इस राजयोग में कृती होने में बहुत समय लगा। इसके बाद गुरुजी अन्तर्द्धान हो गये। मैंने पूछा—'आप तो एक बार उदयाचल गये थे न?' ब्रह्मचारीजी ने कहा—"कोशिश की थी, किन्तु पहुँच नहीं सका। मेरे साथ तीन व्यक्ति और भी थे—हितलाल मिश्र (तैलङ्ग स्वामी), वेणीमाधव गङ्गोपाध्याय नाम के एक महात्मा और अब्दुल ग़फ़ूर नामक एक फ़क़ीर। सूर्य्यलोक में पहुँचने का सङ्कल्प करके हम लोग पैदल चलने लगे। हिमालय के ऊपर होकर हम लोग क्रमशः उत्तर ओर जाने लगे। हम लोग सिर्फ़ फल-मूल खा लेते थे। बर्फ़ के ऊपर होकर इस प्रकार लगातार बहुत दिनों तक चलते-चलते देह की चमड़ी एक प्रकार से खुरदरी हो गई। फिर जिस प्रकार साँप की केंचुल होती है उसी प्रकार हम लोगों के बदन पर भी केंचुल सी हो गई। अब शरीर का रङ्ग दूध की तरह सफ़ेद हो गया। बर्फ़ की ठण्ड देह में न व्यापती थी। जहाँ पर छः मास का दिन और इतनी ही रात होती है वहाँ से हम लोग बहुत आगे बढ़ गये। वहाँ पर यहाँ की तरह न तो दिन-रात होता है और न चन्द्र-सूर्य ही हैं।

प्रश्न—वैसे स्थान में आप कितने समय तक चलते रहे?

ब्रह्मचारीजी—जहाँ न तो चन्द्र-सूर्य हैं और न दिन-रात ही होता है वहाँ के समय अथवा वर्ष का हिसाब किस तरह मालूम करूँगा? इतना ही कह सकता हूँ कि बहुत समय तक चलना पड़ा था।

प्रश्न—चन्द्र-सूर्य तो थे नहीं, फिर रास्ता किस प्रकार देख पड़ता था ?

ब्रह्मचारीजी—उन स्थानों में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये त्यों-त्यों आँखों का उपादान ही दूसरे ढङ्ग का हो गया। चन्द्र-सूर्य का प्रकाश न रहने पर भी आँखों से सब कुछ देख लेता था।

प्रश्न—तो आप लोग क्या उदयाचल पर चढ़े थे ?

ब्रह्मचारीजी—हाँ, हम सभी चढ़े थे। वेणीमाधव अधिक दूर तक नहीं चढ़ सके। अब्दुल ग़फ़ूर बहुत दूर तक चढ़कर लौट आये। यही हाल मेरा हुआ। मालूम नहीं, हितलाल मिश्र कितनी दूर तक चढ़े थे। उन्हें भी उतर आना पड़ा।

प्रश्न—चढ़कर क्यों नहीं जा सके ?

ब्रह्मचारीजी—ऊपर की ओर हवा लगातार पतली है। मैं जहाँ पर चढ़ा था वहाँ की हवा बहुत ही हलकी है, स्थिर है; वहाँ पर हवा की लहरें नहीं हैं। इसीसे श्वास-प्रश्वास नहीं चलता। सुना कि हितलाल मिश्र और थोड़े ऊपर चढ़कर, हवा न मिलने से, उतर आये।

प्रश्न—वे महात्मा लोग इस समय कहाँ हैं ?

ब्रह्मचारीजी—अब्दुल ग़फ़ूर मक्का को चले गये। वे अभी तक ज़िन्दा हैं। वेणीमाधव चन्द्रनाथ के पहाड़ पर गये थे। मैं नीचे उतरकर दो बार मक्का और एशिया-यूरप के बहुत से स्थानों की सैर करके चन्द्रनाथ जाना चाहता था; किन्तु रास्ते में पुलिस ने पकड़ लिया। उसके बाद से यहाँ हूँ।

प्रश्न—आपको पुलिस ने क्यों पकड़ लिया था ?

ब्रह्मचारीजी—कामाख्या (गोहाटी) शहर के मैजिस्ट्रेट ने कुछ साधुओं की जटाओं के भीतर रुपये और अशर्फ़ियाँ पाकर, चोर समझ कर, उन्हें जेल में क़ैद कर दिया। जटाधारी को पाते ही गिरफ़्तार कर लेने का पुलिस को हुक्म हो गया। मेरे जटाएँ थीं, इसलिए मुझे भी पकड़ लिया। साहब ने मुझसे बहुत से सवाल किये, मैं जवाब नहीं दे सका। मुद्दत तक निरी शाक-सब्ज़ी खाते-खाते और बहुत समय तक निराहार रहने से जीभ की हालत कुछ और ही हो गई थी, बातचीत करने की शक्ति नहीं थी, फलतः मैं कुछ बोल न सकता था। मैजिस्ट्रेट साहब की ओर तनिक देखते ही उनको भक्ति हो गई—मुझे छोड़ देने का हुक्म दे दिया। मैंने इशारे से जतलाया कि अन्यान्य साधुओं को रिहा न किया जायगा तो मैं भी जेल में से न जाऊँगा। साहब को दया आ गई। उन्होंने मुझे सन्तुष्ट करने के लिए सभी को रिहा कर दिया।

फिर हम सब लोग चन्द्रनाथ के लिए रवाना हुए। यहाँ का एक भला मानुस रास्ते में मेरी बहुत सेवा करने लगा। वही मुझे रास्ते से घुमाकर बारोदी में ले आया है। मैं यहाँ आकर, साधारण मनुष्य की भाँति, पागल सा बना रहता था। एक दस-बारह साल की लड़की नित्य मेरे खाने को कुछ-कुछ दे जाती थी, मैं उसमें से कुछ भी न खा सकता था। फिर उसी लड़की ने थोड़ा-थोड़ा दूध, उसके बाद मोहनभोग और फिर धीरे-धीरे और भी कड़ी चीजें खिलाना आरंभ कर दिया। इसी समय देखा कि मेरे शरीर के रक्त का रङ्ग लाल हो रहा है—अब तक घास के रस की सी रङ्गत थी। धीरे-धीरे बात-चीत करना भी आया। इसके बाद प्रारब्ध कर्म को बेबाक करने के लिए बहुत कुछ किया है। "नाश्ता" करके मुसलमान किसानों के साथ खेत पर जाकर खेत को निराया है; कन्धे पर बाँस रक्खे हुए सारी रात जाग-जाग कर सूअरों को भगाया है। मैंने बहुत सा समय इसी तरह बिता दिया; किसी को मेरा परिचय नहीं मिला। अन्त में जीवनकृष्ण ही, महापुरुष के नाम से, मेरी प्रसिद्धि करके सत्यानाश करने का उपाय कर रहा है। अब दिन-रात यहाँ पर भीड़ लगी रहती है। तनिक भी चैन नहीं लेने पाता हूँ।

मँझले दादा (श्रीयुक्त वरदाकान्त वन्द्योपाध्याय) ने पूछा—"तो मैं क्या किया करूँ ?" ब्रह्मचारीजी ने कहा—"पूजा किया करो।" प्रश्न—"किसकी पूजा ?" ब्रह्मचारीजी ने उँगली से एक वृत्त अङ्कित करके कहा—"इसकी, समझ गये ?" मँझले दादा—"नहीं; क्या शालग्राम की ?" ब्रह्मचारीजी—"नहीं; रुपये की, रुपये की। रुपया पैदा करो और भोग करके कर्म को बेबाक कर दो।" मँझले दादा ने इसका उत्तर दिया—"हमने तो पढ़ा है 'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते"। यह सुनकर ब्रह्मचारीजी ने तनिक मुसकुरा कर कहा—"अच्छा, इसको अपनी बोली में तो कहो।" मँझले दादा—"काम्य वस्तु का उपभोग करने से काम का कभी उपशम नहीं होता; घी डालने से जैसे आग और भी भड़क उठती है वही हाल इसका होता है।" ब्रह्मचारीजी ने कहा—"मैंने तो भोग करके ही कर्म को बेबाक करने के लिए कहा है, उपभोग करने का तो मैंने नाम ही नहीं लिया। भोग और उपभोग में अन्तर है, जैसे पति और उपपति में! जो स्वेच्छाचार से किया जाता है वह उपभोग है, उससे शान्ति नहीं होती; वह तो विधिपूर्वक भोग से प्राप्त होती है।" मैंने पूछा—पृथिवी के सिवा अन्यान्य लोकों में मनुष्य के जाने-आने के लिए क्या कोई रास्ता है ?

ब्रह्मचारीजी—"बिना रास्ते के उन सब स्थानों में लोग आये-गये किस प्रकार ? वहाँ गये-आये और देखे-सुने बिना उन लोकों के सम्बन्ध में इतना साफ़-साफ़ कहा ही किस तरह ? भिन्न-भिन्न समय में बहुतसे ऋषि-मुनि एक ही ढँग की तो बातें कह गये हैं। कौन सा लोक कैसा है; कितना लम्बा-चौड़ा है; किस लोक में कितने पहाड़ और नदी-नद हैं, सब बता गये हैं; और तो क्या बड़े-बड़े महलों तक का वर्णन मौजूद है। उन स्थानों के निवासियों की सूरत-शकल, स्वभाव, उनके काम-काज आदि का वर्णन विस्तृत रूप से लिख गये हैं। ब्रह्माण्ड के भीतर सर्वत्र जाने-आने के लिए साफ़ रास्ता है। बहुत सी मणियाँ जिस प्रकार एक धागे में, माला के आकार में, पिरोई हुई रहती हैं उसी प्रकार भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य प्रभृति ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सभी लोक एक के बाद एक जँजीर में गुथे हुए की तरह हैं। लेकिन प्रत्येक शरीर से ही सब स्थानों में जाना-आना नहीं हो सकता। स्थान और मार्ग के उपयुक्त देह को कर लेना पड़ता है; नहीं तो काम नहीं होता।" पूछा—"यह उपयुक्त देह किस तरह की जाती है?"

ब्रह्मचारीजी—योगाभ्यास द्वारा। योग-क्रिया से मनुष्य इच्छानुरूप देह धारण कर सकता है। उन स्थानों में जाने के लिए कहीं तो पानी में घुसने लायक़ देह आवश्यक होती है, कहीं वायवीय देह आवश्यक होती है और कहीं तैजस देह का प्रयोजन होता है।

प्रश्न—तो क्या उक्त देहों में रक्त, मांस, हड्डी, मज्जा आदि नहीं होता?

ब्रह्मचारीजी—रहता क्यों नहीं? उस देह के प्रधान भूतों के अनुरूप सब कुछ रहता है।

प्रश्न—हम लोग तो इस पृथिवी के सभी स्थानों में नहीं जा सकते।

ब्रह्मचारीजी—पृथिवी तो दूर की बात है, तू तो भारतवर्ष के सभी स्थानों में नहीं जा सकता। पाश्चात्य भूगोल पढ़कर, उसके संस्कार के अनुसार, पृथिवी को तुम लोगों ने बहुत छोटा कर डाला है। पृथिवी तो सप्तद्वीपवती है। उसके एक द्वीप तक का पूरा-पूरा पता तो कोई जानता नहीं। एक-एक द्वीप में सात-सात वर्ष हैं, उस पर अब तक किसी को विश्वास नहीं होता। जम्बूद्वीप के जो सात वर्ष हैं उनका एक यह भारतवर्ष है। इसी को तुम लोग पृथिवी जानते हो। लाल सागर, काला सागर, यवद्वीप, सुवर्णद्वीप, चीन, फ़ारस, अरब आदि सभी तो प्राचीन भूगोल के अनुसार एक भारतवर्ष के अन्तर्गत हैं। भारतवर्ष के बाद जो किम्पुरुषवर्ष है उसी का तो आज तक किसी को कुछ पता नहीं लगा। वहाँवालों का मुँह घोड़े का जैसा है। वहाँ का विवरण कितने आदमी आकर बता सके हैं?

मैं—जहाज पर सवार होकर मनुष्य गोल पृथिवी की तो सैकड़ों बार परिक्रमा कर चुका है। उन लोगों ने तो यह कुछ भी नहीं देखा।

ब्रह्मचारीजी—ओफ़! अरे पृथिवी को गोल कौन कहता है? उन स्थानों में जहाज लेकर जावेगा किस तरह? पूर्व-पश्चिम ही गोल है, इसी से चक्कर पूरा हो जाता है। उत्तर-दक्षिण का भला किसी ने पार पाया है? उन दोनों दिशाओं की खबर कोई बतला सकता है?

प्रश्न—तो क्या यह पृथिवी गोल नहीं है?

ब्रह्मचारीजी—गोल है क्यों नहीं? पूर्व-पश्चिम में तो गोल है; किन्तु उत्तर-दक्षिण में, शंखाकार माला की तरह, एक के बाद एक सात हैं! पहले से दूसरा दुगना है, इसी प्रकार क्रम से बड़े हैं; ऐसे सातों को एक धागे में गूँथने से जैसा होता है, पृथिवी बहुत कुछ वैसी ही है। सात द्वीपों के बीच में लवण से घिरा हुआ द्वीप ही जम्बूद्वीप है। उसके आगे प्लक्षद्वीप है। इसके बाद सिलसिलेवार सातों एक दूसरे से जुटे हुए हैं। अब मनुष्य इन बातों पर विश्वास किस प्रकार करेगा? देखा तो है ही नहीं! किन्तु जिन्होंने देखा था वे द्वीप के अन्तर्गत पहाड़-पहाड़ी, नद-नदी आदि के परिमाण और विस्तार का विवरण साफ़-साफ़ लिख गये हैं।

ब्रह्मचारीजी के स्थान से बिदा होते समय दादा से उन्होंने दुबारा कहा कि गोस्वामी से दीक्षा ले लेना। अब दादा भी दीक्षा लेने के लिए उतावले होकर चटपट ढाका में गोस्वामीजी के पास जाने के लिए तैयार हो गये। हम लोग ढाका के लिए रवाना हो गये। किन्तु भगवान् की मर्जी समझ न सके। ढाका पहुँचने पर सुना कि गोस्वामीजी को कलकत्ता गये २-३ दिन हो गये। दादा की छुट्टी क़रीब-क़रीब पूरी हो चुकी है।

हम लोग घर लौट गये। दादा की छुट्टी का समय बीत गया। वे अपनी नौकरी पर अयोध्याजी चले गये। दीक्षा नहीं ली जा सकी।

मेरी दैहिक दुरवस्था और मानसिक दुर्गति

कफाश्रित वायु और पित्तशूल की बीमारी के इलाज के लिए मैं घर पर बहुत दिनों तक रहा। घर पर अच्छे वैद्य को रखकर सोना, चाँदी, मोती आदि को रीति के अनुसार जारित करवा के क़ीमती दवाइयाँ बनवाई। 'बृहत् विद्याधराभ्र', 'बृहत् वातचिन्तामणि', 'धात्रीलौह', 'नारदीय महालक्ष्मीविलास' और 'त्रैलोक्य-चिन्तामणि' आदि बटिका तथा 'महाचैतसादि घृत'

का लगातार बहुत दिनों तक सेवन और उपयोग किया; 'कुब्ज-प्रसारिणी', 'शूलगजेन्द्र', 'त्रिसुतिप्रसारिणी'; 'पुष्पराजप्रसारिणी' आदि तेलों का भी काफ़ी प्रयोग कर देखा। किन्तु रोग में तनिक भी अन्तर न पड़ा; वह तो उलटा बढ़ने लगा। कठिनाई से सही जाने योग्य रोग की यन्त्रणा बढ़ने के साथ-साथ चित्त की स्थिरता और प्रफुल्लता भी धीरे-धीरे कम होने लगी और शायद तेजस्क ओषधियों का सेवन करने तथा लगातार तैल आदि की मालिश होते रहने से इस समय अपने शारीरिक निस्तेज रिपुओं के दुबारा आविर्भाव का मुझे बीच-बीच में अनुभव होने लगा। किन्तु साधन-भजन में कभी-कभी विशेषता मिलती रहने से उक्त दुरवस्थाओं की मैं कुछ परवा न करता था। सोचा कि शत्रुओं का दमन कर लेना तो चाहे जिस अवस्था में मेरे वश की बात है। अपने ऊपर इस तरह बेहद विश्वास होने से साधारण विधि-निषेध में भी मैं सुस्ती करने लगा। आगे दो घटनाओं ने क्रम से मुझे बिलकुल रसातल में डुबा देने का उद्योग किया। दोनों घटनाएँ ये हैं:—

मेरे मकान के समीप ही छोटी जाति की एक ऐसी वैष्णवी रहती है जिसका पेशा भीख माँगना है। उसने दो पैसे कमाने के लिए सोलह साल की एक युवती को अपने घर में लाकर रक्खा है। किसी मालदार युवक ने उसे अपनी 'रक्षिता' बना लिया है। मुहल्ले में ही इस तरह वेश्या के रहने की ख़बर पाकर मेरा जी जल उठा; मैं तुरन्त एक बलवान् सर्दार (लठैत) को साथ लेकर उनके दाँत खट्टे करने के लिए तैयार हो गया। मैंने सर्दार से कह दिया कि इशारा पाते ही तुम लाठी मार-मारकर उन दोनों के पैर तोड़ देना। अब दिन डूबने के बाद ही मैं उस घर में घुसा। सर्दार तनिक ओट में रह गया। मेरे पहुँचते ही वह वैष्णवी उस युवती को मानों कुछ इशारा देकर वहाँ से खिसक गई। मैं बाबू की प्रतीक्षा में बाहर बैठ गया। अब उस युवती ने धीरे-धीरे आकर मुझसे दिल्लगी करना आरंभ कर दिया। यह देखने के लिए कि नौबत कहाँ तक पहुँचती है, मैं उसकी बात-चीत में 'हाँ-हूँ' करने लगा। मैंने मन में निश्चय कर लिया कि किसी प्रकार का कुभाव प्रकट करते ही मैं सर्दार को पुकार कर इसकी ऐसी मरम्मत करा दूँगा कि हड्डी-पसली एक हो जायगी। वह अनेक प्रकार के हाव-भाव करके अपनी देह की सुन्दरता दिखाने लगी। फिर धीरे-धीरे दो-एक क़दम आगे बढ़कर उसने मुझे पकड़ लिया। अब वह मुझे सहज ही खींचकर अपनी कोठरी की ओर ले चली। उसका स्पर्श होते ही मेरी सारी तेजस्विता—विवेकबुद्धि तक—विलुप्त हो गई। मन एकाएक बहुत ही चञ्चल हो

उठा। फिर उसकी कोठरी के दरवाज़े तक जाकर मैं गिड़गिड़ाकर उसकी खुशामद करने लगा कि 'आज तो मुझे जाने दो, मैं कल आ जाऊँगा।' तब कहीं उसने मुझे छोड़ा। मैं छुटकारा पाते ही बेदम दौड़ता हुआ मैदान में कुछ दूर पर पहूँचा था कि पछाड़ खाकर गिर पड़ा। पैर में बहुत ही चोट लगी। मुझे कन्धे पर बैठाकर सर्दार घर पहुँचा गया। दूसरे दिन सबेरे मैंने अपनी हमजोलीवालों को एकत्र करके तय किया कि रात को उसके घर में आग लगा देंगे। लोगों से वैष्णवी को यह बात मालूम हो गई। वह उसी दिन आकर मेरे पैरों पर गिर कर रोते-रोते बोली—"मुझे सिर्फ़ तीन दिन की मोहलत दीजिए, मैं इस गाँव में न रहूँगी।" आखिर वह गाँव छोड़कर चली गई।

इस घटना से मेरी मानसिक दशा दूसरे प्रकार की हो गई। यद्यपि उन दोनों को मैंने सख़्त-सुस्त बातें कहकर गाँव से खदेड़ दिया, फिर भी उस कुलटा के स्पर्श से मुझे जो सुख मिला था उसकी याद को मैं एक दिन के लिए भी अपने मन से नहीं हटा सका। इस प्रकार से युवती की देह का स्पर्श जिन्दगी भर में मुझे कभी नहीं हुआ। अब यह स्पर्श-सुख मुझे साधन-भजन से भी मधुर जान पड़ने लगा। उसकी भुजाओं से वेष्टित आलिङ्गन मेरे मन में सदा उदित होकर वर्तमान की भाँति मुझे उत्तेजित करने लगा। मैं साधन-भजन से दुचित्ता रहकर सदा वही कल्पना करने लगा। इसके सिवा एक और विषम प्रलोभन उपस्थित हुआ।

घर में हमारे यहाँ एक बिना माँ-बाप की, सयानी, कुलीन लड़की रहती है। उसके अभिभावकों ने इच्छा की कि उसे वर्तमान रुचि के अनुसार लिखा-पढ़ा दिया जायगा तो आगे चलकर उसके लिए अच्छा घर-वर मिलने में सुबीता होगा। मैं जब से घर आया हूँ तब से उन लोगों ने उसे पढ़ाने-लिखाने का काम मुझे सौंपा है। लड़की दिन भर घर का काम-काज बड़ी सुघड़ाई से किया करती थी, फिर भी समय निकालकर बड़ी श्रद्धा और सावधानी से मेरे रोग की सेवा करने लगी। दिन में तो उसे काम-काज में फँसे रहने से फ़ुरसत न मिलती थी, इसलिए रात को नव-दस बजे वह मुझसे पढ़ने को आने लगी। घरवालों के बेखटके सो जाने पर भी लड़की मेरे सूने कमरे में बिछौने के एक ओर बैठकर रात को बारह बजे तक लिखती-पढ़ती रहती थी। उसकी सेवा में श्रद्धा, गृहस्थी के काम-काज में चतुरता, लिखने-पढ़ने में उत्साह और चरित्र की दृढ़ता देखकर दिन-दिन मैं उसे बहुत अधिक चाहने लगा। उल्लिखित घटना के बाद से मेरी हालत शिकार को खो बैठे हुए कुत्ते की सी हो गई। अदम्य उत्तेजना के

मारे मैं बेचैन हो गया। इसी समय उस कुमारी के सौन्दर्य पर मेरा शिथिल चित्त दिन-पर-दिन लट्टू होने लगा। मैं बहुत बुरी हालत की आशङ्का करने लगा किन्तु मोहवश मैंने उसको अपने पास पढ़ने को आने की मनाही नहीं की। अनुकूल परिस्थिति मेरे अधीर चित्त को धीरे-धीरे और भी लुभाने लगी। उधर लड़की, मेरी मर्यादा की रक्षा किये हुए, मेरे उस भाव का अनादर करके मुझे सावधान करने लगी। अन्त में मुझे बिलकुल उतारू देखकर एक दिन वह मेरे पैरों पर गिरकर रोते-रोते कहने लगी—"आप मेरी परीक्षा क्यों करते हैं? इससे मैं बहुत ही डरती हूँ। आप योग-साधन करते हैं, आपका मन किसी हालत में डिग नहीं सकता; मेरी जाँच-पड़ताल करना ही आपका उद्देश्य है। यदि आप मेरी रक्षा न करेंगे तो बतलाइए कि इस दशा में मेरा बचाव किस तरह होगा।" उसकी साफ़-साफ़ बातें सुनकर मैं बड़ी मुशकिल में पड़ गया। एक ओर तो मेरे भीतर अदम्य उत्तेजना है, सामने मेरी मुट्ठी में सुन्दरी युवती मौजूद है; दूसरी ओर बाहर धार्मिकता का ढोंग है, यह वासना है कि सब लोग मुझे योग-साधक मानें; विशेषतः यह सोच-विचार है कि जो मुझे सदाचारी महान् साधु समझकर श्रद्धा करती है उसी के आगे मैं किस प्रकार अपनी मर्यादा को तोड़ूँ। इस दशा में पड़कर अपने सङ्कल्पित अध्यवसाय से बचने के लिए मैं जी-जान से कोशिश करने लगा। किन्तु प्रति-दिन, क्या सूने में और क्या औरों के आगे, उसके साथ सम्बन्ध बना रहने से मेरी वासना दिन-पर-दिन बढ़ती जाने लगी। अन्त में जब समझ लिया कि मेरे भीतर की आग धीरे-धीरे उसे उभाड़ रही है तब दूसरा उपाय न देखकर आबरू बचाने के लिए मैं घर छोड़कर ढाका भाग गया। सब ने समझा कि बीमारी बहुत कुछ हट गई है। मैं स्कूल में भर्ती हो गया।

अपने भीतर की दुरवस्था को छिपाये रहकर मैं गोस्वामीजी के पास आने-जाने लगा। एक दिन उन्होंने ध्यान की दशा में कहा--**"समय बड़ा बुरा है। योगावलम्बियों के भीतर जो ऐब छिपे हुए हैं वे सब प्रकट हो जायँगे।"** यह सुनकर मैं बहुत ही डर गया, बहुत ही सावधानी रखने लगा।

इस समय गोस्वामीजी कुछ दिनों के लिए कलकत्ता चले गये। इसी समय ढाका में उनके शिष्यों की अनेक प्रकार की दुर्दशा हो गई। आपस में लड़ाई-झगड़ा, शत्रुता, हाथा-पाई,—यहाँ तक कि चरित्र-हीनता और गुरुद्रोहिता तक होने लगी। यह सब देख-सुन कर मैं बड़ी सावधानी से, नई उमङ्ग के साथ, साधन करने लगा।

स्थिर चमकीले ज्योतिर्मण्डल के दर्शन

कुछ दिनों से, समय निर्द्धारित करके, मैं नियमित रूप से साधन-भजन करता आ रहा हूँ। रात के चौथे पहर, निर्दिष्ट समय पर, छत के ऊपर जाकर पूर्व की ओर मुँह करके आसन लगाकर बैठ जाता हूँ। पहले श्रीगुरुदेव को प्रणाम और एकाग्र मन से उनका स्मरण करके स्वप्न में मिले हुए मन्त्र को एक हज़ार बार जपता हूँ; इसके बाद प्राणायाम और इष्ट नाम का जप रीति के अनुसार घण्टे भर से ऊपर तक किया करता हूँ। ८।१० दिन हुए, एक दिन धीरे-धीरे मेरे माथे को कँपाकर एक अपूर्व ज्योति प्रकाशित हो गई है। इस अपूर्व ज्योति की मनोहर सुन्दरता के एक कण को भी भाषा के द्वारा प्रकट करते नहीं बनता। मालूम नहीं, इसे चन्द्र कहते हैं अथवा सूर्य। ललाट के भीतर अथवा बाहर— नीले आकाश में, बहुत दूरी पर, चन्द्र-सूर्य के आकार की स्निग्ध, बहुत ही चमकीली, सफ़ेद ज्योति को देखता हूँ! ज्योतिर्मण्डल के बीच में पतली सी तरङ्ग के आकार की झिलमिलाती हुई चमक को बीच-बीच में देखकर मुझे कुछ सुधि नहीं रहती। लगातार आठों पहर यह ज्योति मानों मेरी आँखों के आगे बनी रहती है। विचित्रता देखता हूँ। जहाँ तहाँ, चाहे जिस अवस्था में, सदा सब जगह, यह ज्योति एक ही रूप में चमकती है! आँखें खोले रहूँ या बन्द किये रहूँ, इस ज्योति के दर्शन एक ही से होते हैं। चन्द्रमा की किरण की तरह इस ज्योति की किरण ठण्डी और सफ़ेद है, बिजली के प्रकाश की तरह साफ़ है और उसकी अपेक्षा बहुत ही मनोहर और निर्मल है!

जिस समय पहले-पहल मुझे इसके दर्शन हुए थे उस समय मैं बिलकुल मुग्ध हो गया था। अब लगातार देखते रहने से आदत पड़ गई है। पहले-पहल यह ज्योति कुछ हिलती-डुलती देख पड़ती थी; अब चन्द्रमा की तरह स्थिर है। बहुत खोज करने पर भी मैं यह निश्चय नहीं कर पाता कि मुझे इस ज्योति के दर्शन कहाँ पर हो रहे हैं। जब आँखें खुली रखता हूँ तब देखता हूँ कि बाहर के आकाश में, माथे पर ऊँचे की ओर है; और आँखें मूँद लेने पर जान पड़ता है कि ललाट के ही भीतर नीले रङ्ग के विस्तीर्ण आकाश के बीचों-बीच है। यह ज्योति एक ही तरह से प्रकाशित बनी रहती है, इस कारण इसका घटना-बढ़ना कुछ समझ में नहीं आता। हाँ, बाहरी काम-काज छोड़कर नाम में और गुरु में चित्त लगाने से इसके माधुर्य में और भी अभिभूत हो जाता हूँ। गुरु का स्मरण

करने पर ज्योति की अपूर्व छटा अनेक स्तरों में फैलकर, समय-समय पर, मुझे आनन्दसागर में डुबा रखती है। गोस्वामीजी के रूप का ध्यान करने से, नहीं समझ पड़ता कि क्यों, इस ज्योति की सुन्दरता और मनोहारिता उत्तरोत्तर बढ़ती है। इस समय यह अवस्था मेरे वश की और स्वाभाविक जान पड़ती है।

ज्योति का लुप्त हो जाना

श्रावण शुक्ला ९, रविवार, सं० १९४९

हाय! हाय!! मेरा सत्यानाश हुए आज दो दिन हो गये। अभाग्यवश अकस्मात् अनजाने एक अपराध हो जाने से अपने अतुल आनन्द की अवस्था को मैं खो बैठा हूँ! अब मैं बिलकुल सुस्त हो रहा हूँ। सूखे रेगिस्तान के तुल्य तपे हुए मेरे हृदय में, रह-रहकर, उस ज्योति की याद प्रत्यक्ष आग की तरह मेरे प्राणों को जला रही है। जिस अपराध की बदौलत मेरी यह दुर्दशा हुई है, उसे साफ़-साफ़ लिख छोड़ता हूँ।

शूद्र जाति की एक विधवा सङ्कट के समय सदा हम लोगों की सहायक रहती थी। इससे हम लोगों की उससे विशेष रूप से घनिष्ठता हो गई थी। इस समय रक्षक न रहने से वह बिलकुल ही असहाय और भरण-पोषण की भविष्यत् चिन्ता से बहुत ही अधीर हो गई है। तरह-तरह की चिन्ताओं से घबराकर उसने मुझे बुला भेजा। उसके सङ्कट का हाल सुनकर मुझे उस पर बड़ी दया आई। चटपट उसके पास पहुँचकर मैंने उसे भविष्यत् के लिए ऐसा प्रबन्ध बतला दिया जिसमें तनिक भी खटका न था। शाम को ख़ाली घर में मुझे अकेला पाकर, हाथ पकड़कर, उसने अपने बिछौने पर बैठा दिया। थोड़ी ही देर में मेरी बाईं ओर बैठकर वह अस्वाभाविक ढँग से मेरा प्यार करने लगी। उसके ओंठ काँप रहे थे, चेहरा सुर्ख़ था और दृष्टि लोलुप तथा अस्थिर थी। उसका सारा बदन दाहनी और बाईं ओर बराबर झूम रहा था। यह देखते ही मुझे उत्तेजना होने लगी। मैं घबराकर चौंक पड़ा। इसी समय क्या देखा कि जो ज्योति लगातार मेरे आगे निश्चल रूप से प्रकाशित रहती थी वह अकस्मात् बेतरह काँप रही है। मैं तुरन्त उसके बिस्तरे से उछलकर खड़ा हो गया। अब धोती में 'अशुद्धता' का लक्षण देखकर मैंने पूछा—'यह क्या है?' युवती ने बतला दिया; मैं पल भर की भी देर किये बिना वहाँ से फुर्ती से चला आया। मैंने क्षण भर में ही

समझ लिया कि मेरा सत्यानाश हो गया ; नाममात्र को विन्दु गिर जाने से पूर्ण चन्द्रमा डूब गया ! दो ही तीन मिनट में, लहरें उठते हुए सरोवर में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब की भाँति चञ्चल होकर, मेरा निश्चल चमकीला ज्योतिर्मण्डल धीरे-धीरे एकदम लुप्त हो गया। जैसी करतूत थी वैसा ही फल मिला ! हाय, हाय, अब मैं क्या करूँगा।

पतित जन के ऊपर अयाचित दया

श्रावण शुक्ला १३, सं० १९४९

ख़बर मिली कि आज गोस्वामीजी ढाका आवेंगे। उनका स्वागत करने के लिए कुछ गुरुभाइयों के साथ मैं दुलाईगंज स्टेशन पर पहुँचा। पिछले अपराध को याद करके मैं संकोच के मारे सब के पीछे खड़ा रहा। हर घड़ी यही सोचने लगा कि गोस्वामीजी मुझे देखकर न जाने क्या कहेंगे। इधर एक गुरुभाई और ही झमेले में पड़ गये थे। एक स्त्री के मामले में फँस जाने से गुरुभाइयों ने उन्हें बहुत ही बेइज्जत कर डाला है। सभी ने उनकी बदनामी करके एक प्रकार से उनसे सब तरह का व्यवहार बन्द कर दिया है। लज्जा और पछतावे के मारे मुर्दार से होकर वे लोगों से मिलना-जुलना बन्द करके रात-दिन अपने घर में ही अकेले छिपे रहते हैं। गोस्वामीजी के दर्शन न कर सकेंगे, इस दुःख के मारे वे घर में बैठे रो रहे हैं।

शाम को गोस्वामीजी दुलाईगंज स्टेशन पर पहुँचे। गाड़ी में बैठे-बैठे ही उन्होंने गुरुभाइयों के साथ मुझे भी देख लिया। प्रतिष्ठित और अच्छे पदों पर स्थित बड़े गुरुभाई लोग गोस्वामीजी की गाड़ी के पास पहुँचे ; किन्तु उन्होंने सब से पहले मुझे बुलाकर कहा—**"क्यों जी कुलदा, आ गये ? अच्छा, अब तुम लोग स्थान पर चलो—मैं फूलबेड़े स्टेशन पर उतरकर आता हूँ।"** अब उन्होंने ऐसी सस्नेह-दृष्टि से, मन्द-मन्द मुसकाकर, मेरी ओर देखा कि मेरा कलेजा ठण्डा हो गया। और-और गुरुभाइयों के साथ एक-आध बात कहते ही गाड़ी खुल गई। गोस्वामीजी फूलबेड़े (ढाका) स्टेशन पर जाकर उतरे। हममें से किसी की समझ में न आया कि गोस्वामीजी दुलाईगंज स्टेशन पर न उतरकर, कोई एक घंटे के रास्ते की दूरी पर जाकर, ढाका स्टेशन पर क्यों उतरे।

ढाका-स्टेशन पर उतरकर गोस्वामीजी सीधे हमारे उसी गुरुभाई के यहाँ पहुँचे जो पछतावा कर रहा था और जिसको गुरुभाइयों ने बदनाम कर रक्खा था। घर का दरवाजा

भीतर से बन्द था। बारबार धक्के देने पर उस भले आदमी ने आकर ज्योंही किवाड़ खोले त्योंही गोस्वामीजी उसे छाती से लगाकर सिर पर हाथ फेरते हुए कहने लगे—**तुम हमारे पास न आओगे, इसी लिए हम स्टेशन से उतरते ही तुम्हें देखने आये हैं।** गुरुभाई रोते-रोते गुरुजी के चरणों पर गिर पड़े। गोस्वामीजी उन्हें ढाढ़स बँधाकर गेंडारिया में, आश्रम में, आ गये। सबने बहुत ही निरादर करके जिन्हें दुरदुरा दिया था उन्हीं को ढाका में पहुँचने पर सबसे पहले गोस्वामीजी गले से लगा आये! उनके इस काम से मुझे बड़ा सहारा मिला, मेरा जी ठण्डा हो गया।

विचित्र स्वप्न—मार्ग बतलाना

मैं आज दोपहर को गोस्वामीजी के पास गया। देखा कि वे आम के नीचे ध्यान लगाये बैठे हैं। दूर से प्रणाम करते ही उन्होंने आँखें खोलकर देखा और मुझसे बैठने के लिए कहा। मैंने धीरे-धीरे सूचित किया कि 'मैं ब्रह्मचारीजी के पास गया था', फिर कहा—उनके उपदेश से दादा आपके दर्शन करने यहाँ आये थे, किन्तु उस समय आप ढाका में न थे। जाते समय दादा कह गये हैं—यदि आप पछाँह में जावें तो दया करके एक बार उन्हें दर्शन दें। उनको बहुत बातें करनी हैं।

गोस्वामीजी—**इस समय तबीअत बहुत ही ख़राब है। तबीअत सुधर जाने पर एक बार जाने की इच्छा है। उस समय तुम्हारे दादा के साथ भेंट करूँगा।**

गोस्वामीजी ने विस्तृत रूप से जानना चाहा कि ब्रह्मचारीजी से भेंट होने पर क्या-क्या बातचीत हुई थी। दादा और मँझले दादा का सब हाल सुनाकर फिर मैंने अपनी सब बातें आदि से अन्त तक साफ़-साफ़ बतला दीं। सुन करके गोस्वामीजी ने कहा—**"विद्या नहीं आवेगी" इत्यादि सब बातें लिख रखने के लिए उन्होंने कहा है, सो लिख लेना। उन लोगों की बातों को समझना बहुत मुशकिल है। तुमसे जो मैंने कह दिया है वही किये जाओ। मैं तो मौजूद हूँ; फिर जो करना होगा वह मैं ही बतला दूँगा। घबराना मत। हाँ, अब सपने का हाल सुनाओ।**

मैं अपना स्वप्न-वृत्तान्त सुनाने लगा—"देखा कि दिन डूबने पर है, आपने अकस्मात् आकर मुझे आवाज़ देकर कहा, **'समय नहीं है, अब चल'**। आपके साथ बारोदी के

ब्रह्मचारीजी भी थे। श्रीयुक्त ताराकान्त गङ्गोपाध्याय (ब्रह्मानन्द भारती) भी आ गये। आगे-आगे ब्रह्मचारीजी चले, उनके पीछे आप, आपके पीछे ताराकान्त दादा चले और सब के पीछे मैं चला। यह तो मालूम होने लगा कि आगे-आगे ब्रह्मचारीजी चल रहे हैं; किन्तु वे देख न पड़े। अँधेरे में किसी के साथ चलने से जिस प्रकार उसकी सत्ता का अनुभव होता है उसी प्रकार का ज्ञान ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में भी मुझे हो रहा था। रास्ता चलते-चलते कुछ दूर निकल जाने पर बड़ी दूरी पर मैंने एक भयङ्कर जङ्गल देखा। उसे देखने से ही डर लगने लगा। किन्तु ज्यों-ज्यों उसके समीप पहुँचने लगा त्यों-त्यों हरे और नीले रङ्ग के घने वृक्षों की शोभा से आनन्द मिलने लगा। वन के बहुत ही समीप पहुँच जाने पर देखा कि वह न केवल वन है बल्कि एक बड़ा भारी पहाड़ है। हम लोग उसके भीतर घुसे। ब्रह्मचारीजी रास्ता पकड़े हुए अपनी धुन में आगे बढ़ने लगे; और आप अपने दण्ड से काँटों को हटाकर रास्ता साफ़ करते हुए चलने लगे। ताराकान्त दादा चौकन्ने होकर इधर-उधर देखते हुए चलने लगे। मैं आप पर नज़र रक्खे हुए आगे बढ़ने लगा। धीरे-धीरे हम लोग बहुत ऊँचे-नीचे स्थानों में चढ़ते-उतरते हुए पर्वत की सब से ऊँची चोटी पर एक समतल स्थान में जा पहुँचे। वहाँ आपने मुझे एक स्थान में ले जाकर तीन आसन दिखलाये। देखा कि तीनों आसनों के चारों ओर बहुत पुराने, दूर तक फैले हुए, बड़े-बड़े पेड़ हैं; स्थान कुछ-कुछ अँधेरा जैसा, पेड़ों की छाँह से ढका हुआ है। तीनों आसन गेरुवे रङ्ग के लाल पत्थर के और चौकोर हैं और पूर्व की ओर बिछे हुए हैं। तीनों आसनों पर १, २, ३, अंक पड़े हुए हैं। ३ नम्बरवाला आसन मुझे दिखाकर आपने कहा—**यही तुम्हारा आसन है। इस पर बैठो। यहाँ बैठकर कुछ समय तक साधन करना।** २ नम्बरवाले आसन पर आप स्वयं बैठ गये। १ नम्बरवाला आसन खाली रहा। थोड़ी देर वहाँ बैठकर मैंने साधन किया। फिर आपने उठकर कहा—**मेरे पीछे-पीछे चलो!** अब हम चारों जने फिर पहले के सिलसिले से चलने लगे। ऊँचे-नीचे स्थानों में बहुत झाड़-झंखाड़ और काँटे थे, इस कारण पैरों में घाव हो गये; स्थान-स्थान पर ठोकर लगने से दो-तीन बार मैं गिर भी पड़ा। तब आप दुर्गम सङ्कीर्ण मार्ग का सङ्कट मुझे इशारे से जतलाकर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे; और बार-बार मुझसे कहने लगे, '**बड़ी सावधानी से, धीरे-धीरे क़दम रखकर मेरे पीछे-पीछे चलो**

आओ।' बड़े क्लेश से बहुत दूर चलने पर अन्त में समझा कि हम लोग एक बड़े भारी राज्य के समीप आ गये हैं। देखा कि घने हरे वृक्षों के पत्तों के भीतर होकर सूर्य की किरण की तरह उस ज्योतिर्मय राज्य का तेज आकर पड़ रहा है। हम लोग उसी किरण को लक्ष्य करके आगे चलने लगे। आप बीच-बीच में मेरी ओर मुँह करके, देखते हुए, मुझे ढाढ़स बँधाने लगे। इससे मैं यह अनुमान करने लगा कि आगे कुछ उपद्रव है। हम लोग जिस जङ्गल में थे उससे उक्त ज्योतिर्मय राज्य में जाने के लिए एक ही द्वार था; वह बहुत ही तङ्ग था। सारा राज्य घनी कँटीली बाड़ी से घिरा हुआ था। हम लोग बड़े उत्साह के साथ उस द्वार की ओर बढ़े; उसके समीप पहुँचकर देखा कि एक भयङ्कर, बहुत ही काला, पतला सा लम्बा साँप फुफकार मार रहा है। हम लोगों को देखकर बहुत ही तेज़ी से फन फैलाकर वह डसने को लपका। ब्रह्मचारीजी के पास आकर वह फन उठाये हुए ठहर गया; तुरन्त ही फिर फन को झुकाकर सों-सों करता हुआ वह आपकी ओर दौड़ा। किन्तु आपने उसकी परवा ही नहीं की। पीछे, मेरी ओर देखकर, **"डरना मत, डरना मत,"** कहकर आप बराबर मुझे ढाढ़स बँधाने लगे। साँप भी आपके पास फन को सिकोड़कर ताराकान्त दादा की ओर चला। उनके हाथ में मोटी सी लाठी थी। वे डर के मारे घबराकर साँप को लाठी से मारने लगे। वह उनके पैरों में लिपट गया। वे जितना ही उसे मारने लगे उतना ही वह उनको कसकर जकड़ने लगा। तब आप चिल्लाकर कहने लगे—**"ठहरो, ठहरो, मारो मत, मारो मत। मार कर उसे अलग न कर पाओगे। उसे मारोगे नहीं तो वह कभी काटनेवाला नहीं।"** आपकी बात पर भरोसा करके ताराकान्त बेखटके नहीं हो सके। डर और घबराहट के मारे वे बराबर साँप को लाठी मारने लगे। साँप भी उनको मजबूती से जकड़ता गया। इसी समय मैंने देखा कि नङ्ग-धड़ङ्ग, ऊँचे-पूरे, गोरे रङ्ग के जटावाले ब्रह्मचारीजी, बहुत ही तङ्ग रास्ते से होकर, सफ़ेद चमकीले ज्योतिर्मय राज्य में पहुँच गये; आप उस द्वार के बीच में खड़े होकर मेरी बाट जोहने लगे। आपका आधा शरीर बाड़ी के उस पार ज्योतिर्म्मय राज्य में था और आधा इस पार था। हाथ हिलाकर उँगली से इशारा करके आपने मुझसे कहा—**'बग़ल से मेरी तरफ़ कूद आओ, साँप कुछ न कर पावेगा।'** इशारा पाते ही मैं कूदकर, साँप को लाँघकर, ज्योंही आपके पास पहुँचा त्योंही उसी धक्के से मेरी नींद टूट गई।—

रात के पिछले पहर यह सपना देखने के बाद फिर मुझे नींद नहीं आई। स्वप्न देखने से पहले मैंने कभी ब्रह्मचारीजी को नहीं देखा था। सपने में उनकी जैसी सूरत-शकल देखी थी वैसा ही रूप और आकार उनका मैंने बारोदी में जाकर देखा।"

स्वप्न का ब्योरा सुनकर गोस्वामीजी ने कहा—**'इस स्वप्न को लिख रखना। स्वप्न कई बार काम दे जाता है। जाओ, अब लिखो-पढ़ो; फिर हम तो मौजूद हैं, जो कुछ करना होगा सो हम बतला देंगे।'**

मुझे जो कई प्रकार के दर्शन हुए थे उनके सम्बन्ध में पूछने पर गोस्वामीजी ने कहा—**'ये बातें बाहरी आदमियों को न बतलानी चाहिएँ। हाँ, हम लोगों का साधन करनेवाला आदमी श्रद्धावान् मिले तो उसे बतला सकते हो।'**

महापुरुष को किस प्रकार पहचानना चाहिए

श्रावण कृष्णा १ बुधवार, सं० १९४९

दिन डूबने से कुछ पहले मैंने गोस्वामीजी के पास पहुँचकर देखा कि कमरे में आदमी ही आदमी भरे हुए हैं। अनेक विषयों पर बातचीत हो रही है। अकस्मात् एक ऊँचे से, गोरे रङ्ग के, मुसलमान फ़क़ीर गोस्वामीजी के उस आसन-घर में बेधड़क आकर प्रसन्नता से गोस्वामीजी के सामने जा बैठे; अनेक प्रकार से सांकेतिक फ़क़ीरी बोली में वे गोस्वामीजी से बातें करने लगे। थोड़ी देर बाद गौराङ्ग, नित्यानन्द और राधाकृष्ण-विषयक कुछ गीत गाकर उन्होंने कुछ देर तक गुरु का माहात्म्य बतलाया; फिर गोस्वामीजी को प्रणाम करके वे चले गये।

घर से उनके बाहर जाते ही गोस्वामीजी ने हम लोगों से कहा—**'देखो तो फ़क़ीर साहब किस तरफ़ जाते हैं!'** हम लोगों ने तुरन्त ही बाहर आकर रास्ते के दोनों ओर तलाश किया, किन्तु कहीं फ़क़ीर साहब न देख पड़े।

गोस्वामीजी ने कहा—**"तुम लोग मनुष्य की ओर ध्यान नहीं देते, मनुष्य को पहचानते ही नहीं। ये एक महापुरुष पधारे थे। न जाने कितने मुसलमान रास्ते से निकलते हैं। यहाँ पर इस ढँग से उनमें से क्या कोई आता है? राधाकृष्ण, गौर-निताई और देवी-देवता के विषय में मुसलमानों से बातें की जायँ तो वे उँगलियों से कान बन्द कर लेंगे। और इन्होंने किस तरह मत-मतान्तर**

से बचकर सभी के उपास्य देवता की भक्ति की ! गुरु के ऊपर निष्ठा उत्पन्न करने के लिए इस ढँग का उपदेश और कौन देगा कि 'गुरु ही सत्य है ?' नहीं कहा जा सकता कि कितने महात्मा इस प्रकार वेष बदलकर इन स्थानों में आते हैं। अवसर देखकर, मनुष्य को परखकर, ये लोग उपदेश देकर अदृश्य हो जाते हैं। मनुष्य को पहचानना चाहिए। और मनुष्य की परख तब होती है जब अपनी अपेक्षा सभी को बड़ा समझो ; अपने को अधम और दूसरों को अधम-उधारण सोचना चाहिए। रास्ते के कुली-मज़दूर को भी महात्मा समझकर नमस्कार करना चाहिए। ऐसा करने पर तब कहीं जाकर सच्चे महापुरुष से भेंट होती है। न तो यह अटकल की बात है, न कल्पना है ; सच्ची घटना है। कल्पना करने से काम नहीं होने का, सचमुच में अपने तईं ऐसा ही समझना होगा। तभी महापुरुषों की कृपा होती है, जन्म सफल होता है।"

धर्म का महास्रोत—फिर वही सत्ययुग

श्रावण कृष्णा ९, रविवार, १९४९

तीसरे पहर इकरामपुर के कदमतला में गोस्वामीजी के स्थान पर गया। रात को बैठक में सम्मिलित होने के लिए मैं समय की प्रतीक्षा करने लगा। ठीक समय पर सब लोग आ गये और इकट्ठे होकर साधन करने लगे। गोस्वामीजी कितने ही देवी-देवताओं की स्तुति करने लगे। 'बम् महादेव ! बम् बम् भोला।' कहते-कहते उनका गला भर आया। धीरे-धीरे अचेत हो जाने पर उनकी समाधि लग गई। देर तक एक ही ढँग में बने रहे। फिर सिर से पैर तक सारा शरीर थर-थर काँपने लगा, थोड़ी देर तक श्वास-प्रश्वास जल्दी-जल्दी चलता रहा। अन्त में वे बिलकुल स्थिर हो गये। वे गद्गद स्वर में कहने लगे—

एक महालीला होगी, एक अद्भुत घटना होगी। बहुत दिनों की देर नहीं है। महात्मा लोग निकल पड़े हैं। गया, काशी, वृन्दावन, अयोध्या आदि स्थानों में एक बड़ी लीला होगी। फिर वही सत्यकाल, प्रायः सत्यकाल ही होगा। प्रत्येक स्थान में ही एक-एक महात्मा हैं। सभी के हाथ में पंखा है। अभी से उन्होंने हवा करना शुरू कर दिया है। धीरे-धीरे ज़ोर से हवा करेंगे। काशी की हवा अयोध्या में और ढाका की हवा कलकत्ता में पहुँचेगी।

इसी तरह एक स्थान की हवा दूसरे स्थान की हवा में जा मिलेगी। हवा में हवा के मिल जाने से उसका वेग और भी बढ़ेगा। वह धीरे-धीरे आँधी का आकार धारण करेगी और फिर बहुत बड़े तूफ़ान को उत्पन्न करेगी। वह जाकर समुद्र में पहुँचेगा। समुद्र के पानी में हवा के कारण बड़ी-बड़ी तरङ्गें उठेंगी। वह गङ्गा-यमुना समेत सारे देश को बहा देगा। प्रायः सभी भारत-वासियों को बहा देगा। न केवल भारतवासी ही, बल्कि बहुत से अँगरेज़ भी बह जायँगे। यह सोता, बड़ा भारी सोता सभी को बहा देगा। कलकत्ता, ढाका तथा और भी दो-तीन स्थानों में अभी से धीरे-धीरे हवा उठने लगी है। महास्रोत है! किसकी मजाल है कि इस स्रोत में रुकावट डाले? देशवालों का अविश्वास और सन्देह बढ़ता हुआ देख पड़ेगा। इससे तिल भर भी हानि न होगी, लाभ भी न होगा। जो लोग इस साधन में हैं, वे सब झगड़ों से बच गये हैं। विश्वास कीजिए चाहे न कीजिए, यह कल्पना नहीं है, अवश्य ही साफ़-साफ़ देख पड़ेगा। चाहे इस लोक में रहिए चाहे परलोक में, कोई भी वञ्चित नहीं होगा। रामकृष्ण परमहंस तथा और भी कुछ महात्मा लोग परलोक से ही सहायता पहुँचावेंगे। तनिक भी डर नहीं है। सोलहों आने निर्भय रहिए, सचमुच निर्भय। जो लोग इस साधन में हैं वे धन्य-धन्य हो जायँगे। नाम में रुचि और गुरु में भक्ति होने से ही सब कुछ हो गया। जिनको यह साधन मिल चुका है उनको नाम में रुचि और गुरु में भक्ति होगी ही। विश्वास कीजिए, वह अवश्य होगी। इधर ब्रह्मचारीजी लीला कर रहे हैं। वही महाप्रलय का दिन आ गया। डर नहीं है, डर नहीं है।

मैंने रात को सोने से पहले गोस्वामीजी से प्रार्थना की कि रात को पिछले पहर ३ बजे साधन करने के लिए जगा दीजिएगा। ठीक समय पर स्वप्न देखकर जाग पड़ा। स्वप्न यह है—'एक भयङ्कर डाकू रूल हाथ में लेकर मुझे मारने को दौड़ा आ रहा है। कुछ उपाय न देखकर मैं बहुत ही घबरा गया। इसी समय अकस्मात् गोस्वामीजी ने आकर डाकू को भगा दिया।' डर और घबराहट के मारे मेरी नींद टूट गई। इस साधारण घटना से भी गोस्वामीजी के ऊपर मुझे थोड़ा सा विश्वास हो गया।

गेंडारिया के आश्रम में प्रवेश—गोस्वामीजी के हाथ से पहले-पहल 'हरि की लूट'

भाद्रपद कृष्णा ७,
मंगलवार, १९४९

आज गोस्वामीजी गेंडारिया के नये मकान में पधारे हैं। मैंने आश्रम में जाकर देखा कि खासा उत्सव हो रहा है। मृदङ्ग, मँजीरे और संकीर्तन की ध्वनि से स्थान बड़े आनन्द का धाम हो गया है। कोई ११ बजे तक हरिसंकीर्तन, गौरसङ्कीर्तन और नाम-गान हुआ। बहुत से ब्राह्मसमाजी भी आये थे। किसी-किसी को गौरसङ्कीर्तन सुनना असह्य हो गया, अतएव वे उठकर चले गये; किन्तु कोई-कोई प्रसिद्ध ब्राह्मसमाजी अन्त तक उत्सव में बैठे रहे। एक टोकरी में थोड़े से बताशे लाकर गोस्वामीजी ने उसे अपने सिर पर रख लिया, फिर 'हरि बोलो' 'हरि बोलो' कहकर उन्हें चारों ओर बिखेर दिया। खुल्लम-खुल्ला 'हरि की लूट' करते गोस्वामीजी को आज ही मैंने पहले-पहल देखा।

फिर गोस्वामीजी ने पूर्व ओर वाले कमरे में, दक्खिन ओर को, अपना आसन जमाया। देर तक इस कमरे में भी कीर्तन होता रहा। सुना कि कल गृहसञ्चार होगा, बहुत उत्सव होगा। शाम को मैं अपने स्थान पर लौट आया।

गेंडारिया आश्रम-सञ्चार उत्सव

जन्माष्टमी,
बुधवार

मैं बड़े तड़के नहा-धोकर गेंडारिया आश्रम में पहुँचा। देखा कि हिन्दू, ब्राह्मसमाजी, वैष्णव आदि बहुत से सम्प्रदायों के लोगों के एकत्र होने से आश्रम भरा हुआ है। सङ्कीर्तन-महोत्सव में आज बहुत लोग मस्त हो गये। बहुत देर तक उत्सव होता रहा। भीतर और बाहर ३।४ मण्डलियों ने सङ्कीर्तन किया। मुसलमान फ़क़ीरों और वैष्णवों के शामिल हो जाने से उत्सव का आनन्द और भी बढ़ गया। १२ बजे तक खासी भाव की उमंग बनी रही। फिर गोस्वामीजी अपने हाथ से 'हरि की लूट' बाँट करके पूर्व के कमरे में अपने आसन पर जा बैठे। इस समय बहुत लोग अपने-अपने घर को चले गये। जो लोग नहीं गये उन्होंने वहीं भोजन किया। मैं गोस्वामीजी के पास बैठा रहा। उन्होंने मुझसे पूछा, **'तुम न खाओगे ?'** मैंने कहा 'प्रसाद' लूँगा। कोई २ बजे गोस्वामीजी मुझे साथ लेकर भण्डारे में गये। वहाँ हम १०।१२ गुरु-भाई गोस्वामीजी के दोनों ओर बैठ गये। गोस्वामीजी ने हम लोगों को प्रसाद दिया। मैंने

आज ही पहले-पहल गोस्वामीजी का प्रसाद पाया। एक गुरुभाई देर हो जाने से, ठीक समय पर, हम लोगों का साथ नहीं दे सके; जब पहुँचे तब गोस्वामीजी ने जिस बर्तन में भोजन किया था उसमें से बिना किसी झिझक के स्वयं प्रसाद उठाकर खाने लगे! मैंने गुरु के प्रति ऐसा निःसंकोच भाव न तो कहीं देखा है और न सुना है।

दर्शन आदि के सम्बन्ध में उपदेश। विचित्र रीति से चरणामृत मिलना

भाद्रपद कृष्णा १४, सं० १९४६

शाम को कुछ गुरुभाइयों के साथ मैं गेंडारिया-आश्रम में पहुँचा। गोस्वामीजी के पास बैठा हुआ था कि इसी समय हरिचरण बाबू, प्रसन्न बाबू और श्यामाचरण बख़शी प्रभृति गुरुभाई लोग आये। गोस्वामीजी देर तक समाधि में मग्न थे। इस समय आधी बाह्य अवस्था में, अर्ध-स्फुट-स्वर में, वे धीरे-धीरे कहने लगे—"साधन के समय आप लोग जो कुछ देखें उसे कल्पना न समझ लें। यह साधन ऐसी ही वस्तु है कि यह सब अवश्य देख पड़ेगा। पहली अवस्था में ये सब दर्शन चञ्चल और क्षणिक होते हैं; चित्त की निर्मलता और स्थिरता के साथ-साथ ये सब धीरे-धीरे स्पष्ट और दीर्घकाल-स्थायी होते देखे जाते हैं। पहले-पहल एक तसवीर की तरह, पट की तरह, पल-पल भर पर दिखाई दिया करते हैं; फिर धीरे-धीरे वे साफ़ मूर्ति के रूप में सजीव देख पड़ते हैं; बात-चीत भी सुन पड़ती है; उनके साथ बातें करने पर उत्तर भी मिलता है। न केवल सजीव दर्शन ही होते हैं, बल्कि उनका हाथ-पैर हिलाना और संकेत आदि भी देख पड़ता है। इस साधन से सिर्फ़ हमारे ही देश के देवी-देवताओं के दर्शन नहीं होते, बल्कि अब तक किसी भी देश में मनुष्यों ने भगवान् की जिस-जिस रूप में पूजा की है—फिर चाहे आपको उसका पता हो चाहे न हो—साधन के प्रभाव से धीरे-धीरे वे सभी रूप सजीव देख पड़ेंगे। पहले यूनान, रोम और अन्यान्य देशों की, यहाँ तक कि जङ्गली और पहाड़ों की असभ्य जातियों ने भी अब तक भगवान् की पूजा, जिसने जिस रूप में, की है और जो इस समय कर रहे हैं वे सब रूप प्रकाशित हो जायँगे। मैं ये कल्पना की बातें नहीं कह रहा हूँ, ये सब सच हैं, प्रत्यक्ष देखी हुई हैं। पहले से ही यदि इन कल्पनाओं का

स्मरण कर इन्हें तुच्छ समझा जाय, बिलकुल उड़ा दिया जाय तो सहज मार्ग हाथ से निकल जायगा। कल्पना समझिए या और कुछ समझिए, यह सब सामने आवेगा। हाँ, यह सब हर-हमेश नहीं देख पड़ता। इसका कारण यह है कि हमारा चित्त हर वक्त एक अवस्था में नहीं रहता; चित्त के स्थिर होते ही दर्शन स्पष्ट हो जाते हैं। चित्त को स्थिर रखने के लिए श्वास-प्रश्वास के साथ नाम का जप करना चाहिए, पवित्र आचार से रहना चाहिए। नाम में रुचि होने और चित्त निर्मल होने पर एक-एक करके वासना और कामना पीछा छोड़ देती हैं। जिस परिमाण में वासना और कामना का त्याग हो जायगा उसी परिमाण में दर्शन आदि स्पष्ट हो जायँगे। उन दर्शन आदि की अवस्था से ही योग का आरम्भ होता है। योग का एक बार आरम्भ हो जाने पर फिर बहुत समय नहीं लगता। धीरे-धीरे सब अद्भुत विषय प्रत्यक्ष होने लगते हैं। जिनकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती उनको प्रत्यक्ष देख करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।"

अधिक रात बीतने पर पक्के ब्राह्मसमाजी गुरुभाई श्रीयुक्त श्यामाचरण बख़शी के साथ डेरे पर लौटा। उन्होंने रास्ते में गोस्वामीजी की अलौकिक शक्ति और असाधारण दया की बहुत सी बातें छेड़कर अकस्मात् कहा—"देखिए, मैं तो ब्राह्मसमाजी हूँ। गोस्वामीजी का चरणामृत लेने की मुझे हिम्मत नहीं होती। इसलिए प्रतिदिन रात को सोते समय सिरहाने एक ख़ाली कटोरी रखकर मन ही मन प्रार्थना करता हूँ कि वे उसमें चरणामृत रख जावें। उनकी दया का क्या कहना है! प्रतिदिन तड़के उठने पर उस कटोरी में चरणामृत पाता हूँ। यह बात प्रतिदिन होती है। मेरे सिवा इस घटना का हाल और किसी को मालूम नहीं। आप चाहें तो सोते समय ख़ाली कटोरी रख लें, चरणामृत आपको अवश्य मिलेगा।" बख़शीजी सदा से निष्कपट, सत्यवादी और कट्टर ब्राह्मसमाजी हैं। सोचा—यह क्या मामला है? इनकी भी यह हालत है! जो कभी हो नहीं सकता उसकी भी क्या जाँच-पड़ताल करनी होगी? बख़शीजी को मुद्दत से जानता हूँ, उन पर से मेरी श्रद्धा रत्ती भर भी कम नहीं हुई। सोचा कि मुनियों की भी मति चक्कर खा जाती है; या सम्भव है, इसके भीतर और कुछ रहस्य हो।

प्रारब्ध के क्षीण करने का उपाय बतलाना

भाद्रपद शुक्ला २, शनिवार

मैं तीसरे पहर गोस्वामीजी के पास गया। एकान्त पाकर मैंने पूछा—'स्वप्न देखा था कि आपने मुझसे एक नाम का जप करने को कहा है।'

गोस्वामीजी—**हाँ, हाँ, उस नाम का भी जप किया करो, लाभ होगा।**

आज शनिवार था, इसलिए बहुत लोग आये। प्रारब्ध और पौरुष के सम्बन्ध में बहुत बातें हुईं। गोस्वामीजी ने कहा—**संसार में सभी प्रारब्ध के अधीन हैं। कोई कितनी ही चेष्टा क्यों न करे, प्रारब्ध कार्य की गति को कोई रोक न सकेगा। पौरुष के द्वारा प्रारब्ध पर आधिपत्य जमाना असम्भव है। पुरुषकार से मनुष्य का सामयिक लाभ हो सकता है सही, किन्तु वह बहुत समय तक नहीं टिक सकता। ब्रह्मचारीजी, पुरुषकार के प्रभाव से, प्रारब्ध कर्म को लाँघकर साधन की चौथी अवस्था को भी पार कर चुके थे, अन्त में निर्विकल्प समाधिस्थान में पहुँच कर फिर वापस लौट आये। फिर वे बहुत समय तक 'नाश्ता' करके, खेत निराते और सूअर भगाते रहे! विना अवस्था में पड़े ये बातें समझ में नहीं आतीं। प्रारब्ध के हाथ से छुटकारा पाने के दो उपाय शास्त्र ने बतलाये हैं—विचार और अजपा-साधन। जब जो कुछ करो, विष्णु भगवान् के प्रीत्यर्थ करो। उठना-बैठना, नहाना-धोना आदि सभी काम कामना छोड़कर अथवा विष्णु भगवान् के प्रीत्यर्थ किये जायँ तो फिर जल्दी प्रारब्ध कर्म बेबाक हो जाता है। और श्वास-प्रश्वास के साथ नाम का जप करते रहने से यह काम और भी आसानी से हो जाता है।**

गोस्वामीजी की बातों का अर्थ मेरी समझ में न आया। प्रयोजन होने से, लाचार होकर, प्रतिदिन जितना काम-काज करता हूँ उसमें निष्काम भाव किस प्रकार ले आऊँ? और यही किस तरह समझूँ कि पेशाब करना, नहाना, भोजन करना आदि जो बाहरी काम करता हूँ उन्हें साधन-भजन की तरह भगवत्प्रीत्यर्थ कर रहा हूँ? श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ तो दस मिनिट तक भी नाम का जप नहीं कर सकता, घबरा जाता हूँ। और लगातार श्वास-प्रश्वास के साथ नाम का जप करूँगा ही किस प्रकार? अब तो जान पड़ता है कि यह साधन लेकर ही मैंने भूल की है।

नगेन्द्र बाबू का असाम्प्रदायिक उपदेश

गोस्वामीजी आज शिष्यों समेत ब्राह्मसमाज-मन्दिर में गये। गोस्वामीजी को देखकर ब्राह्मसमाजी लोग बहुत ही आनन्दित हुए। बड़े उत्साह के साथ सङ्कीर्तन होने लगा। भाव की उमङ्ग बढ़ गई। गोस्वामीजी के कुछ शिष्य बहुत ही मस्त हो गये। उनकी दशा देखकर सभी लोग आश्चर्य के साथ देखते रह गये। भाव में उन्मत्त होकर श्रीधर 'वह देखो, वह देखो' कहकर, ऊपर की ओर हाथ उठाये हुए, कूदने लगे। सभी लोग बड़े आग्रह से श्रीधर को देखने लगे। इसी समय ब्राह्मसमाजी श्रीयुक्त चण्डीचरण कुशारी २।४ छलाँगों में श्रीधर के सामने आये और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे कि 'वह देखो, वह देखो क्या? कहो ब्रह्म जगन्मय, ब्रह्म जगन्मय है।'

प्रचारक श्रीयुक्त नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्यायजी ने वेदी का कार्य करके उपदेश दिया। उन्होंने तेजःपूर्ण वाक्यों में, मर्मस्पर्शी भाषा द्वारा, बड़े जोरों से कहा—'उपासना चाहे साकार की करो चाहे निराकार की, यही देखना कि अपने इष्टदेव को सच्ची व्याकुलता के साथ बुला रहे हो या नहीं'—इत्यादि। आज इस ढँग का उपदेश सुनकर ब्राह्मसमाजी लोग बहुत ही चिढ़ गये। बहुतों ने कहा—आज समाज में गोस्वामीजी के उपस्थित रहने से ही नगेन्द्र बाबू के मुँह से इस ढँग का उपदेश निकल पड़ा है।

सत्यनिष्ठा का उपदेश

तीन दिन से आज लगातार ऐसा लगता था कि बड़े दादा की छोटी लड़की प्रियबाला पानी में डूबकर मर गई है। समय-समय पर उसकी लाश, कल्पना द्वारा, अपने आप देख पड़ती थी। आज खबर मिली कि सचमुच यह दुर्घटना हुई है। मन में बड़ा कष्ट हुआ। मेरी दूसरी भतीजी सरयू गिरी बची है। घटना से दो दिन पहले वैसा स्वप्न देखकर वह चिल्ला उठी थी। ऐसा क्यों होता है? इससे मालूम होता है कि प्रारब्ध कुछ हो भी सकता है।

बड़ी मुश्किल में पड़ा। भीतर अदम्य 'काम' की उत्तेजना है और बाहर एक के बाद एक भीषण प्रलोभन हैं। ऐसी हालत में क्या करूँ? तय किया कि व्यभिचार करके काम के वेग को शान्त करूँगा। अब व्यवस्था लेने के लिए गोस्वामीजी के पास पहुँचा। मुझे बैठे थोड़ी ही देर हुई थी कि वे बिना पूछे-ताछे अपने आप कहने लगे—

उपदेश सुनने से क्या होगा ? सिर्फ़ सुनकर चल देने से कुछ नहीं होता। उसे जीवन में परिणत करना चाहिए। इच्छा करने से ही सभी उपदेशों के अनुसार नहीं चला जा सकता, यह सच है। भले बनने की इच्छा बहुतों को है, उसके लिए वे कोशिश भी करते हैं; किन्तु उनको सफलता नहीं होती। यह बिलकुल सच है कि सभी रिपुओं पर सब का एक सा आधिपत्य नहीं है। किन्तु लोग कहना चाहें तो सच बात अवश्य कह सकते हैं; लेकिन यह कौन करता है ? सच्ची बात, सच्चे बर्ताव और सत्य ही सोचने-विचारने की सब को आवश्यकता है। इन तीनों का अभ्यास हो जाय तो फिर और बहुत उत्पात नहीं रहता। धर्मार्थियों को पहले इन्हीं तीनों का अभ्यास कर लेना चाहिए। फिर सब सरलता से आ जाता है। उल्लिखित तीनों बातों का अभ्यास सहज ही हो जाता है। इन तीनों का अभ्यास पहले कर लो तो सब उत्पातों की शान्ति हो जायगी।

यह सब सुनकर मैं मानसिक व्यथा के मारे डेरे पर लौट आया। सोचा था कि गोस्वामीजी योगाचार्य हैं, इन उत्पातों को शान्त कर देने की कितनी ही प्रणालियाँ जानते हैं, एक-आध नुसख़ा बतला देंगे। किन्तु उन्होंने तो उसी ब्राह्मसमाज की पुरानी नीति की "गत" को दुहरा दिया।

मन्त्रशक्ति का प्रमाण

आश्विन कृष्णा ६, मङ्गलवार

हम लोगों के मास्टर श्रीयुक्त शारदाचरण पाल का इकलौता लड़का आज मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ है। ८।१० हमजोलीवालों के साथ मैं उसे देखने गया। वहाँ पर बैठे थोड़ी देर हुई थी कि एक साधुवेषधारी ब्राह्मण ने अकस्मात् उस स्थान में आकर कहा—"ऊपरी उपद्रव से आपका एक लड़का मर रहा है। आप चाहें तो मैं एक कवच दूँ। लड़का चङ्गा हो जायगा। दैवबल से मैं इस कवच को बना दूँगा। आपको कुछ ज्यादह ख़र्च-वर्च न करना पड़ेगा; एक यज्ञ करने के लिए थोड़ासा ख़र्चा चाहिए।" मास्टर साहब हैं बहुत ही कट्टर ब्राह्मसमाजी। उन्होंने ठहाका मारकर हँसने के बाद कहा—"कवच-अवच की जरूरत नहीं है। दैव-ऐव को मैं नहीं मानता। अरे भाई, यज्ञ क्या है ? हाँ, कुछ दवा मालूम हो तो दो। और बातों पर मुझे विश्वास नहीं है।" हम सभी लोग

ब्राह्मभावापन्न हैं, सोचा—'एक खासी करामात दिखानेवाला आ गया है।' मैंने पूछा—'महाराज, दैवबल से हम लोगों को कुछ करामात दिखा सकते हो?' साधु-वेषधारी ने कहा—"हाँ, हाँ! बच्चे का भारी सङ्कट देखकर मैंने कवच देना चाहा था। उसे लेना न लेना आपकी मर्जी पर है। इसमें मेरा कुछ स्वार्थ नहीं है।"

कुछ करामात दिखलाने के लिए मैं साधु के पीछे पड़ गया। कुछ लोग मजाक़ भी करने लगे। अन्त में ब्राह्मण ने कहा—'अच्छा बतलाइए, आप लोग क्या चाहते हैं?' हम सभी ने कहा—'दैवबल से खाने के लिए कुछ मिठाई मँगवा दीजिए।' ब्राह्मण ने कहा—"लोटे भर शुद्ध जल दीजिए, और कमरे को साफ़ करा दीजिए। मन्त्र पढ़कर मैं जब 'आओ आओ' कहूँगा तब उस जल को कमरे में छिड़क दीजिएगा।" हम लोगों ने तुरन्त ही कमरे को झाड़-बुहार कर साफ़ कर दिया; ब्राह्मण को अपने ही यहाँ की धोती पहना दी और कमरे के बीच में भरा हुआ लोटा रखकर हम १०।१२ लड़के उस ब्राह्मण के चारों ओर खड़े होकर बड़ी सावधानी से उसके हाथ-मुँह हिलाने-डुलाने के ऊपर कड़ी नज़र रखने लगे। कोई ३ या ३॥ बजे का समय होगा। ब्राह्मण देवता पहले तो जनेऊ को पकड़ कर एकाग्र मन से जप करने लगे; थोड़ी ही देर में वे एकदम खड़े होकर थर-थर काँपने लगे। अब उन्होंने ऊपर की ओर दोनों हाथ उठाकर कई बार इस तरह 'आओ आओ' कहा मानों किसी को बुलाया हो। हम लोगों ने तुरन्त ही उस लोटे का पानी कमरे भर में छिड़क दिया। अब ब्राह्मण ने आकाश की ओर से बहुत बड़ा—कोई दो सेर का—एक मिश्री का डला झेलकर हम लोगों के पास फेंक दिया। इतनी चौकस निगरानी करते रहने पर भी हम लोग कुछ भी मालूम न कर सके कि इतना बड़ा मिश्री का डला कहाँ से किस तरह आ गया। किन्तु इतने पर भी मास्टर साहब को विश्वास न हुआ। उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया—"यज्ञ-वज्ञ तो कुसंस्कार है! मुझे कवच की जरूरत नहीं।" साधुजी वहाँ से चले गये। इसके घण्टे भर बाद ही वह लड़का मर गया। मास्टर साहब के विवेक-बल की क्या प्रशंसा की जाय! ऐसे सङ्कट के समय भी उन्होंने अपनी धारणा और मत के विरुद्ध कुसंस्कार को सहारा नहीं दिया। हम लोगों के लिए यह खासा उदाहरण है! मैंने डेरे पर आकर थोड़ी सी मिश्री शीशी में भर कर रख ली है। देखूँगा, इसमें कुछ अदल-बदल होता है या नहीं।

भोजन के सम्बन्ध में उपदेश—आनुषङ्गिक बातें

आश्विन कृष्णा ८, शुक्रवार

मैं दोपहर को गोस्वामीजी के यहाँ गया। एकान्त में अवसर पाकर मैंने कहा—'साधन के समय जो-जो दर्शन होते थे, उनमें से अब कुछ भी नहीं होता।'

गोस्वामीजी—**क्यों नहीं होता? क्या किसी प्रकार का अनियम हो गया है?**

उनकी यह बात सुनते ही याद आ गया—'जिस अनियम और उपद्रव की बदौलत दर्शन बन्द हो गये हैं उसे मैं बख़ूबी जानता हूँ। उत्तेजना ही तो उसकी जड़ है।' आख़िर यह उत्तेजना क्यों होती है? उसका भीतरी भेद जानने के लिए मैंने डरते-डरते कहा—'अनियम तो बहुत से होते हैं। समझ में नहीं आता कि दर्शन होना किस अनियम से बन्द हो गया है।'

गोस्वामीजी—**बहुत से अनियमों से वैसा हो जाता है। खान-पान में अनियम होने से भी दर्शन होना रुक जाता है।**

मैं—मछली-मांस तो मैं कभी खाता ही नहीं। और जूठा-मीठा खाने की भी सम्भावना नहीं है।

गोस्वामीजी—**यही कहने से थोड़े हो जाता है? जिस पर किसी का जी लगा हुआ है, किसी को लोभ है, ऐसी चीज़ उसे दिये बिना खा लेने से अनिष्ट होता है। किसी तमोगुणी व्यक्ति के साथ एक आसन पर बैठकर भोजन करने से भी अनिष्ट होता है; यहाँ तक कि एक जगह बैठकर खाने से भी हानि होती है। भोजन की वस्तु पर तमोगुणी की दृष्टि पड़ जाय तो इससे भी नुक़सान होता है। इन मामलों में जब तुम्हारी दृष्टि खुल जायगी तब साफ़-साफ़ देखोगे कि वैसे लोगों की नज़र पड़ते ही भोजन की वस्तु में कीटाणु ही कीटाणु हो जाते हैं। पहले हम स्वयं न तो इन बातों को समझते थे और न मानते ही थे। किन्तु प्रत्यक्ष देख लेने पर अब अविश्वास किस तरह करें? भोजन की वस्तु को यदि लोग छू लें अथवा देख लें तो इससे बड़ी हानि होती है। अब तक बहुतेरे ब्राह्मण दरवाज़ा बन्द करके भोजन करते हैं। इसलिए देवता को नैवेद्य भी किवाड़े बन्द करके ही लगाया जाता है। भोजन की**

सामग्री पर तमोगुणी व्यक्ति की नज़र पड़ जाय तो वह नैवेद्य के लायक़ नहीं रहती, ख़राब हो जाती है। इसलिए दरवाज़े को बन्द करके ही नैवेद्य बनाने की रीति है। भाव-दूषित, स्पर्श-दूषित और दृष्टि-दूषित वस्तु खाने से नुक़सान होता है। उसका नैवेद्य देवता को लगाया जाय तो अपराध होता है। भोजन के दोष से तरह-तरह के उपद्रव भी उत्पन्न हो जाते हैं, उससे सभी शत्रु उत्तेजित हो जाते हैं। इसी लिए इन विषयों में बहुत सावधान रहना पड़ता है।

मैं—वस्तु की शुद्धता-अशुद्धता को साफ़-साफ़ बिना जाने यदि उसका नैवेद्य इष्टदेवता को लगाया जाय तो क्या अपराध नहीं लगता? और इससे इष्टदेवता की कुछ हानि तो न होगी?

गोस्वामीजी—नहीं, कुछ अपराध नहीं लगता। क्योंकि वही तो व्यवस्था है। हाँ, वैसा न करने से बचने का कुछ उपाय नहीं है। इष्टदेवता की भी कुछ हानि नहीं होती। रीति के अनुसार नैवेद्य लगाने से इष्टदेव समझ लेते हैं, सावधान भी हो जाते हैं। उससे किसी का अनिष्ट नहीं होता।

मैं—इष्टदेवता की कृपा से भोजन की सामग्री शोधित हो जाने पर भी तो दुबारा दूषित हो सकती है; इसलिए मैं प्रत्येक ग्रास का नैवेद्य लगाता जाता हूँ। उच्छिष्ट वस्तु का वारंवार नैवेद्य लगाने से इष्टदेवता का कुछ अनिष्ट तो नहीं होता?

गोस्वामीजी—नहीं, कुछ नहीं होता। ऐसा ही करना चाहिए। इसी लिए तो भोजन करते समय बहुत से ब्राह्मण बात-चीत नहीं करते, मौन रहते हैं। देश में बहुत से ब्राह्मणों के बीच इस समय भी यह नियम प्रचलित है। पहले ऋषियों ने इन बातों को ख़ूब आवश्यक समझ लिया था। इसी से हमारे भले के लिए वे इनको शास्त्र आदि में लिख गये हैं। बहुत तपस्या करके जिन महासत्य भ्रम-रहित विषयों का उन्होंने आविष्कार किया था उसके तत्त्व को बिना समझे-बूझे, एकदम कुसंस्कार कहकर उड़ा देना ठीक नहीं है। ऋषियों ने सत्य समझकर जिसको प्रत्यक्ष कर लिया था उसी को हमारे कल्याण के लिए वे छोड़ गये हैं। कुछ झूठी बातों को लिख जाने में उनका तो रत्ती भर भी स्वार्थ न था। हम लोग वास्तविक

धर्म को प्राप्त करें, इसी के लिए वे शास्त्र आदि लिख गये हैं। जो सत्य समझो उसी को किये जाओ। सभी नियमों का प्रतिपालन तुम इस समय न कर सकोगे; इसलिए जितना बन जाय उतना करते जाओ; इसी से बहुत लाभ होगा। सभी नियमों का पालन करना सहज काम होता तब तो सभी लोग बड़ी आसानी से सिद्धि प्राप्त कर लेते। भोजन सब से बढ़कर भजन है। रीति के अनुसार भोजन करने लगने पर सब कुछ हो जाता है। फिर और कुछ नहीं करना पड़ता। सो तो कोई कुछ करता नहीं, जानता तक नहीं। भोजन के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अनियम होते रहते हैं, इससे बड़ा अनिष्ट होता है। इस समय जो बन जाय वही करते जाओ। धीरे-धीरे सब बातें मालूम हो जायँगी, करने भी लगोगे।

चरणामृत मिलना और उसके विषय में उपदेश

आश्विन शुक्ला ४, मङ्गलवार, १९४५

मेरी बीमारी बहुत बढ़ गई है; स्कूल में भी तातील है। इससे घर जाने को तैयार हो गया। घर के नाम से मेरा दिल दहल गया। गोस्वामीजी से दूर रहने पर, मुशकिल पड़ने पर, मेरा बचाव किस प्रकार होगा? यह सोचकर मैं घबरा गया। श्यामाचरण बख़शीजी ने कहा था—'गुरु का चरणामृत लेने से शारीरिक और मानसिक विकार शान्त हो जाते हैं।' मैं इसका कुछ अर्थ नहीं समझता, फिर भी बख़शीजी सच्चे मनुष्य हैं, मुझे उनके ऊपर पक्का विश्वास है। इसी से, भविष्यत् में बेढब उत्पात से बचने के लिए, चरणामृत को पास रखने की मुझे प्रवृत्ति हुई। गोस्वामीजी के पास गया तो देखा कि ख़ासी भीड़-भाड़ है; मैंने मन ही मन गोस्वामीजी से प्रार्थना की कि मुझे एकान्त में चरणामृत देने की कृपा कीजिए। वे थोड़ी ही देर में पेशाब करने के लिए कमरे से बाहर गये। यह मौक़ा पाकर मैं भी बरामदे में जा खड़ा हुआ। गोस्वामीजी ज्योंही समीप आये त्योंही प्रणाम करके मैंने उनका चरणामृत ले लिया। प्रार्थना की, 'गुरु में—सत्य वस्तु में मेरी निष्ठा हो'। और कुछ प्रार्थना न सूझी। चरणामृत देकर गोस्वामीजी ने कहा—जितना ही छिपाकर इसका उपयोग करोगे उतना ही लाभ होगा। इसको किसी के सामने मत लेना, किसी और को पता भी न लगने देना।

बारोदी के ब्रह्मचारीजी का सत्सङ्ग ; महापुरुष का विचित्र उपदेश और असाधारण आचरण

कार्तिक का तृतीय सप्ताह, सं०१९४५

घर आकर कुछ दिन बड़े आराम में बीते। फिर कई ओर से अनेक प्रकार के उत्पात होने लगे। एक के बाद एक प्रबल प्रलोभन ने आकर चित्त को बहुत ही विक्षिप्त और प्रक्षुब्ध कर डाला। सोचा, अब बचना मुशकिल है; अवश्य ही स्वेच्छाचारी होकर व्यभिचार में प्रवृत्त होना पड़ेगा। मैं प्रतिदिन चरित्र से फिसल पड़ने की आशङ्का करने लगा। दिन का कुचित्र रात को कल्पना द्वारा मूर्तिमान् होकर मुझे बेचैन करने लगा। शरीर अब पहले की अपेक्षा और भी निर्जीव हो गया। पढ़ना-लिखना एक प्रकार से छोड़ ही दिया। परीक्षा में पास होने की आशा छोड़ दी। साधन-भजन की ओर से भी चित्त उदास हो गया। दिन-रात मेरे माथे के ऊपर घने नीले आकाश में लगातार जो सप्तर्षिमण्डल देख पड़ता था वह, धीरे-धीरे मेघ में छिपकर, लुप्त हो गया। मैं हाय-हाय करके दिन-रात बिताने लगा। बुरे विचारों का फल आनन-फ़ानन मिल जाने पर भी मैं उनसे पीछा न छुड़ा सका। तब लाचार होकर मैंने अपना सब हाल ब्रह्मचारीजी को लिख भेजा। उन्होंने अपने हाथ से पत्र का उत्तर लिखा—

"निर्विघ्नो भव।

मन ख़राब होने पर यहाँ आकर उपदेश ले जाना। दर्द बढ़ जाने पर ताज़ा मिट्टी छाती में मल लेना। इससे दर्द कम हो जायगा। परीक्षा में पास हो जाओगे। कमीज़ और जूता मत पहनना। जाड़े से बचने को साधारण वस्त्र से काम लेना। सारी आपदाएँ टल जायँगी—डर नहीं है।

आशीर्वादक—ब्रह्मचारी"

पत्र मिलने पर ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने की मुझे प्रबल इच्छा हुई। मुहल्ले के एक नज़दीकी रिश्तेदार ब्राह्मण को साथी पाकर मैं बारोदी को रवाना हुआ। सबेरे से पैदल चलते-चलते कोई तीन बजे ब्रह्मचारीजी के पास पहुँचा। उन्होंने पहले पूछा—"हमारा पत्र पहुँच गया है?" मैंने "हाँ" कहा। ब्रह्मचारीजी ने पूछा—"आज तूने क्या खाया है?" मैंने कहा—"कुछ भी नहीं।" यह सुनते ही उन्होंने 'भज ले राम' को बुलाकर कहा—अजी आज जो लड्डू तुमने बनाये हैं वे सब ले तो आओ।

स्नेहमयी सेविका ने उसी दम थाली भर लड्डू लाकर ब्रह्मचारीजी के आगे रख दिये। उन्होंने मुझसे कहा—"ये सब खा लो।" मेरे साथी ब्राह्मण से भी खाने के लिए अनुरोध किया। उन्होंने कहा—इनको आप अपना प्रसाद कर दें तो खा लूँगा।

ब्रह्मचारीजी ने कहा—"प्रसाद क्या? जी चाहे तो खाओ।" मैंने ब्राह्मण से कहा—"जब वे दे रहे हैं तब प्रसाद तो हो ही गया। ले न लीजिए।" उनको तनिक टाल-मटोल करते देख ब्रह्मचारीजी ने मुझसे कहा कि तू ही सब के सब खाले। रसोईघर में थाली ले जाकर सेविका ने रख दी और मेरे लिए बैठने को आसन दिया। अब वह ब्रह्मचारीजी के कहने के अनुसार मुझसे कुल लड्डू खा लेने के लिए ज़िद करने लगी। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा। मुट्ठी भर भात से मेरा पेट भर जाता है; कोई आधे सेर से भी अधिक लड्डू मैं किस तरह खाऊँगा? खासकर पित्तशूल के दर्द में तो लड्डू विषतुल्य हैं। जो हो, ब्रह्मचारीजी की आज्ञा समझकर मैंने कुल लड्डू खा लिये। भज ले राम ने कहा—बाबा ने आज दोपहर को बुलाकर मुझसे कहा कि एक लड़का भूखा-प्यासा थका हुआ आ रहा है। बढ़िया लड्डू कुछ ज्यादा बना रक्खो, आते ही उसे खाने को देना।

लड्डू खाकर ब्रह्मचारीजी के पास जा बैठा। हिल-मिलकर देर तक बातचीत होती रही। चौथे पहर ५॥ बजे ब्रह्मचारीजी के लिए रसोई बनी। भोजन करके उन्होंने मुझसे प्रसाद पाने के लिए कहा। मैंने कहा—"अभी-अभी तो मैंने थाली भर लड्डू खाये हैं। इतना अधिक मैंने बहुत दिनों से नहीं खाया है। अब और किस तरह खाऊँगा?" उन्होंने कहा—"जाकर भोजन करने को बैठ तो, अभी भूख लग आवेगी।" मैं आज्ञा मानकर भोजन करने को जा बैठा। महात्मा की अद्भुत कृपा है! प्रसाद की विचित्र सुगन्ध से मुझे लोभ हुआ, भूख भी लग आई। रुचि के साथ, नियमित आहार से कोई चौगुना खा गया। रात को ब्रह्मचारीजी के कमरे के पास ही, रसघर में मेरे सोने का प्रबन्ध किया गया। गहरी रात को एकाएक आँख खुलने पर सुना कि ब्रह्मचारीजी भजन गा रहे हैं—"प्राण गौराङ्ग, नित्यानन्द—जीवनकृष्ण, जीवनकृष्ण*।" गाते-गाते वे रोने लगे। सवेरे उठकर प्रातःकृत्य से छुट्टी पाकर मैं ब्रह्मचारीजी के पास जा बैठा। उन्होंने मुझसे कहा—अरे तुझे कुछ कहना-सुनना हो तो इस समय कह।

---

* ब्रह्मचारीजी गोस्वामीजी को "जीवनकृष्ण" कहा करते थे।

मैं—'काम' की असह्य पीड़ा से मैं बहुत ही बेचैन रहता हूँ। क्या उपाय करूँ?

ब्रह्मचारीजी—करेगा क्या, रमण कर। क्या तुझे मिलती नहीं?

मैं—मिलने की क्या कमी है; किन्तु उसमें पाप जो लगता है!

ब्रह्मचारीजी—अच्छा, जा; तुझे कुछ पाप न लगेगा। सब पाप मैं ले लूँगा।

मैं—बदनामी होगी।

ब्रह्मचारीजी—कौन बदनाम करेगा? ज्ञानी तो निन्दा करेंगे नहीं—मूर्ख करेंगे सो किया करें। उनके बदनाम करने से क्या होता है?

मैं—ज्ञानी लोग निन्दा क्यों न करेंगे? उस काम की निन्दा तो सभी करते हैं।

ब्रह्मचारीजी—डेढ़-दो वर्ष के बच्चे को चलना-फिरना-दौड़ना सीखते तूने देखा है न? ८।१० हाथ दौड़कर धड़ाम से गिर पड़ता है, और फिर उठ बैठता है। २५ वर्ष का कोई युवक यदि उस बच्चे को गिरते और उठते देखकर हँसे, दिल्लगी करे, तो उसे क्या कहेंगे? वह साला मूर्ख है न? वह नहीं जानता कि न जाने कितनी बार गिरने और फिर खड़े होने से उसकी टाँगें मजबूत हुई हैं और अब वह दो कोस दौड़ सकता है। बच्चे के गिरने और खड़े होने से क्या ज्ञानी लोग निन्दा करते हैं? ज्ञानियों को मालूम है कि हजारों बार पछाड़ खाकर गिरने, उठने और सँभलने से ही बल आता है।

मैं—अच्छा, तो मैं आपके उपदेश के अनुसार ही जाकर बर्त्ताव करूँगा; किन्तु उससे पीछा छुड़ाने (निवृत्ति) की बात तो आप नहीं बतलाते?

ब्रह्मचारीजी—"मैं तुझसे निवृत्ति की बात क्यों कहूँ? तेरा कर्म ही तुझे निवृत्त कर देगा। तेरी क्या मजाल कि मेरे उत्साह देने से ही तू कर लेगा? यही जानकर तो मैं तुझसे कहता हूँ। तू जाकर देख न ले! अब धर्म-धर्म करके उतावला न हो। कर्म को बेबाक किये बिना, कुछ भी क्यों न कर, कुछ होने का नहीं। अब जाकर लिख-पढ़, इस तरह प्रारब्ध को निःशेष कर। इसके बाद धर्म प्राप्त होगा। मैं तो और भी १०० वर्ष तक मौजूद हूँ; सिर्फ़ तुम्हीं लोगों के लिए हूँ, मुझे कुछ जरूरत नहीं है।" अब ब्रह्मचारीजी ने मुझसे चले जाने के लिए कहा। मैंने कहा—अभी तो जाने को मेरा जी नहीं चाहता; कुछ दिन तक आपके पास रहने की इच्छा है। ब्रह्मचारीजी—अच्छी बात है, रह सके तो बना रह; तेरा कर्म ही तुझे घसीट ले जायगा। अब उन्होंने गोस्वामीजी की चर्चा छेड़ी,

कहा—"गोस्वामी ने देश-विदेश में मुझे महापुरुष प्रसिद्ध करके मेरा सत्यानाश कर दिया है। २५ वर्ष से मैं यहाँ बड़े आराम से रहता था; अब सुबह से शाम तक रोगियों का कराहना और मामले-मुक़दमे की बातें सुनता रहता हूँ। क्या मैं इसी के लिए यहाँ रहता हूँ? साला अन्धा, मूर्ख! छोटे-छोटे बच्चों को योग सिखाता है और 'परमहंसजी परमहंसजी' कहता है! इस प्रकार गोस्वामीजी को बहुत सी बातें कहकर वे हम लोगों के साधन की बुराई भी करने लगे। उन बातों को सुनकर मैं रो पड़ा। उसी समय चल देने को तैयार हो गया। ब्रह्मचारीजी की बातों से चिढ़कर मैं, भोजन करने के बाद, बारह बजे के पश्चात् ढाका को चल पड़ा।

ब्रह्मचारीजी के यहाँ जाने की मनाही

गेंडारिया में आम के पेड़ तले गोस्वामीजी को एकान्त में पाकर मैंने ब्रह्मचारीजी का सारा हाल कह सुनाया। सुनकर उन्होंने कहा—

अब तुम लोगों में से जो कोई भी ब्रह्मचारीजी के पास जायगा उसी को वे एक-आध बार हिला-डुलाकर देखेंगे। उन्होंने मुझसे खेद के साथ कहा—"ऋषि-मुनियों का कलेजा तू गीदड़ों-कुत्तों को लुटा रहा है!" मैंने कहा—मैं तो वही करता हूँ जिसकी आज्ञा परमहंसजी देते हैं। उन्होंने कहा—"अच्छा, मैं एक बार अच्छी तरह देखूँगा!" अब उन्होंने वही काम करना आरम्भ कर दिया है। इसमें तुम लोगों की क्या हानि है? वे मेरी ही परीक्षा कर रहे हैं! उन्होंने कहा था—तेरी नसों-आँतों को खींचकर मैं निकाल लूँगा। वे अब वही कर रहे हैं। उनसे जो बने सो कर लें! हाँ, अब तुम लोग कोई उनके पास जाओगे तो नुक़सान उठाओगे। यह बात सभी को जतला देना अच्छा है।

हम सब लोगों को गोस्वामीजी की उक्त सूचना दे दी गई। प्रायः सभी ने इसके बाद ब्रह्मचारीजी के यहाँ आना-जाना बन्द कर दिया। किन्तु जिन लोगों ने उनके यहाँ का आना-जाना नहीं छोड़ा था वे थोड़े ही दिनों में प्रारब्ध-वादी बनकर साधन-भजन छोड़-छाड़कर खासे झमेले में पड़ गये।

बड़े दादा को बिना माँगे दीक्षा मिल जाने से मेरी नाराज़गी। महाराज का सान्त्वना देना।

बड़े दादा के यहाँ से एक पत्र आया। उन्होंने लिखा है—"दीक्षा पाने के लिए मैं बहुत ही उतावला हो रहा था और गोस्वामीजी की कृपा की बाट जोह रहा था। इसी बीच एक दिन श्रीयुक्त रामानन्द स्वामी (रामकुमार विद्यारत्न, ब्राह्मधर्म-प्रचारक) अकस्मात् फ़ैज़ाबाद आये। मुझे पहले से कुछ बताये बिना वे मुझे गुप्तारघाट पर घुमाने को ले गये। वहाँ पर, मेरी इच्छा न होने पर भी, उन्होंने कान में नाम सुनाकर कहा—'मैंने तुम को दीक्षा दे दी। इस नाम का जप किया करो।' मैंने इसे दैव की इच्छा समझकर दीक्षा ही मान लिया है; नियमानुसार जप किया करता हूँ। लाभ भी हो रहा है।"

मार्गशीर्ष शुक्ला ४ से ८ तक

दादा का पत्र पाते ही मेरा तो सिर चक्कर खा गया। प्राण बहुत ही बेचैन होने लगे। मैंने तुरन्त ही गोस्वामीजी के यहाँ जाकर उनके हाथ में वह पत्र दे दिया। उसे पढ़कर वे तनिक मुसकुराते हुए बोले—**यह तो ख़ूब रही! ख़ैर, हो तो गई। भगवान् न जाने कितनी तरह से लोगों का भला करते हैं!**

मैं—यदि आप पहले से आज्ञा देकर दादा को तनिक सूचित कर देते तो शायद ऐसा न होता।

गोस्वामीजी—**क्यों? यह क्या बुरा हुआ है? भगवान् की इच्छा से जो होता है वह क्या कभी बुरा हो सकता है? यह तो अच्छा ही हुआ है।**

मैं—यदि आप उनपर कृपा न करेंगे तो न बनेगा। मैं अकेला ही आपकी कृपा का उपयोग नहीं करना चाहता।

गोस्वामीजी—**क्यों? वे अपना काम करें और तुम अपना काम किये जाओ। जिसका जो काम है वह उसके पास है।**

इस पर कुछ न कहकर मैं रोने लगा। बारबार मन ही मन प्रणाम करके मैं गोस्वामीजी से प्रार्थना करने लगा—"यदि आप कृपा करके दादा को अपने चरणों के निकट नहीं बुलाते हैं तो फिर मुझे भी छोड़ दीजिए। मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है। दादा को

छोड़कर मुक्ति पाने की भी मुझे इच्छा नहीं है।" मेरी ओर थोड़ी देर तक ताकते रहकर गोस्वामीजी ने आँखें बन्द कर लीं। थोड़ी देर बाद आवेश की अवस्था में धीरे-धीरे कहने लगे—एक वैद्य पेड़ की सींकों के साथ कोई वस्तु मिलाकर रोगी को ओषधि दिया करते थे; रोगी चङ्गा हो गया। लोग तो दवा में सिर्फ़ सींकों को ही देखते हैं; दूसरी चीज़ को नहीं देखते। एक आदमी ने सोचा, 'यह सींकों का ही गुण है।' वस्तु को छोड़कर उन्होंने एक रोगी को उन्हीं सींकों का सेवन करने को दिया। फलतः रोगी चङ्गा नहीं हुआ।

थोड़ी देर में फिर बोले—एक आदमी ने धान की खेती करने का विचार किया। बहुत ही अच्छी उपजाऊ ज़मीन पाकर उसने सोचा कि किसान लोग मामूली ख़राब ज़मीन में धान छींट देते हैं, इसी से कैसी बढ़िया धान की फ़सल होती है। मैं इस बढ़िया ज़मीन में धान न बोने दूँगा; जैसी बढ़िया मिट्टी है वैसे ही बढ़िया धान के चावल बोऊँगा। उसने भूसी हटाकर साफ़ चावल बोये। धान बोने से सचमुच बढ़िया फ़सल होती। चावल बोने से कुछ भी न उगा।

अस्पष्ट रूप से इसी प्रकार और भी बहुत सी बातें कहीं। साफ़-साफ़ समझ में न आने से मैंने उनको यहाँ नहीं लिखा है। इसी समय गोस्वामीजी की आँखों से आँसू गिरने लगे। थोड़ी देर में आँखें पोंछकर सिर उठाया और मेरी ओर ताककर कहा—तुम्हें दुःखित न होना चाहिए। उन्हें तो मेरे पास आना ही पड़ेगा। इस साधन के करने से उन्हें फल न मिलेगा; वे तृप्त भी न होंगे। हाँ, इस समय थोड़ी सी सामयिक शान्ति उन्हें मिल सकती है। अभी वे उसी साधन को करते जायँ; उससे अच्छी शिक्षा हो जायगी। फिर कुछ समय बीतने पर ख़ासा फल मिलेगा। तुम भूल कर भी उन्हें निरुत्साह न करना। ख़ूब उत्साहित करते हुए पत्र लिखो।

मैं—दादा को आना पड़ेगा; लेकिन बहुत सा समय बर्बाद हुआ।

गोस्वामीजी—नहीं, यह बर्बाद होना नहीं है। इससे उनकी भलाई ही होगी। और इस घटना से तुम्हें भी बहुत लाभ होगा। वह तुमको जल्दी

मालूम हो जायगा। निर्दिष्ट समय के बीतते ही समझ जाओगे, इस घटना से तुम्हारे दादा का भी कितना ही उपकार होगा।

विद्यारत्नजी ने दादा को दीक्षा देते समय बतला दिया था—'छः महीने में सिद्ध हो जाओगे।'

एक महीने में सिद्धि पाने का उपाय बतलाना

मार्गशीर्ष शुक्ला ९, मंगलवार

बहुत ही थोड़े समय में सिद्धावस्था प्राप्त कर लेने की एक रीति आज गुरुदेव ने हम लोगों को बतला दी। अवस्था के अनुसार नियमों की रक्षा करके एक महीने तक निर्दिष्ट रीति से कोई साधन करे तो अवश्य ही उसे सिद्धि प्राप्त हो जाय। यदि किसी को यह आशङ्का हो कि सिद्धि प्राप्त होने के पहले ही शरीर छूट जायगा तो, उसका जी चाहे तो, वह सहज में ही एक महीने तक नियमों की रक्षा करके इस रीति से साधन कर सकता है; सिद्धि अवश्य हो जायगी। नियम बहुत कठोर हैं, इसलिए गुरुजी ने करने के लिए किसी से जिद नहीं की; इतना ही कहा कि जिसका जी चाहे वह इस तरह साधन कर सकता है। नियम ये हैं:—

१—किसी का साथ न करे। विशेष रूप से स्त्रियों को देखना, छूना, उनके सम्बन्ध में कुछ सुनना और चिन्तन आदि सब तरह से छोड़ दे।

२—एकान्त में बहुत ही शुद्धतापूर्वक दिन को एक ही बार अपने हाथ से बनाकर अरवा चावल का भात खावे।

३—सोवे नहीं। बहुत ही सुस्ती मालूम होने पर, ज़रूरत हो तो, हाथ का ही तकिया बनाकर ज़मीन पर लेट रहे।

इन बाहरी नियमों का पालन करने के साथ-साथ, निर्दिष्ट रीति से मुद्राबन्धन करे और दिन-रात सिद्धासन में बैठकर प्राणायाम, तथा रीति के अनुसार कुम्भक में नाम का साधन, करना चाहिए।

इस प्रकार नियमों का अवलम्बन करके यदि कोई एक महीने तक साधन करता रहे तो उसे अवश्य सिद्धावस्था प्राप्त हो जायगी। कम से कम तीन दिन भी यदि कोई कर लेगा तो ऐसी कोई विशिष्ट अवस्था प्राप्त हो जायगी जो औरों को दुर्लभ होगी। इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं है।

मुद्रा दिखलाकर कहा—इस प्रकार मुद्राबन्ध करके आसन में बैठने का अभ्यास हो जाने पर काम-क्रोध आदि शत्रु निर्बल हो जाते हैं; देह साधन के लिए उपयुक्त, सबल और नीरोग रहती है।

गेंडारिया आश्रम में महाराज की कुटी

गेंडारिया के आश्रम का सञ्चार होने के कुछ दिन बाद ही गोस्वामीजी की आसनकुटी बनाई गई। गोस्वामीजी के शिष्य श्रीयुक्त कुञ्ज घोष महाशय ने यह बनवा दी थी। आम के पेड़ के उत्तर-पूर्व कोने में, ८ हाथ के अन्तर पर, यह कुटी है।

छोटी कुटिया दक्षिण-द्वारी, पूर्व-पश्चिम लम्बी है। १० हाथ की इसकी लम्बाई और ८ हाथ की चौड़ाई है। मिट्टी की दीवारें हैं; कुटी पर चौपहला, फूस का, छप्पर है। कुटी के बीचों-बीच दक्षिण ओर सिर्फ एक दरवाजा है और उसके पश्चिमी भाग में, उत्तर और दक्षिण की दीवार में छोटी-छोटी दो (१ फुट चौड़ी और १॥ फुट लम्बी) खिड़कियाँ आमने-सामने हैं। कुटी के भीतर दो कोठरियाँ हैं। दरवाजे के पूर्व ओर सटी हुई उत्तर-दक्षिण लम्बी एक ऊँची दीवार समूचे घर को पूर्व-पश्चिम दो भागों में अलग करती है। पूर्व ओर के योग-प्रकोष्ठ में जाने के लिए एकमात्र ४ फुट लम्बा और २ फुट चौड़ा बिना चौखट का तङ्ग रास्ता है; वह भीतर की दीवार के उत्तर ओर है। इस प्रकोष्ठ में ऐन दोपहर के समय भी उजेला नहीं पहुँचता; अँधेरा बना रहता है। इसी के दक्खिन ओर की दीवार से सटा हुआ गोस्वामीजी का आसन है जिसका मुख उत्तर ओर है। सामने सिर्फ धूनी है; कोठरी बिलकुल खाली है।

गोस्वामीजी साधारणतः पश्चिम ओर की कोठरी में ही बैठते हैं। पूर्व ओर की अँधेरी कोठरी में गोस्वामीजी ने पञ्चमुण्ड आसन करने का विचार किया था—आसन बनाने की तैयारी भी हुई थी। किन्तु एकाएक उन्होंने अपना इरादा बदल दिया। सुना, उन्होंने कहा था कि—'पञ्चमुण्ड आसन बनाकर उसपर एक बार बैठने से फिर उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र कहीं आना-जाना नहीं हो सकेगा। अतएव अब उसकी जरूरत नहीं है।' किन्तु पञ्चमुण्ड आसन के न होने पर भी दिन को किसी-किसी निर्दिष्ट समय में वे उसी आसन में बैठते थे। गोस्वामीजी के आश्रम-कुटीर के उत्तर ओर दीवार के बाहरी हिस्से में उन्होंने

गेण्डारिया—आश्रम

ढाका ब्राह्मसमाज
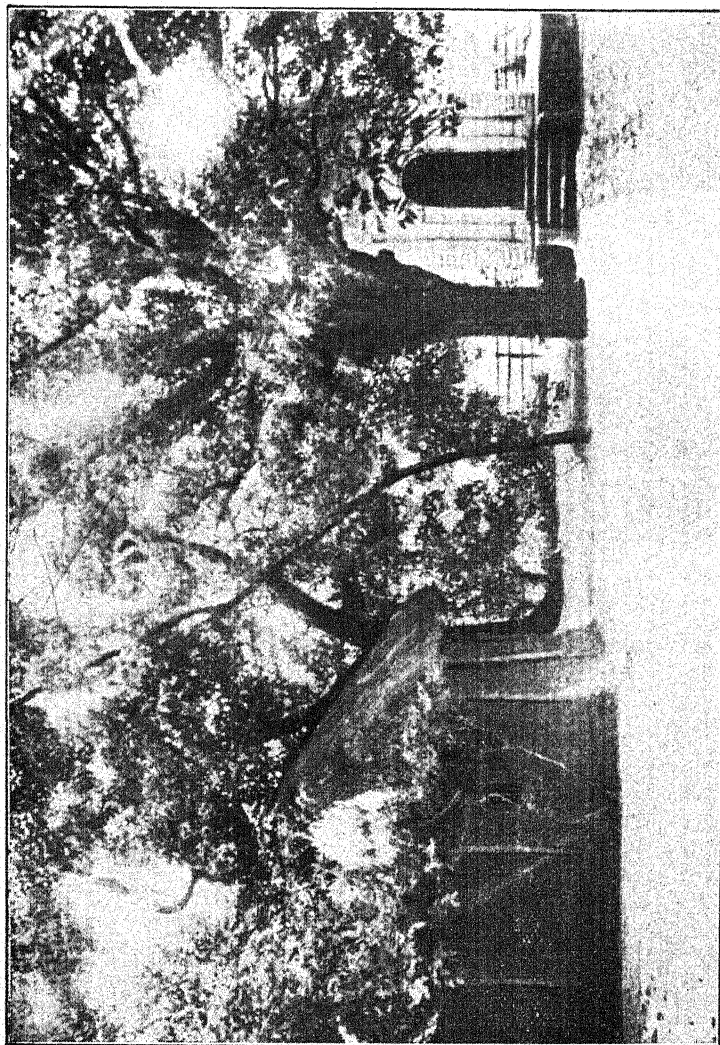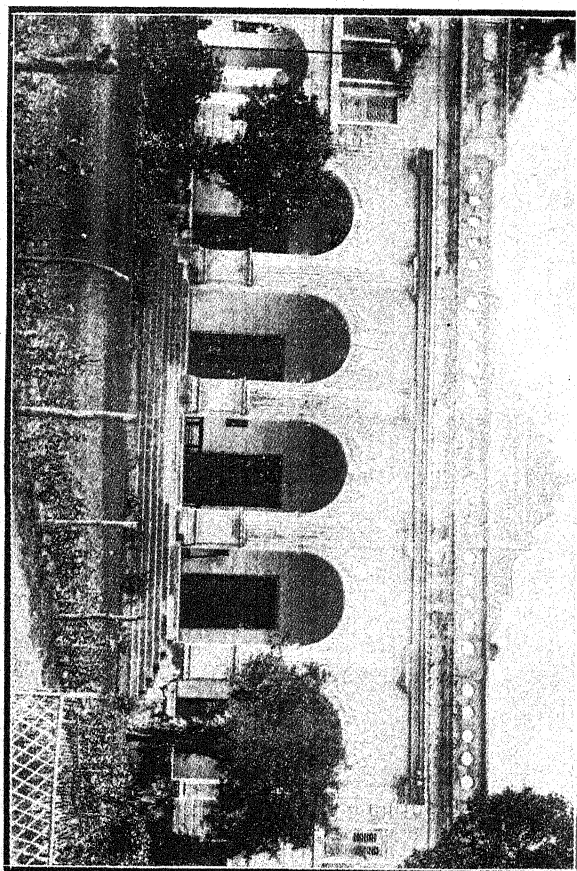
अपने हाथ से झण्डे का चिह्न बना कर उसके ऊपर श्रीश्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु का नाम लिख दिया है और आसनघर के भीतर उसी दीवार में कुछ उपदेश, चाक मिट्टी से, लिख रक्खे हैं।

(क) कुटी के उत्तर ओर की दीवार में बाहरी तरफ़ लिखा है—

ॐ श्रीकृष्णचैतन्याय नमः
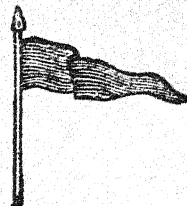
(ख) कुटी के भीतर की दीवार में लिखा है—

ऐसा दिन नहीं रहेगा।

अपने मुँह अपनी प्रशंसा न करना।

पराई निन्दा मत करना।

अहिंसा परमो धर्मः। (अहिंसा ही सबसे बड़ा धर्म है)।

सभी जीवों पर दया करो।

शास्त्र और महाजनों (महापुरुषों) पर विश्वास करो।

शास्त्र और महाजन के आचार के साथ जिसका मेल न हो उस काम को विष की तरह छोड़ दो।

नाहङ्कारात् परो रिपुः। (अहङ्कार से बढ़कर दूसरा शत्रु नहीं है)।

साधक के लिए प्रतिदिन करने की विधि

मार्गशीर्ष शुक्ला १३, रविवार, सं० १९४५

आज मेरे साधन-जीवन के तीसरे वर्ष का आरम्भ हुआ। मैं तीसरे पहर गेंडारिया आश्रम में गया। गोस्वामीजी समाधि में मग्न हैं। देखा कि कुछ गुरुभाई उनके सामने चुपचाप बैठे हुए हैं। थोड़ी देर में गोस्वामीजी को बाहरी चेत हुआ। वे धीरे-धीरे हम लोगों से कहने लगे—प्राणायाम का काम तुम लोगों का प्रायः पूरा होने को है। अब साथ-साथ कुछ नियमों की रक्षा करते हुए चलने की चेष्टा करना।

१. पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश—इन पञ्चभूतों में रीति के अनुसार दृष्टि-साधन करने का अभ्यास करना।

२. शम—अन्तरिन्द्रिय का शमभाव। सदा चित्त की प्रशान्तता की रक्षा किये रहना।

३. दम—इन्द्रियों के विषयों से जो बुरी लतें पड़ जायँ उनसे मन को सदा बचाये रहना।

४. तितिक्षा—सभी प्रकार के दुःख की अवस्था में क्षमा, सहनशीलता को ग्रहण किये रहना।

५. उपरति—मृत्यु और परलोक का ख़याल रखना। प्रतिदिन सोचना कि देह, सम्पत्ति और गृहस्थी आदि सब अनित्य है, असार है।

६. द्वन्द्वसहिष्णुता—सुख-दुःख, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति—सभी विरुद्ध अवस्थाओं में चित्त की अवस्था को अविचलित, एक ही ढँग से स्थिर, रखने की चेष्टा करना।

७. स्वाध्याय—ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों का पठन-पाठन करते रहना। महाभारत के मोक्षपर्व और श्रीमद्भगवद्गीता आदि से कम से कम एक-दो श्लोक तो प्रतिदिन पढ़ना।

८. साधु-सङ्ग—प्रतिदिन या तो साधु-महात्मा के दर्शन करना या धर्म-विषय की चर्चा करना।

९. दान—जिससे जो बन पड़े, कम-से-कम अच्छी बात का ही दान करना।

१०. तपस्या—साधन जो कि किया करते हो।

प्रतिदिन इन नियमों की रक्षा करने की चेष्टा करना।

प्रतिदिन इन नियमों का पालन करते हुए चलना तो मुझे अपने लिए बिलकुल असम्भव जान पड़ता है। मैंने प्रणाम करके गुरुदेव से यह आशीर्वाद माँगा कि प्रतिदिन मैं इन नियमों को कम से कम एक बार स्मरण तो कर ही लिया करूँ। कीर्तन हो चुकने पर आज रात को कोई ९ बजे मैं डेरे पर आया।

स्कूल की पढ़ाई छोड़कर पश्चिम को जाने की आज्ञा । ध्यान और आसन का उपदेश

कुछ समय से मेरा दर्द बहुत ही बढ़ता जाता है । दिन-रात लगातार दुःसह पीड़ा को मैं अब सहन नहीं कर सकता । शरीर की बुरी हालत देखकर श्रीयुत रामकुमार विद्यारत्न मुझसे पढ़ना-लिखना छोड़-छाड़कर पश्चिम चले जाने के लिए कह रहे हैं । पढ़ने-लिखने का अब मुझे रत्ती भर भी उत्साह नहीं है । बहुत दिन तक घर बने रहने के बाद फिर कुछ दिन से पढ़ाई शुरू कर दी है । अब अगर पढ़ाई बन्द किये देता हूँ तो बड़े भाई लोग क्या कहेंगे, सदा यही याद आता है । आज अकस्मात् बड़े दादा का पत्र आ गया । विद्यारत्नजी दादा के गुरु हैं; मालूम नहीं, उन्होंने दादा से मेरे सम्बन्ध में क्या कह दिया है । विद्यारत्नजी की बात का उल्लेख करके दादा ने मुझे लिखा है कि पढ़ना-लिखना छोड़कर तुरन्त पश्चिम को चले आओ । अपनी वर्तमान दुरवस्था में भगवान् की अद्भुत सकरुण व्यवस्था देखकर मैं बहुत ही विस्मित हुआ । विद्यारत्नजी से दादा के दीक्षा ले लेने की खबर पाकर मुझे मन में बड़ी चोट लगी थी; गोस्वामीजी ने मुझसे तभी कहा था—'इससे तुम्हें भी बहुत लाभ होगा । यह तुम्हें जल्दी मालूम हो जायगा ।' गुरुदेव की वह बात, इस समय बारबार याद आकर, मेरे संशय-पूर्ण अविश्वासी चित्त को भी उनके शान्तिप्रद श्रीचरणों में संलग्न कर रही है । गुरुदेव के चरणों को वारंबार मन ही मन प्रणाम करके मैंने प्रार्थना की—'दयालु महाराज, ऐसा करना कि अब मैं हमेशा के लिए पढ़ाई के जञ्जाल से छुटकारा पाकर स्कूल-कारागार से रिहा हो जाऊँ और सदा तुम्हारी सेवा में हाजिर बना रहूँ' ।

दादा का पत्र मिलने पर आधे घंटे में ही मैंने पढ़ाई की पुस्तकों को एकत्र करके कसकर बाँध दिया; डेरे के रहनेवाले सभी लोग स्कूल-कालेज जाने के लिए तैयार होने लगे, और मैं पश्चिम जाने की अनुमति माँगने को गेंडारिया में गोस्वामीजी के पास चला । रास्ते में मुझे देखकर श्यामाचरण पण्डितजी ने कहा—"इस समय गोस्वामीजी के दर्शन आसानी से न होंगे ।" कारण पूछने पर उन्होंने कहा—"आजकल वे दिन-रात ही आसन-घर में बन्द रहते हैं । एक महीने तक पञ्चमुण्डासन पर बैठकर वे बहुत ही कठोर साधन करेंगे । इस दर्मियान बाहरी लोगों को उनके दर्शन बहुत कम मिलेंगे । शिष्यों को

भी निर्दिष्ट समय पर ही दर्शन मिलेंगे।" मैंने पूछा—"पञ्चमुण्डासन पर गोस्वामीजी को साधन करने की अब ऐसी क्या जरूरत हो गई?" श्रद्धेय पण्डितजी ने कहा—"वे परमहंसजी की आज्ञा बतलाते हैं।" अब गोस्वामीजी प्रायः सर्वदा समाधि में मग्न रहा करते हैं। पञ्चमुण्डासन की सिद्धि हो जाने पर परलोकगत पाँच महात्मा लोग गोस्वामीजी की देह की निगरानी करने के लिए हर घड़ी नियुक्त रहेंगे। उक्त आत्माएँ सारी आपत्तियों, संकटों, प्राकृतिक दुर्घटनाओं तथा दुर्दैव से देह को बचाये रहेंगी। बख़शी दादा की बात सुनकर मैं दङ्ग हो गया। गोस्वामीजी के यह अद्भुत साधन करने की बात सभी गुरुभाई नहीं जानते। गुरुदेव के जो ३।४ घनिष्ठ शिष्य गेंडारिया में रहते हैं उन्हीं को यह हाल मालूम है। इस सम्बन्ध की साफ़-साफ़ सब बातें जानने का मुझे बड़ा कुतूहल हुआ।

मैं मन ही मन गोस्वामीजी से दर्शन देने की प्रार्थना करके गेंडारिया आश्रम में पहुँचा। भजन-कुटी के पास ५।७ मिनिट तक बैठते ही गोस्वामीजी भीतर से निकले। उन्होंने मुझे देखकर अपने-आप बुलाकर कहा—**तुम्हारा शरीर तो बहुत ही सुस्त देख पड़ता है। अब क्या करने का इरादा है?**

मैं—दादा ने पश्चिम में आने के लिए लिखा है। अब क्या करूँ?

गोस्वामीजी—**अच्छा! अभी तो तुम्हें यही करना चाहिए। अब तो परीक्षा का समय मालूम होता है? सो क्या करोगे? तन्दुरुस्ती ख़राब रहने पर पढ़ाई करना अच्छा नहीं।**

मैं—जो इस बार परीक्षा में न बैठा तो फिर कभी इस झमेले में न पड़ूँगा। इस समय आप जो कहें वही करूँ।

गोस्वामीजी—**स्कूल में पढ़कर क्या करोगे? तुम भी ख़ूब हो! शरीर नष्ट हो जाय तो परीक्षा पास करके क्या करोगे? उद्देश्य तो विद्या को प्राप्त करना है; बस, वही हो जाना चाहिए। जितने बड़े बड़े आदमियों—मिल प्रभृति—का हाल सुना जाता है उनमें से स्कूली शिक्षा तो बहुतों को नहीं मिली। स्कूल में पढ़े बिना भी विद्या प्राप्त की जा सकती है। यही करो। स्कूल की पढ़ाई तुम्हारे लिए सुभीते की नहीं है। जिनकी तन्दुरुस्ती ख़राब है उनका स्कूल में पढ़ना मैं ठीक नहीं समझता। हमारे देश में जिन लड़कों-**

बच्चों को बीमारी देखी जाती है उनमें से बहुतों को वह स्कूल की पढ़ाई की बदौलत ही हुई है। जल्दी-जल्दी खा-पीकर तुरन्त ही स्कूल को दौड़ते हैं, दिन भर बेहद परिश्रम करते हैं; इसके ऊपर परीक्षा की फ़िक्र दिमाग़ को ख़राब कर देती है। इन्हीं कारणों से तो इतनी बीमारियाँ हैं, समय से पहले ही बुढ़ापा धर दबाता है। तुम अपने दादा के पास चले जाओ। वहाँ पर तुम्हारा शरीर और मन सब कुछ अच्छा रहेगा। उस तरफ़ बीच-बीच में ख़ूब अच्छे-अच्छे लोगों के दर्शन भी मिलेंगे। यही तुम्हारे लिए अच्छा है। तनिक रुककर फिर कहा—अपने दादा को इस साधन की कोई भीतरी बात न बतलाना। वह बतलाने की मनाही है। और उन्हें हमारे साधन के भीतर लाने की कुछ चेष्टा मत करना। उनके लिए तुम तनिक भी उद्योग मत करना। जब उनका समय आवेगा तब वे आ जायँगे। तुम्हारे कुछ करने-धरने की ज़रूरत नहीं। हम लोगों का यह साधन प्रचार करने की चीज़ नहीं है। जिसको आवश्यकता होती है, उसके आगे—समय आते ही—भगवान् स्वयं प्रचार कर देते हैं। अब गोस्वामीजी ने बहुत ही संक्षेप में बतलाया कि अमुक-अमुक ने बड़ी विचित्र रीति से दीक्षा ली है। इच्छा है कि उन लोगों के मुँह से सुनकर ठीक-ठीक सब हाल—समय और सुभीता पाकर—विस्तृत रूप में लिखूँगा। मैंने पूछा—रामकुमार बाबू कैसे आदमी हैं? क्या वे ब्राह्मसमाज के साधन के सिवा अन्य किसी प्रकार का साधन करते हैं?

गोस्वामीजी—हाँ, वे और प्रकार का साधन करते हैं। किन्तु उनको शक्ति प्राप्त नहीं हुई है। शक्ति पा जाते तो उसे छिपा न सकते। वह अवश्य प्रकट हो जाती।

मैं—उस दिन रामकुमार बाबू कहने लगे, "तुम लोगों के साधन में कुछ दोष नहीं है, लेकिन एक बात यह है कि बहुत अधिक प्रकट हो गया है। साधन को गुप्त ही रखना चाहिए।"

गोस्वामीजी—यह तो ठीक बात है किन्तु शक्ति छिपी नहीं रहती। और सत्य का तो नाश नहीं है। सत्य वस्तु को प्रकट करने में किसका डर है? जो सत्य है वह अवश्य प्रकट होगा। जब उन्हें शक्ति प्राप्त हो जायगी तब

देख लेना कि वह गुप्त नहीं रही। रामकुमार बाबू की ख़ूब श्रद्धा-भक्ति करना; वे अच्छे आदमी हैं। हमारे इस साधन में सभी की भक्ति करने की आज्ञा है। रास्ते के कुली-मज़दूर की भी भक्ति करना। भक्ति के पात्र सभी हैं। बिना आगा-पीछा किये जो व्यक्ति जितने अधिक लोगों की भक्ति करेगा उसका उतना ही अधिक लाभ होगा।

मैंने पूछा—आपने साधन के जो नये नियम बतलाये हैं, क्या मैं उनका पालन करूँगा?

"हाँ हाँ, इस तरह आसन लगाना; और यहाँ दृष्टि को जमा करके ध्यान करना।" अब गोस्वामीजी ने आसन लगाकर दिखा दिया और ध्यान का स्थान भी बतला दिया।

मैं—ध्यान क्या है? ध्यान किसे कहते हैं? मैं तो कुछ भी नहीं जानता। काहे का ध्यान करूँगा?

गोस्वामीजी—अच्छा तो आसन लगाये हुए बैठे-बैठे नाम का जप करना, और आँखें बन्द करके दृष्टि को यहाँ स्थिर रखना। फिर अपने आप सब मालूम हो जायगा।

मैंने पूछा—आँखें बन्द रखकर फिर वहाँ दृष्टि को किस प्रकार स्थिर रक्खूँगा?

गोस्वामीजी—आँखें बन्द रहेंगी, मन को उस स्थान पर स्थिर करना।

मैं—बिना कुछ पाये ख़ाली मन एक जगह किस तरह ठहरेगा?

गोस्वामीजी—अभ्यास करने से ही कुछ समय के बाद अनेक प्रकार की ज्योति और रूप आदि के दर्शन होने लगेंगे। अभी मन को एक स्थान पर स्थिर रखने की चेष्टा करो। फिर तुम्हारे लिए जो कुछ ज़रूरत होगी वह सब मालूम कर ले सकोगे।

मैंने जानना चाहा कि ऐसे आसन में बैठने का अभ्यास हो जाने से क्या लाभ होगा।

गोस्वामीजी ने कहा—अम्ल, उदरी, सूजन, वात और पैत्तिक आदि रोग इस आसन में बैठने से दूर होते हैं; और भी बहुत फ़ायदा होता है। अभ्यास करने पर धीरे-धीरे मालूम हो जायगा।

गुरु-शिष्य-सम्बन्ध

एक गुरुशक्ति ही सारे विश्व में व्याप्त है

मार्गशीर्ष पूर्णिमा, मंगलवार

बड़े दादा का एक पत्र लेकर मैं आज गोस्वामीजी के पास गया। आश्रम में पहुँचते ही श्रीधर और लाल प्रभृति सभी ने कहा—'गोस्वामीजी बहुत बीमार हैं। ज्वर चढ़ा है और सिर में दर्द है, इससे प्रायः बेहोश पड़े हुए हैं। आज भेंट न होगी।' मैं कुछ कहे-सुने बिना ही बाहर आम के पेड़ के नीचे चुपचाप जा बैठा। मन ही मन गोस्वामीजी का स्मरण करके मैं उनसे दर्शन देने के लिए प्रार्थना करने लगा। गोस्वामीजी घर के भीतरवाले कमरे में थे। दरवाज़ा बन्द था। माता महाराजिन श्रीश्रीयुक्ता योगमाया देवी अकेली उनके पास बैठी थीं। गोस्वामीजी को किसी ने मेरे आने की सूचना नहीं दी। इतने पर भी माता महाराजिन ने अकस्मात् दरवाज़ा खोलकर श्रीधर से कहा—'श्रीधर, गोस्वामीजी कहते हैं 'कुलदा बाहर बैठा बाट जोहता है; उसे बुला दो।' खबर पाते ही मैं कमरे में गया। गोस्वामीजी बिछौने से उठकर बैठ गये। बाँयें हाथ से अपनी कनपटी दबाये रहकर उन्होंने मुझसे पूछा—'**किस काम से आये हो?**'

मैंने उन्हें दादा का पत्र पढ़ सुनाया। असल बात यह लिखी है—"महात्मा नागा बाबा मुझको बहुत चाहते हैं। एक दिन उन्होंने मुझे बुला भेजा। मैंने दूर से ही उनको नमस्कार करके कहा 'बाबा, मुझे बड़ा अविश्वास रहता है। दया करके मुझे विश्वास दीजिए।" नागा बाबा ने अपनी जटाओं को सामने की ओर माथे पर फैला दिया और उन्हीं के भीतर होकर मुझपर बड़ी स्नेह-दृष्टि डालकर कहा—'अच्छा बच्चा, अब हो गया। तुम्हारा विश्वास बन गया। चले जाओ।' मैं तुरन्त ही उन्हें नमस्कार करके चला आया। उसी दिन से भगवान् का नाम प्राप्त करने के लिए मेरे प्राण सदा विकल रहने लगे। वैसे तो मैं सैकड़ों नाम जानता हूँ; किन्तु सोचा कि उससे कुछ होने का नहीं। ऐसा लगने लगा कि यदि कोई आकर मुझसे पेड़-पेड़ जपने के लिए कह दे तो भगवान् के उद्देश्य से उसी का जप करने से मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। इसी समय विद्यारत्नजी ने आकर, बिना ही मेरे प्रार्थना किये, मुझे नाम प्रदान किया। भगवान् की इच्छा समझकर मैंने उक्त नाम ले लिया। अब नाम का जप करते समय मैं घर-द्वार, स्त्री-पुत्र और अपनी देह तक को भूल जाता हूँ। यह राज्य

छोड़कर एक भिन्न राज्य में पहुँच जाता हूँ और आनन्द में डूबकर बेहोश सा हो जाता हूँ। मालूम नहीं कि यह नाम का ही गुण है अथवा नागा बाबाजी की कृपा का फल है।" इत्यादि। पत्र को सुनकर गोस्वामीजी ने कहा—अच्छी अवस्था है! सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। पिछली बार तुमने उनको कुछ अच्छी चिट्ठी नहीं लिखी। वह चिट्ठी जैसी लिखने के लिए मैंने तुमसे कहा था वैसी नहीं लिखी गई। उस समय तुम्हारे मन की जैसी हालत थी उसके लिहाज़ से तुम वैसा नहीं लिख सके, यह ठीक है। अब जाकर उन्हें ख़ूब उत्साह देते हुए पत्र लिखो। वे जिस साधन को कर रहे हैं उसी को करते जायँ, उसी से उनका भला होगा। नागा बाबा ऊँचे दरजे के सिद्ध पुरुष हैं। उनकी दृष्टि का फल अवश्य ही मिलेगा। विश्वास की प्राप्ति होने से ही बहुत कुछ मिल गया। विश्वास बहुत दूर तक पहुँचा देता है। अन्त की अवस्था में शक्ति की आवश्यकता होती है। शक्ति की आवश्यकता जान पड़ने पर दूसरे के पास जाना ही पड़ता है। किन्तु वह अवस्था भी तो सहज नहीं है।

गोस्वामीजी के सिर का दर्द देखकर मैं उठने को तैयार हुआ। मैं रोआ-सा हो गया। मैंने कहा—मेरी भीतरी हालत बहुत बुरी है! अब तक आपके पास था; क्या जाने अब किस अवस्था में कहाँ जा गिरूँगा! कोई ठिकाना नहीं कि कब क्या कर गुजरूँ।

मेरी बात पूरी होने से पहले ही गोस्वामीजी कहने लगे—तुम तो अभी गर्भ की सन्तान हो! तुमको फ़िक्र करने के लिए है ही क्या? माँ को जिस तरह गर्भ के बच्चे की हालत मालूम हो जाती है, सन्तान के हिलते-डोलते ही वे समझ जाती हैं, उसी तरह गुरु भी शिष्य की सारी अवस्था, सारी चेष्टा को हर-हमेश जान लेते हैं। सन्तान जब तक पैदा नहीं हो जाती है तब तक उसमें किसी प्रकार की योग्यता नहीं रहती है। माता जो कुछ खाती-पीती है उसी का थोड़ा-थोड़ा रस, नाड़ी के भीतर होकर, सन्तान की देह में पहुँचता है; सिर्फ़ उतने से ही गर्भ के बच्चे की पुष्टि होती है। इसी प्रकार गुरु को जो कुछ प्राप्त होता है उसका अंश, आवश्यकता के अनुसार, शिष्य को मिलता रहता है। गुरु की उन्नति के साथ-साथ ही शिष्य की भी उन्नति होती जाती है। इसके

बाद बच्चे का जन्म हो चुकने पर भी माता ही उसको भोजन देती है; सारी आवश्यक वस्तुएँ एकत्र करके माता ही उसका लालन-पालन करती है। जब तक वह चलने-फिरने और खाने-पीने योग्य नहीं हो जाता तब तक माता उसे आँखों से ओझल नहीं होने देती; सदा अपनी नज़र के सामने रखती है। किन्तु शिष्य के सिद्धावस्था प्राप्त कर चुकने पर भी सद्गुरु उसे छोड़ नहीं देते। वे उसे उस समय भी बच्चे की तरह गोद में लिये रहते हैं। गुरु सदैव सब बातों में शिष्य का सुबीता देखते रहते हैं।

तनिक ठहरकर फिर कहा—संसार में जिन स्त्रियों के सन्तान होती हैं उनकी गर्भस्थ सन्तान, अपनी-अपनी माता के गर्भ में रहते समय, माता की खाई हुई चीज़ का अंश आवश्यकता के अनुसार पाती है। बच्चा पैदा हो जाने पर भी सारी माताएँ बड़ी हिफ़ाज़त से उसका पालन करती हैं। अब 'तुम्हारी माँ के पेट से पैदा न हो तो कोई बच्चा न बचेगा, उसे सुभीता न होगा, उसका अमङ्गल होगा'—ऐसा समझो तो यह ठीक न होगा। यदि माता सी माता हो तो तुम्हारी माँ से भी बढ़कर स्नेह और सावधानी के साथ अपने बच्चे का लालन-पालन कर सकती है। तब तो तुम लोगों से कहीं अच्छे होने की बात है। माँ के सेवा-शुश्रूषा करने से ही तो बच्चे बढ़ते हैं। माता के पेट से पैदा होने पर अच्छी सेवा-शुश्रूषा होती रहे तो बच्चा बहुत अच्छा क्यों न होगा? यह आवश्यक नहीं कि सभी की माता एक ही हो। भगवान् की यही इच्छा है कि भिन्न-भिन्न माताओं के गर्भ से उत्पन्न होकर बच्चे सुख में आराम में रहें। तुम फ़ैज़ाबाद जाओ, बड़ा लाभ होगा। बीच-बीच में बहुत अच्छे-अच्छे लोगों के दर्शन भी होंगे। सभी को ख़ूब भक्ति श्रद्धा करना। साम्प्रदायिक संकीर्णता मत रखना।

मैंने पूछा—जब तक गुरु पर दृढ़ निष्ठा न उत्पन्न हो उससे पहले क्या अन्य साधु का सत्सङ्ग करना ठीक नहीं है?

गोस्वामीजी—अन्य क्या? अन्य समझकर उसका सत्सङ्ग न करे। एक गुरुशक्ति ही सारे संसार में व्याप्त हो रही है, यह समझकर सभी का

सत्सङ्ग करने से लाभ ही होगा। रक्ताधार में रक्त रहता है; तो क्या इसी से शरीर के अन्य स्थान में रक्त नहीं है? रक्त का आधार—मूल स्थान—ही रक्ताधार है। वहीं से सञ्चारित होकर रक्त सारे शरीर में व्याप्त हो रहा है। सारे शरीर में जो रक्त है वह उसी रक्ताधार का ही तो रक्त है। हाँ, यह ठीक है कि यदि रक्ताधार (कलेजे) में रक्त न हो तो शरीर में कहीं रक्त नहीं रह सकता। सारे विश्व में एक गुरुशक्ति ही व्याप्त है। संकीर्ण भाव कुछ नहीं है। संकीर्ण भाव से बड़ी हानि होती है।

मैंने पूछा—गुरु में एकनिष्ठता भी क्या संकीर्णभाव नहीं है?

गोस्वामीजी—नहीं, उसे संकीर्णता नहीं कहते। जो रक्ताधार को भली भाँति जानता है वह यह भी जानता है कि एक रक्ताधार का ही रक्त अनेक मार्गों से होकर सारे शरीर में व्याप्त हो रहा है। वह सर्वत्र एक ही वस्तु को देखता है।

गोस्वामीजी ने तनिक ठहरकर और भी कहा—वहाँ जाकर साधन को छिपकर ही करना। और दादा को ख़ूब उत्साहित करना। अपने-अपने साधन-भजन में निरुत्साहित किसी को न करना चाहिए। निरुत्साहित करने में बड़ा दोष है। कोई किसी मार्ग पर क्यों न चलता हो, उसे उत्साहित ही करना चाहिए; यह साधन ग्रहण करने के लिए किसी से अनुरोध मत करना। आवश्यकता होने पर भगवान् ही तुम्हारे दादा को भी इसके भीतर ले आवेंगे।

मैं—तो क्या कुल साधन को छिपकर किया करूँगा?

गोस्वामीजी—जहाँ तक हो सके वहाँ तक करना। ये चीज़ें गुप्त रखने की ही हैं। बड़ी सावधानी से रहना।

गोस्वामीजी एक हाथ से सिर पकड़े रहकर आध घण्टे से भी अधिक समय तक मुझसे बातचीत करते रहे। जोर का बुख़ार चढ़ा था, सिर में असहनीय दर्द था फिर भी उनमें विलक्षण स्थिरता देख पड़ी। मैं तो दङ्ग हो गया। डेरे पर आकर निश्चय किया कि जल्द ही घर जाऊँगा।

स्वप्न ।—साधन पाने के लिए मँझले दादा की आतुरता

पौष कृष्णा ४, शनिवार

घर आकर तीन दिन ठहरा। एक सपना देखा—मानों मैं मँझले दादा के पास हूँ; उनको देखने से ऐसा मालूम हुआ कि मानों वे भीतरी किसी दुःसह यन्त्रणा के मारे रात-दिन तड़पते रहते हैं। मुझे देखकर उन्होंने कहा—'तू बतला सकता है कि क्या करने से शान्ति मिलती है?' मैंने कहा कि 'गोस्वामीजी का आश्रय लेने से शान्ति मिलती है। उनके दीक्षा देने पर यन्त्रणाओं की जड़ कट जाती है।' गोस्वामीजी का आश्रय लेने के लिए आतुर होकर मँझले दादा ने कहा—'वे क्या मुझ जैसे आदमी को साधन देंगे?' मैंने कहा—'वे बड़े दयालु हैं; प्रार्थना करने पर अवश्य दे देंगे।' इतना कहते ही मेरी नींद टूट गई।

मुँगेर जाने की आज्ञा

पौष कृष्णा ८, बुधवार

मैं कल पश्चिम को चला जाऊँगा। गोस्वामीजी से अनुमति लेने को गेंडारिया आश्रम में आया हूँ। गोस्वामीजी बीमार हैं। खबर मिली कि वे इस समय कमरे में ध्यानमग्न हैं। मैंने जाकर दरवाजे के बाहर से ज्योंही प्रणाम किया त्योंही उन्होंने आँखें खोलकर देखा। अपने आसन का एक कोना दिखलाकर कहा—'यहाँ बैठो।' मुझे संकोच हुआ, इससे मैं जमीन पर ही बैठ गया; किन्तु उन्हें बारम्बार आग्रह करते देखकर आसन के एक छोर पर एक और आसन बिछाकर जा बैठा। उन्होंने फिर ध्यान लगा लिया, बात-चीत करने तक की उन्हें फ़ुरसत नहीं मिली। इस समय पर और बात-चीत करना ठीक न समझकर मैं बाहर आने को तैयार हुआ। प्रणाम करते ही उनका ध्यान टूट गया। मुझसे कहा—**किस दिन जाने का विचार है?**

मैं—आज रात को।

गोस्वामीजी—**तो यहीं क्यों नहीं आ जाते? यहाँ से दुलाईगञ्ज स्टेशन पास ही है। यहाँ से जाने में सुभीता होगा।**

मैं—सीधा टिकट ले लूँगा। यहाँ से जाने में यह न हो सकेगा।

गोस्वामीजी—**न हो तो यहाँ से नारायणगंज जाकर टिकट ले लेना; काफ़ी समय मिल जायगा। इसमें असुविधा ही कौन सी है?**

मैं—मैं कभी उस रास्ते गया नहीं हूँ; इससे सीधे वहीं तक का टिकट लेकर जाने में सुभीता जान पड़ता है।

गोस्वामीजी—जब तुम्हें आशङ्का हो रही है तब वैसा ही करो। तनिक जल्दी फूलबेड़े स्टेशन पर पहुँचने की कोशिश करना—कहीं गाड़ी न छूट जाय और तुम रह जाओ। कलकत्ता पहुँचकर बहुत दिन न ठहरना; सिर्फ़ एक दिन विश्राम करना; नहीं तो रास्ते में असुविधा हो सकती है। तो क्या तुम्हारे मँझले दादा मुँगेर में हैं? मुँगेर बड़ी अच्छी जगह है। अब कुछ समय तक उन्हीं के पास रहना; इस समय वहीं पर तुम्हारे रहने की ज़रूरत है। मज़े में रहोगे, लाभ होगा। फिर फ़ैज़ाबाद चले जाना। लगन के साथ साधन-भजन करना; बस, फिर सब कुछ समझ सकोगे। कुछ भी फ़िक्र न करना। डर काहे का है?

इस समय मैंने शीशी भर जल को, गोस्वामीजी के चरण की उँगली छुआकर, चरणामृत बना लिया। चरणामृत देते-देते गोस्वामीजी को बाहरी चेत न रहा। उन्हें समाधिस्थ देखकर मैं प्रणाम करके चला आया।

बड़े तड़के उठकर मैं फूलबेड़े (ढाका) स्टेशन के लिए रवाना हुआ। नवाबपुर तक पहुँचा था कि गाड़ी खुल गई; मैं सवार न हो पाया। जो मैं गोस्वामीजी की बात मान लेता और दुलाईगञ्ज स्टेशन पर सवार होता तो इस मुसीबत का सामना न करना पड़ता।

एक मेम का महत्त्व

पौष कृष्णा १०, शुक्रवार

रात के पिछले पहर मैं दुलाईगंज स्टेशन पर जाकर गाड़ी में सवार हुआ। नारायणगंज से जानेवाले स्टीमर में एक मेम की अद्भुत दया देखकर मैं दङ्ग हो गया। स्टीमर दिन भर पद्मा नदी में चलकर शाम को ग्वालन्दो पहुँचेगा। अकस्मात् रास्ते में एक असहाय, नीच जाति की, बहुत ही दरिद्र बुढ़िया को बड़े ज़ोर हैजा हो गया। जहाज के अधिकारियों ने उसे किनारे के बालू के मैदान पर छोड़ जाने की सलाह की। हमारे बङ्गाली भाई लोग छुतहे रोग के बीमार को चटपट वहाँ से हटा देने के लिए उत्साह देने लगे। इसी समय एक मेम, किसी से कुछ कहे-सुने बिना, बीमार को गोद में उठाकर नीचे चली गई। बुढ़िया के क़ै और दस्तों से भरे हुए गन्दे कपड़े-लत्तों को फेंककर

मेम ने अपने क़ीमती कपड़े आदि उसके पहनने को दिये। वह अपने हाथ से उस बीमार बुढ़िया की सेवा-शुश्रूषा करने लगी। जहाज के अधिकारियों ने तरह-तरह से समझा-बुझाकर उसे उसके संकल्प से रोका। मेम के सेवा-शुश्रूषा और दवा-दारू करने से बुढ़िया का रोग धीरे-धीरे बहुत कुछ घट गया। जिस अवस्था में देशी भाइयों को सहानुभूति नहीं हुई, ऐसे स्थान में अच्छे खानदान की मालदार खास विलायती मेम की ऐसी असाधारण दया देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मेम से बातचीत करने की मुझे बड़ी इच्छा हुई। मैं उसके पास जा खड़ा हुआ। रोगिनी की सेवा करते-करते मेम ने मुझसे कहा—'भाई, क्या तुम ईसा मसीह को मुक्तिदाता मानते हो?' मैंने कहा—'हाँ, वे महापुरुष हैं, मुक्ति दे सकते हैं। उनके सम्बन्ध में मेरा बहुत ही उच्च भाव है।' मेम ने कहा—'तुम जिसे उच्च भाव कहते हो, उससे घटिया भाव क्या मसीह के ऊपर मनुष्य का हो सकता है? तुम उन्हें महापुरुष कहो!' ईसा मसीह पर मेम की ऐसी प्रगाढ़ निष्ठा देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्तु फिर भी मैं उसके साथ बहस करने लगा। मेम ने कोई खास बहस न करके कहा—'भाई, सत्य को समझने के लिए मैं बहस करने में बहुत सा समय गवाँ चुकी हूँ; कुछ भी समझ में न आया; शान्ति भी न मिली। कभी निरी बहस से सत्य का निरूपण नहीं होता। बहस करके तो असत्य को भी सत्य समझा दिया जाता है। एकमात्र विश्वास से ही सत्य जाना जाता है। ईसा पर विश्वास करो। उनकी कृपा से ही उनको जान सकोगे।' मेम की ये बातें मुझे बहुत अच्छी लगीं।

सतीश पर गोस्वामीजी की कृपा

पौष कृष्णा ११, शनिवार

मैं तड़के कलकत्ते जा पहुँचा। श्रीयुक्त विधुभूषण मजूमदार, ज्ञानेन्द्रमोहन दत्त और सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय से भेंट हुई। ये लोग साधारण ब्राह्मसमाज के कट्टर ब्राह्मसमाजी थे, गोस्वामीजी से साधन लिये थोड़ा ही समय हुआ है। बातचीत से मालूम हुआ कि थोड़े दिनों के भीतर ही गोस्वामीजी पर उन्हें असाधारण भक्ति हो गई है और ये उन्हीं के भरोसे हैं। सतीश बाबू ने अपने व्यक्तिगत जीवन की एक घटना का वृत्तान्त स्वयं सुनाया जिसे सुनकर मैं विस्मित हो गया। उन्होंने कहा—'भाई, युवावस्था के प्रारम्भ से ही काम आदि रिपुओं की उत्तेजना में पड़कर न जाने क्या-क्या कर चुका हूँ! साधन लेकरके सोचा कि अब सारे उत्पातों से छुटकारा मिल गया।

किन्तु वास्तव में यह कुछ भी न हुआ, बल्कि वह शिकायत और भी बढ़ने लगी। गोस्वामीजी पर मुझे बेतरह नाराज़ी होने लगी। इसी समय एक दिन साधन करने बैठा था कि अकस्मात् अदम्य उत्तेजना से मैं बेचैन हो गया। तब मैं सोचने लगा कि 'न तो अब साधन करूँगा और न गोस्वामीजी के पास ही जाऊँगा'; इसी समय दूसरे कमरे से गोस्वामीजी मुझे बारबार बुलाने लगे। पास पहुँचते ही उन्होंने मुझसे बड़े स्नेह के साथ कहा—**'सतीश, मेरे सिर में थोड़ा सा तेल तो लगा दो।'** अपनी दुर्दशा का ख़याल करके मैं नाराज़ होकर तनिक तेज़ी से बोला—'नहीं, यह मुझसे न होगा।' गोस्वामीजी ने मुसकुराकर फिर कहा—**'क्रोध क्यों करते हो? मेरा तो सिर जला जा रहा है, आओ, तनिक सा तेल लगा न दो।'** मैं हथेली में तेल लेकर उनके सिर में लगाने लगा। सिर में तेल लगाने का गोस्वामीजी को कभी अभ्यास नहीं था; फिर भी मुझसे कहने लगे—**'लगाते जाओ, लगाते जाओ। सिर में तरी पहुँच रही है।'** इसी समय मेरी न जाने कैसी अवस्था हुई कि बारबार देह में रोमाञ्च होने लगा, मैं काँपने लगा। सामने क्या देखता हूँ कि आज तक जितनी स्त्रियों पर मेरा कुभाव हुआ है उनमें से प्रत्येक कामोन्मत्त होकर मेरी ओर आती है और बग़ल से निकल जाती है। डर और लज्जा के मारे मैं सिमटने लगा। तब गोस्वामीजी कहने लगे—**'लगाओ, अच्छी तरह लगाओ; जितना तेल है, सब का सब धीरे-धीरे अच्छी तरह पिला दो।'** स्त्रियाँ किस भाव से किस तरफ़ से आईं और कहाँ चली गईं, यह देखने का मुझे अवसर ही न मिला। मानों मुझे एक तरह का नशा हो गया था। सब के चले जाने पर गोस्वामीजी ने कहा—**'तो सब तेल सिर में पिला दिया? अच्छा अब जाओ।'** जागते हुए, ऐसी अद्भुत स्वप्न की सी घटना देखकर मैं हक्का-बक्का हो गया। उस समय न तो मेरा ध्यान तेल की ओर था और न गोस्वामीजी के सिर की ओर। गोस्वामीजी की बात सुनकर मेरे ताले से खुल गये। तब उनके माथे को देखा तो उसमें एक बूँद भी तेल न था। उसी दिन से मेरा कामभाव बिलकुल नष्ट हो गया है। अब तो मैं कल्पना तक नहीं कर सकता कि मुझे कभी उक्त शत्रु सताता था। उस घटना की याद आते ही मैं रोआ-सा हो जाता हूँ। केवल यही जान पड़ता है कि मेरी यन्त्रणा देखकर, दया करके, गोस्वामीजी ने मेरे सभी कुभावों को अपने मत्थे ले लिया।

आज्ञा का उल्लंघन करने से संकट

दो दिन तक कलकत्ते में ठहरने के बाद हवड़ा स्टेशन पर जाकर मुँगेर का टिकट लिया। इसी समय गाड़ी ने सीटी दी। मैं बेतहाशा दौड़ता हुआ गाड़ी के सामने गया। गाड़ी के दरवाजे पहले से ही बन्द हो गये थे। मैं यह समझकर मूर्ख बना खड़ा हो गया कि अब गाड़ी नहीं मिलती। किन्तु एक भले मानस ने मेरी वह दुर्दशा देखकर चिल्लाकर कहा—'चढ़ आइए, झटपट सवार हो जाइए। दरवाजा खोले देते हैं।' मैं चलती हुई गाड़ी में उछलकर चटपट सवार हो गया। १२ बजे रात को मुँगेर पहुँचा।

पौष अमावस्या

वहाँ एक्के में बैठकर मँझले दादा के डेरे को रवाना हुआ। पहुँचने पर मालूम हुआ कि मँझले दादा ने मकान बदल दिया है। शहर में एक घण्टे तक घूमने पर भी जब मँझले दादा के नये मकान का कुछ भी पता मुझे न मिला तब एक्केवाले ने चिढ़कर मुझे रास्ते में एक जगह जबर्दस्ती उतार दिया। मैंने उसे भाड़े का एक पैसा तक नहीं दिया। मैं गठरी-पोटरी और बिछौना आदि लिये, बड़े रास्ते के ऊपर, उस अँधेरी रात में कोई आध घण्टे तक एक जगह बैठा रहा। पीछे स्मरण हुआ कि यदि गुरुदेव की बात मानकर मैं कलकत्ता में एक ही दिन ठहरकर चला आता तो इस झञ्झट से बच जाता, मँझले दादा उसी पुराने मकान में मिल जाते। जो हो, रात के २ बजे विपन्न होकर मैं गुरुदेव का स्मरण करने लगा। उनकी अपार कृपा के गुण से हो या आकस्मिक घटना के कारण हो, इस समय एक मनुष्य ने आकर मुझसे कहा—'क्या है बाबू, यहाँ क्यों बैठे हो? कुली चाहिए?' मैंने मँझले दादा का नाम बतलाकर और उनका परिचय देकर कहा—'हमें उनके यहाँ पहुँचा सकोगे?' मजदूर ने कहा—'हम बाबू को पहचानते हैं। चलिए।' इसके बाद मैं उसके पीछे-पीछे चलकर मँझले दादा के घर पहुँचा। मजदूर को पैसे देते समय देखा कि रुपयों की थैली गायब है! छाती के पास लगे कोट के पाकेट में ८) रुपये थे; उसके ऊपर दो कोट और रहने पर भी थैली किस तरह खो गई, यह समझ में न आया! सोचा कि एक्केवाले को बहुत सताया था, इस कारण गुरुदेव ने ही कृपा करके यह दण्ड दिया है। सारे रास्ते में एक अन्य शक्ति का खेल हो गया, यह देखकर गोस्वामीजी के ऊपर मेरा चित्त और अधिक आकृष्ट हो गया। छोटी-छोटी घटनाओं के भीतर होकर नाना प्रकार की अवस्थाओं में डालकर जिस तरह वे अपने चरणों की ओर इस चित्त को खींच रहे हैं उसका खयाल करके मैं दङ्ग हो गया।

प्रथम स्वप्न—कष्टहारिणी के घाट से सटे हुए गुप्त मार्ग का रहस्य

पौष शुक्ला २,
बृहस्पतिवार

कल तीसरे पहर मँझले दादा मुझे कष्टहरिणी के घाट पर ले गये थे। आँखों से देखे विना मैं कल्पना भी न कर सकता था कि गङ्गाजी पर ऐसा सुन्दर स्थान है। घाट मानों गङ्गाजी के बीच में ही है। घाट के सामने और दाहिनी-बाँईं ओर कलकल शब्द करता हुआ निर्मल जल वेग से बह रहा है। विशाल गङ्गाजी के उस पार केवल काले मेघ की तरह पहाड़ों की क़तार देख पड़ती है। घाट पर बैठने से ऐसा अच्छा लगा कि वहीं पर रात बिता देने की इच्छा हुई। स्नेह के कारण मँझले दादा ने मुझे वहाँ रात को रहने की अनुमति नहीं दी। रात को ९ बजे के लगभग हम लोग डेरे पर पहुँचे।

रात के पिछले पहर स्वप्न देखा—'दिन डूबने पर कष्टहारिणी के घाट पर गया हूँ; ऊपर से देखा कि घाट के पास मुद्दत का एक पुराना पक्का रास्ता गङ्गाजी के भीतर होकर मानों कहीं को गया है। नदी के नीचे होकर रास्ता है; उसके भीतर जाने को बड़ा ही कौतूहल हुआ। मैं धीरे-धीरे उस रास्ते पर आगे बढ़ा। कुछ दूर आगे जाने पर अँधेरे के कारण कुछ भी न देख पड़ा। वहाँ पर चन्द्र-सूर्य का उजेला भी नहीं पहुँचता। अब मैं हाथ में मशाल लेकर आगे चला। रास्ता बहुत ही दुर्गम है; कीचड़ में मेरे घुटनों तक पैर धँसने लगे। अनेक प्रकार की ध्वनि और बहुत ही शोर-गुल सुनाई देने लगा। ऐसा जान पड़ा कि सामने कोई भयंकर घटना हो रही है। मालूम हुआ कि विशाल गङ्गाजी का एक चौथाई रास्ता तय कर आया हूँ। रास्ते के क्लेश और दहशत के मारे मैं बहुत ही सुस्त हो गया। अब मैं आगे न जा सका। दुखी मन से कष्टहारिणी के घाट पर जा बैठा। इसी समय बारोदी के ब्रह्मचारीजी देख पड़े। वे उसी रास्ते से जाने का उद्योग कर रहे थे। उन्होंने मुझे देखकर कहा—"तू यहाँ कहाँ ?" मैंने पूछा—"यह रास्ता कहाँ तक गया है ? आपके साथ चलकर देखूँगा।" ब्रह्मचारीजी ने कहा—"तू कैसे चल सकेगा ? इस रास्ते से बहुत दूर तक नहीं जा सकते—यह बन्द है; इसके सिवा डर भी है।" मैंने कहा—"यह रास्ता बन्द क्यों हो गया ? इसे किसने बन्द कर दिया ?' ब्रह्मचारीजी-"यह रास्ता सीधा गङ्गाजी के बीचोंबीच तक है। उसके बाद उस पार चला गया है।" रास्ता कहाँ को गया है, इसका सारा हाल जानने की इच्छा प्रकट करने पर वे कृपा करके मुझे एक

डोंगी पर चढ़ाकर घाट की सीध में गङ्गाजी के मध्य-स्थान में ले गये। फिर पश्चिमोत्तर कोने में कुछ दूर तक जाकर डोंगी को ठहराकर कहा—कुछ महर्षि और प्रधान-प्रधान योगी लोग पहाड़ के समीप गङ्गाजी के नीचे, इस जगह, आश्रम बनाकर रहते हैं। आश्रम सूनसान है और दूर तक फैला हुआ है। महापुरुषों के साथ उनके थोड़े से शिष्य हैं। इस आश्रम के साथ वह गङ्गा-किनारे का रास्ता मिला हुआ है। यहाँ से भीतर-ही-भीतर एक गुप्त मार्ग जाकर उस स्थान में उस रास्ते में जा मिला है। अधिकारियों ने बड़े रास्ते के स्थान-स्थान में कीचड़ का प्रबन्ध करके मार्ग को इसलिए दुर्गम कर दिया है कि कोई उस गुप्त मार्ग होकर आश्रम में न जा पहुँचे; बीच-बीच में भयानक विषैले साँप भी रहते हैं। यही कारण है कि उस बड़े रास्ते से चलकर कोई भी बहुत आगे तक नहीं जा सकता।

मैं—तो आश्रम में जाने के लिए क्या कोई दूसरा मार्ग नहीं है?

ब्रह्मचारीजी—दो रास्ते और भी हैं। यह जानकर तू क्या करेगा? उस रास्ते से जाने लायक़ अभी तेरा समय नहीं हुआ है। बहुत देरी है।

मैं—दया करके आप मुझे एक रास्ता दिखला दीजिए। मैं इस समय उसके भीतर न जाऊँगा; सिर्फ़ रास्ता तो मालूम हो जाय।

मेरी बात सुनकर ब्रह्मचारीजी डोंगी से उतर पड़े और गङ्गाजी के उत्तर पार वाले घाट की विपरीत दिशा में मुझे पहाड़ पर ले चले। कहा—"ये जो बढ़िया-बढ़िया पत्थर देख रहा है इनके नीचे होकर उनके आश्रम की ओर एक रास्ता है। चल, उस रास्ते से जाने का दरवाजा तुझे दिखला दूँ।" अब कुछ और आगे जाकर ८।९ फुट लम्बा, आधे हाथ से भी कम चौड़ा, एक फटा हुआ स्थान दिखलाकर उन्होंने कहा—"यह जो पत्थर की चट्टान के भीतर तू दरार सी देख रहा है यही एक रास्ता है।" मैंने उसके भीतर दृष्टि पहुँचाकर देखा कि किसी स्थान में तो बहुत ही अँधेरा है और किसी-किसी स्थान में दहकते हुए कोयले की तरह आग जल रही है; फिर किसी-किसी स्थान से लगातार धुआँ निकल रहा है। ब्रह्मचारीजी ने कहा—यह रास्ता किसी को सहज में नहीं देख पड़ता। दिन को तो मामूली धुआँ उठता हुआ ही देख पड़ता है। जितनी ही रात अधिक होती

है उतनी ही इस सारी चट्टान की दरार अग्निमय हो जाती है। यह आग बहुत दूर से भी लोगों को देख पड़ती है। तेरा जी चाहे तो इस आग में होता हुआ आश्रम में चला जा!

उस आग को देखकर मैंने डरकर कहा—"मैं इसके भीतर न जा सकूँगा। और दूसरा रास्ता बता दीजिए।" मेरी इस बात से बहुत ही चिढ़कर ब्रह्मचारीजी ने कहा—"हाँ। रास्ते का भेद लेने का बड़ा शौक हुआ था। चला जा यहाँ से।" अब वे तुरन्त ही गङ्गापार जाकर डोंगी पर सवार हो गये। उन्होंने डोंगी खोल दी। जिस तरफ़ नाव जाने लगी उसी तरफ़ मैं भी किनारे-किनारे दौड़ने लगा। ब्रह्मचारीजी ने चिल्लाकर कहा—अब चला जा, चला जा।

बस, यह शब्द सुनते ही मेरी आँख खुल गई। स्वप्न में देखी हुई घटना मानों साफ़-साफ़ आँखों से देख पड़ने लगी। सबेरे उठकर मैंने मँझले दादा से पूछा—'कष्टहारिणी के घाट के पास क्या कोई पुराना गुप्त रास्ता है?' उन्होंने कहा—"हाँ, नवाबी जमाने का मार्ग है। वह मुद्दत से बिलकुल बन्द है।" मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। रास्ता देखने को तीसरे पहर मँझले दादा के साथ कष्टहारिणी के घाट पर गया। देखकर कुछ देर तक बिलकुल ही विस्मित होकर बैठा रहा। कष्टहारिणी के घाट से कोई ५०।६० हाथ दक्षिण तरफ़ यह मार्ग है। क्रमशः नीचा होता हुआ रास्ता बिलकुल गंगाजी के भीतर चला गया है। इस समय पानी कम होने के कारण घाट पर से रास्ते के ऊपर की बड़ी भारी 'डाट', जो गंगाजी के भीतर चली गई है, साफ़ देख पड़ती है; किन्तु कोई नहीं बतला सकता कि यह डाटवाला रास्ता कहाँ तक चला गया है। सुना कि कुछ समय पहले जिले के मैजिस्ट्रेट 'डियर' साहब ने बहुत रुपया खर्च करके इस रास्ते को खुलवाने की कोशिश की थी, किन्तु सारी मेहनत बेकार हुई। अनेक प्रकार का डर और विभीषिका देखकर तथा तरह-तरह के बाजों की आवाज सुनकर मजदूर काम छोड़कर भाग गये। यह समझकर कि उसके भीतर बड़े-बड़े जहरीले साँप हैं, साहब ने भी अपना असम्भव संकल्प छोड़ दिया। बहुत लोग कहते हैं कि मौक़े-बेमौक़े भाग जाने के लिए यह नवाबों का चोर रास्ता था, और कोई-कोई यह भी अटकल लगाते हैं कि डाट के भीतर परदे में रहकर बेगमों के, बेख़ौफ़ मौज के साथ, नहाने के लिए किसी नवाब ने एक निराला गुप्त घाट बनवाया था। जो हो, इस सम्बन्ध में कोई भी कुछ निश्चित संवाद नहीं बतला सका।

पीरपहाड़ और सीताकुण्ड

पौष शुक्ला ६, रविवार

यह स्वप्न देखने के बाद से मँझले दादा के साथ अक्सर कष्टहारिणी के घाट पर जाता हूँ। शाम हो जाने पर घाट के उस तरफ़, गङ्गा-पार, पहाड़ के ऊपर एक चञ्चल आग को मैं रोज़ देखा करता हूँ। आग स्थिर नहीं है; जान पड़ता है मानों ८।१० हाथ जगह में वह फैलती रहती है। इस विषय में शहर के बाबुओं से पूछने पर मालूम हुआ कि यह आग अधिक रात बीतने पर, ख़ासकर अँधेरे पाख में, साफ़-साफ़ देख पड़ती है। मुद्दत से इसे लोग देखते आ रहे हैं। कोई नहीं जानता कि यह कहाँ पर और कैसी आग है। अचम्भे की बात तो यह है कि स्वप्न में ब्रह्मचारीजी ने उस पहाड़ के जिस स्थान में फटी चट्टान दिखलाई थी वहीं पर यह आग मुझे देख पड़ती है।

मँझले दादा के साथ मैं एक दिन पीरपहाड़ की सैर करने गया। पीरपहाड़ मुँगेर से बहुत दूर नहीं है। उस पहाड़ के ऊपर जाने पर मुझे एक क़ब्र मिली। वहाँ पर नमाज़ पढ़ने को एक फ़क़ीर साहब आये हुए थे। उनसे क़ब्र के बाबत पूछताछ की तो उन्होंने कहा—"बहुत समय पहले यहाँ पर कोई फ़क़ीर रहते थे। धर्म के लिए व्याकुल होकर वे घर-द्वार, बाल-बच्चे और बहुत सी सम्पत्ति छोड़-छाड़कर यहाँ आये थे। यहीं मुद्दत तक रहकर, कठोर साधन-भजन करके, वे पीर हो गये। मरने पर उनको यहीं दफ़नाया गया। तभी से, उन्हीं के नाम पर, इस पहाड़ का नाम पीरपहाड़ पड़ गया। पीर साहब अद्भुत शक्तिशाली सिद्ध पुरुष थे।" स्थान देखने से मुझे बहुत अच्छा लगा। कोई घण्टे भर तक मैं पीर साहब की क़ब्र के बग़ल में बैठा-बैठा नाम-जप करता रहा। गुरुदेव ने एक बार बात-चीत के सिलसिले में इन पीर साहब के प्रभाव के सम्बन्ध में कहा था—"**एक दिन पीरपहाड़ पर घूमने गये थे। अकस्मात् चारों ओर अँधेरा फैलाता हुआ बेतरह आँधी-पानी आ गया। बड़ी मुशकिल में पड़े। चारों ओर नज़र फैलाकर देखा कि कहीं भी सिर छिपाने को तनिक सी जगह नहीं है। अब क्या करें? पीर साहब की क़ब्र के बग़ल में स्थिर होकर बैठे रहे। फ़क़ीर साहब का अद्भुत प्रभाव देखा। चारों ओर मेह का पानी बह रहा था, किन्तु हमारे शरीर पर एक बूँद भी न गिरने पाई।**" पीरपहाड़ का ज़िक्र मैं पहले ही गुरुदेव से सुन चुका था। अब प्रत्यक्ष देखकर कृतार्थ

हो गया। मैंने फ़क़ीर साहब की क़ब्र की प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया। बहुत ही अच्छा लगा। यहाँ पर भगवान् के नाम का जप करने से मुझे कुछ विशेषता जान पड़ी। एकाग्र मन से गुरुदेव का स्मरण करके मैंने प्रार्थना की—ऐसे ही एकान्त स्थान जङ्गल-पहाड़ में रहकर साधन-भजन करने का सुयोग प्राप्त करा दीजिए।

पीरपहाड़ से सीताकुण्ड बहुत दूर नहीं है। हम लोग वहाँ भी गये। सुना कि सीताजी ने इस कुण्ड में श्राद्ध-तर्पण आदि किया था, इसी से कुण्ड का नाम सीताकुण्ड हो गया है। यह कुण्ड कोई १०।१२ फुट लम्बा-चौड़ा होगा। गहराई का मुझे पता नहीं। स्थान-स्थान पर जल के नीचे पत्थर देख पड़ते हैं। हरदम पानी खौलता रहता है। भला उसे हाथ से कौन छू सकता है! अतिरिक्त जल के निकास के लिए एक पक्का नाला है। अगर कोई अकस्मात् कुण्ड में गिर पड़े तो फिर वह ज़िन्दा नहीं निकल सकता। इसी से वह कुण्ड चारों ओर रेलिङ्ग (बेड़े) से घिरा हुआ है। सीताकुण्ड से कुछ हाथों की दूरी पर रामकुण्ड और भरतकुण्ड हैं। इन कुण्डों का जल ठण्डा है। सीताकुण्ड पर पहुँचते ही मुझे अपने पितरों की अकस्मात् सुधि आ गई। मानों वे मेरे हाथ से इस कुण्ड का जल पाने की आशा से यहाँ आये हुए हैं, इस तरह के भाव ने मुझे बेचैन कर दिया। मालूम नहीं, यह स्थान का प्रभाव है या और कुछ। श्राद्ध-तर्पण आदि को मैं सदा से कुसंस्कार मानता आया हूँ; किन्तु मैं स्थिर न रह सका। रामकुण्ड और भरतकुण्ड में नहा-धोकर मैंने कुछ दूर पर जाकर सीताकुण्ड के नाले में जाकर स्नान किया। नहाने से बहुत ही आराम मिला। पितरों का स्मरण करके २।४ अञ्जलि जल देते ही मैं रो पड़ा। अपने भीतर एक अपूर्व शक्ति का मुझे अनुभव होने लगा। युग-युगान्त से, सरलविश्वासी निष्ठावान् असंख्य लोगों के जिस भाव के प्रभाव से यहाँ का निचला, ऊपर का और चारों ओर का स्थान व्याप्त हो रहा है आज शायद उसी भाव ने मेरे चित्त को ऐसा अभिभूत और मुग्ध कर दिया है। यहाँ पर गुरुदेव की कृपा की ख़ास निशानी भी मिली।

स्वप्न की सफलता। मुँगेर आना सार्थक। साधन-प्राप्ति के लिए मँझले दादा की प्रार्थना और गोस्वामीजी की स्वीकृति

मुँगेर में मेरे दिन बड़े आराम से बीत रहे हैं। आज मँझले दादा ने मुझसे बातचीत करते-करते कहा—'जी को शान्ति किसी तरह नहीं मिल रही है। क्या करने से जी को

शान्ति मिलती है ?' मैंने तुरन्त कहा—'गोस्वामीजी का आश्रय लेने से शान्ति मिलती है। वे जो साधन देते हैं उसको ग्रहण करके रीति से करते रहने पर भीतर कभी अशान्ति नहीं आती।' मँझले दादा ने कहा—'वे क्या मेरे जैसे आदमी को दीक्षा देंगे ?' मैंने कहा—'आप उन्हें पत्र में खुलासा हाल लिखिए। वे अवश्य साधन देने को तैयार हो जायँगे।' मेरी बात मानकर मँझले दादा ने गोस्वामीजी को पत्र लिख भेजा। उत्तर आने में देर नहीं लगी। उन्होंने लिखा है—

श्रद्धास्पदेषु !

आपका पत्र मिला। आप लोगों के भले के लिए प्रार्थना किया करता हूँ। आपकी इच्छा पूरी होगी। जब तक भेंट न हो, बीच-बीच में कुशल-समाचार देते रहिए। कुलदा से मेरा आशीर्वाद कहिए।

शुभाकाङ्क्षी—

श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी

गोस्वामीजी का यह आश्वासन पाकर, कि उनके साथ भेंट होते ही मँझले दादा की आशा पूरी हो जायगी, मुझे अपार आनन्द हुआ। पहले मैंने जो सपना देखा था उसे इस प्रकार अक्षर-अक्षर सत्य होते देखकर मुझे बड़ा अचरज हुआ। इतने दिनों के बाद मेरी समझ में आया कि गोस्वामीजी ने मुझे फ़ैज़ाबाद जाने की चेष्टा करने से रोककर मुँगेर क्यों भेजा है। अब तो देखता हूँ कि मेरी दीक्षा लेने के बाद से ही जीवन की विशेष-विशेष घटनाओं की ओट में रहकर गुरुदेव मानों इच्छाशक्ति द्वारा मेरे सब कामों की ख़ासी व्यवस्था कर रहे हैं। घटनाओं के वास्तविक कारण का निर्णय करने में असमर्थ होने से मैं साफ़-साफ़ नहीं समझ पाता कि आश्चर्य के कारण मुझमें यह संस्कार उत्पन्न हो रहा है अथवा सचमुच इन सब कामों के भीतर गुरुदेव का हाथ है। किन्तु चित्त का खिंचाव गुरुदेव की ओर अपने-आप है।

मुँगेर के जल-वायु के कारण मैं बहुत कुछ चङ्गा हूँ। रोज़ सबेरे गङ्गास्नान करता हूँ; दिन प्रतिदिन साधन-भजन करने की ओर मानों उत्साह भी बढ़ता जा रहा है। रात के पिछले पहर उठकर प्राणायाम कुम्भक करता हूँ। बड़े तड़के उठकर, हाथ-मुँह धोकर, आसन पर बैठ जाता हूँ; ७॥ बजे तक त्राटक करता हूँ, फिर मँझले दादा के साथ चाय पीता हूँ।

इसके बाद ९॥ बजे तक फिर नाम का जप किया करता हूँ। १०॥ के भीतर हम लोगों का स्नान भोजन सब हो जाता है। इसके बाद आसन पर ४॥ बजे तक बैठा रहता हूँ। स्कूल की छुट्टी होने पर मँझले दादा के लौट आने पर उनके साथ बात-चीत करते-करते शाम हो जाती है। इसके बाद ९॥ बजे रात तक कोई ख़ास काम नहीं होता। भोजन कर चुकने पर अच्छी नींद न आने तक साधन किया करता हूँ। बस, यही मेरी दिनचर्या है।

द्वितीय स्वप्न—फूल के पौदे की अस्वाभाविक मृत्यु

पौष शुक्ला ११, १९४५

याद नहीं पड़ता कि इन दो वर्षों के बीच मैंने किसी वृक्ष का डाल, पत्ता, फूल या फल कुछ भी तोड़ा हो। जब से मैंने गोस्वामीजी से सुना है कि सजीव वृक्षों में हमारी ही तरह अनुभव-शक्ति है तब से इस विषय में मेरा भी एक दृढ़ संस्कार हो गया है। किसी को वृक्ष के डाल-पत्ते तोड़ते देखकर मुझे अच्छा नहीं लगता, बड़ा कष्ट होता है। यहाँ तक कि स्त्रियाँ जिस स्थान में बैठकर रसोई के लिए तरकारी काटती हैं, वहाँ भी मैं नहीं रह सकता; देखने से दिल में दर्द होता है। बरामदे की छत पर, मेरे कोठे के सामने, मँझले दादा ने कुछ फूलों के पौदे गमलों में लगवा रक्खे हैं। प्रतिदिन शाम-सबेरे मैं उन पौदों को अपने हाथ से पानी देता हूँ। नौकरानी पानी देना चाहती है; किन्तु इससे मुझे सन्तोष नहीं होता। हम लोगों के पड़ोस के मकान के बरामदे की छत हम लोगों की छत से सटी हुई है; दोनों मकानों की एक ही छत कह सकते हैं; बीच में मामूली सी १॥ हाथ ऊँची दीवार उठाकर अलग-अलग दो भाग कर दिये गये हैं। पुलिस इंसपेक्टर श्रीयुक्त अधर बाबू इस बग़लवाले मकान में रहते हैं। उन्होंने भी अच्छे-अच्छे फूलों के पौदे, हमारी छत की सीध में, लगा रक्खे हैं। दोनों छतों पर फूलों के पौदों की शोभा देखने से भी बड़ी प्रसन्नता होती है। रात के ३ बजे नाम का जप करते-करते एक दिन मुझे नींद आ गई। स्वप्न देखा—मैं अपने फूलों के पौदों में पानी दे रहा हूँ; अधर बाबू की छत पर के तीन पौदे अकस्मात् हिल उठे और मुझको बुलाकर बड़ी दीनता से कहने लगे—'अजी एक बार हमारी तरफ़ भी देखो। हमारी हालत देखने से क्या तुम्हें कुछ कष्ट नहीं होता? प्यास के मारे हमारी जान निकली जाती है। तुम्हारे हाथ का थोड़ा सा पानी चाहते हैं। नहीं मिलेगा तो हम न बचेंगे।' सपना देखकर मैं जाग उठा। मन बहुत ही बेचैन हो गया। नाम का जप करते-करते किसी तरह

तड़के तक का समय बिताया। सबेरे देखा कि वे पौदे खासे लहलहा रहे हैं। सोचा—'उलटे-सीधे स्वप्न तो अक्सर देख पड़ते हैं। यह भी वैसा ही जान पड़ता है।' जो हो, मन में खटका हो जाने से मैंने अधर बाबू की नौकरानी से पौदों में बहुत पानी देने के लिए कह दिया। वह ऐसा ही करने लगी। दूसरे के मकान की छत पर जाकर अपने हाथ से पानी देने में मुझे एक प्रकार का संकोच हुआ। स्वप्न देखने के बाद से मैं प्रति दिन सबेरे उठकर उन पौदों को देख आता हूँ। आज चौथा दिन है। सबेरे उठकर देखा, विचित्र मामला है—एक रात में ही वे तीनों लहलहाते हुए पौदे बिलकुल मुरझा गये हैं! समझ में नहीं आता कि यह कैसी अद्भुत घटना है। मालूम नहीं, किसी पारलौकिक आत्मा ने मेरे हाथ का जल पाने की आशा से उन पौदों का आश्रय तो नहीं लिया था। तीनों पौदों की हालत देखकर पछतावे के मारे मेरे जी में जलन हो रही है। मैंने तीनों पौदों की जीवनी-शक्ति को उद्देश करके तीन चुल्लू पानी ऊपर की ओर छिड़क दिया। इससे मेरे दिल की जलन कुछ-कुछ ठण्डी हो गई।

तृतीय स्वप्न। गङ्गासागर-सङ्गम की यात्रा। गुरुनिष्ठा का उपदेश

पौष पौर्णिमा, रविवार

आज बहुत रात बीते स्वप्न देखा—ब्रह्मपुत्र नद के किनारे एक ऐसे बाजार में हूँ जहाँ बहुत अधिक भीड़-भाड़ है। नदी के उस पार, बाजार के पास, बहुत सी कई रङ्गों की छोटी-बड़ी नावें देख पड़ीं। गोस्वामीजी ने एक बड़े से बजरे पर सवार होकर सब शिष्यों को उस पर चढ़ा लिया। हम लोगों को गङ्गासागर जाना है। गोस्वामीजी के पुराने विशिष्ट मित्र एक महात्मा ने मुझको इशारा करके कहा—'तुम हमारी नाव पर न आ जाओ। बड़े आराम से पहुँच जाओगे। हम भी तो गंगासागर को ही जा रहे हैं।' मैंने उनकी बात नहीं मानी। जल्दी पहुँचने के लिए वे छोटी नदी के सीधे रास्ते से नाव को ले चले। गोस्वामीजी ने विशाल ब्रह्मपुत्र की अनुकूल धारा में बजरे को छोड़ दिया। देखते-देखते हवा भी हम लोगों के लिए सहायक हो गई। पाल खोलकर गोस्वामीजी शान्ति से बैठ रहे। बड़ा भारी बजरा सन-सन करता हुआ चलने लगा। गोस्वामीजी के कहने से हम सभी लोग एक-एक डाँड़ लेकर बजरे को खेने लगे। किन्तु बहुत ही तेज चलनेवाले बजरे को डाँड़ की सहायता से चलाने का अवसर

ही न मिला—डाँड़ के जल को छूते ही बजरा न जाने कहाँ को तेजी से जाने लगा। तब गोस्वामीजी खूब उत्साह देकर तमाशा देखने लगे। डाँड़ चलाना अनावश्यक समझकर हम लोगों ने अन्त में उस काम से हाथ खींच लिया। नदी के किनारों की सुन्दरता देखते-देखते, थोड़े ही समय में, हम लोग गंगासागर के समीपवर्ती एक बालू के टीले पर पहुँच गये। वहीं पर नाव लगा दी गई। बालू के टीले पर उतरकर हम सब लोगों ने नहा-धोकर भोजन किया।

इसी समय देखा कि वे महात्माजी भी आ गये हैं। सीधे मार्ग से झटपट पहुँचने के लिए वे जिस नदी की राह होकर रवाना हुए थे उसमें, दुर्भाग्य से, विघ्न हो गया था। उलटे बहाव और विपरीत जोरों की हवा में पड़कर उनकी नाव बड़े सङ्कट में फँस गई थी। दूसरा उपाय न देख, जी-जान से डाँड़ चलाकर वे पसीने से तर हो गये और हाँफते-हाँफते हमारे बजरे के पास पहुँच पाये। उन्होंने अपनी डोंगी को हमारे बजरे से ही बाँध दिया। 'अब मैं निश्चिन्त हुआ' कहकर वे मेरे साथ धर्मचर्चा करने लगे। इधर गोस्वामीजी की आज्ञा से हम लोगों का बजरा खोल दिया गया।

मैंने महात्माजी से पूछा—भगवान् को प्राप्त करने का कौन सा सहज उपाय है?

उन्होंने कहा—भगवान् के वास्तविक नाम से निरन्तर उनको बुलाते रहने से ही सहज में उनकी प्राप्ति हो जाती है।

मैं—तो क्या भगवान् का भी असली और नक़ली नाम है?

महात्मा—किसी ने जिस नाम से बुला-बुलाकर उनके दर्शन कर लिये हैं उसके लिए वही नाम भगवान् का असली नाम है।

मैं—जब तक वस्तु का पता ही न था तब तक उसका कोई नाम होगा किस तरह? पहले वस्तु है और फिर उसका नाम है न?

महात्मा—किसी समय भगवान् की ही कृपा से एक श्रेणी के लोग उत्पन्न हुए थे, जिन्होंने उनकी कृपा से उनको प्राप्त किया था। वे लोग, सर्वसाधारण के लिए, भगवान् को प्राप्त करने के जितने उपाय बतला गये हैं उन उपायों का ही हम लोगों को सहारा है। आसानी से भगवान् को प्राप्त करने के लिए उन प्रणालियों का अनुसरण करने के सिवा दूसरा उपाय नहीं है।

मैं—बतलाइए, इस समय मेरा क्या कर्तव्य है। गुरु भी मेरे हो गये हैं; और मुझे रीति भी बतला दी गई है।

महात्मा—तो अब तुम्हें चिन्ता किस बात की है? तुम्हें सद्गुरु का आश्रय मिल गया है। उनके उपदेश को मानकर चलने से ही सहज में भगवत्प्राप्ति हो जायगी। तुम्हारे गुरुदेव से कुछ भी छिपा हुआ नहीं है।

स्वप्न देखकर मैं जाग पड़ा। कैसा अद्भुत स्वप्न है! महात्मा लोग भी इस प्रकार स्वप्न के द्वारा, दया करके, गुरुनिष्ठा का उपदेश देते हैं। पता नहीं, बिना आगा-पीछा किये गुरु की आज्ञा का पालन करने की मति मेरी कब होगी।

कष्टहारिणी और मुँगेर नाम की सार्थकता

माघ कृष्णा ६, बुधवार

मैं प्रायः प्रतिदिन दोपहर को भोजन करके कष्टहारिणी के घाट पर जाता हूँ। वहाँ पर शाम तक नाम का जप किया करता हूँ। घाट बड़ा ही मनोहर है। थोड़ी देर बैठने से ही गङ्गाजी की हवा और स्थान के प्रभाव से देह-मन की सारी जलन मानों एकदम दूर होकर ठण्डक पड़ जाती है, बिना ही उपाय किये चित्त अपने आप एकाग्र हो जाता है। मालूम नहीं कि गङ्गाजी के ऊपर ऐसा सुन्दर भजन करने का स्थान कहीं है या नहीं। घाट तो मानों गङ्गाजी के बीच में है। दाहनी और बाईं तरफ़ तथा सामने गङ्गाजी का दृश्य बहुत ही लुभावना है। साधु-संन्यासियों के ठहरने के लिए घाट के ऊपर ही छोटे-छोटे भजनालय बने हुए हैं। इन कुटियों में सदा साधु-संन्यासी ध्यान में मग्न बैठे हुए मिलते हैं। घाट पर कष्टहारिणीजी प्रतिष्ठित हैं। इन्हीं के नाम से इस घाट का नाम कष्टहारिणी हो गया है। विभिन्न सम्प्रदायों के साधु और उदासी लोग यहाँ पर, बिना किसी प्रकार की छेड़-छाड़ के, अपने-अपने आसन पर भजन में मन लगाये बैठे हुए हैं। यहाँ आ जाने से फिर डेरे पर जाने की इच्छा नहीं होती। अब तक मैं जितने स्थानों को देख चुका हूँ उनमें यह स्थान साधन-भजन करने के लिए सबसे बढ़कर जान पड़ता है। साधु-सज्जनों के भजन के गुण से इस स्थान में भगवान् की शक्ति का ऐसा एक अद्भुत प्रभाव फैला हुआ है कि घाट पर पहुँचते ही सचमुच भीतर का सारा सन्ताप दूर हो जाता है। 'कष्टहारिणी' के नाम की सार्थकता का अनुभव होता है। मैंने

सुना कि प्राचीन समय में यहाँ पर 'मङ्गु' नामक ऋषि का आश्रम था, इसी से बस्ती का नाम भी मुङ्गेर हो गया है।

चतुर्थ स्वप्न। गुरु की आज्ञा का पालन करने में सङ्कोच

माघ कृष्णा १२

आज रात के पिछले पहर फिर एक बढ़िया स्वप्न देखा। हजारों गुरुभाइयों के साथ गङ्गास्नान करने के लिए एक पक्के घाट पर आया हूँ। सभी अपनी-अपनी मौज में स्नान कर रहे हैं। मैं घाट की सीढ़ी पर खड़ा रहा। इसी समय देखा कि गुरुदेव एक ओर से जल्दी-जल्दी क़दम उठाते हुए चले आ रहे हैं। दोनों बग़ल और सामने की ओर देखकर हमीं लोगों में से किसी-किसी को कूदकर पकड़ते हैं; मैं समझ न सका कि उनको पकड़कर वे क्या कहते हैं या क्या करते हैं। गुरुदेव क्रम से जितने मेरे समीपवर्ती होने लगे उतना ही मैं डरने लगा कि कहीं मुझे भी न पकड़ लें। अकस्मात् दाहने, बाँयें और सामने के सभी को पार करके उन्होंने आकर मुझे पकड़ लिया और कहा—'**झटपट नङ्गा हो जा, तेरे सारे बदन पर एक बार हाथ फेर दूँ। तुझे एक दुर्लभ अवस्था प्राप्त हो जायगी।**' ज्योंही गुरुदेव ने यह बात कही त्योंही मैं काँप उठा, इन्द्रिय चञ्चल हो गई! एकाएक दुर्दम काम की उत्तेजना से मैं बेचैन हो गया। तब मैंने गुरुदेव के चरणों में गिरकर कहा—'मुझे सँभल जाने को दो मिनिट की मुहलत दीजिए।' गोस्वामीजी ने बार-बार लँगोटी खोलने के लिए कहकर भी जब देखा कि मैं उनका कहा नहीं कर सका, संकोच कर रहा हूँ, तब कहा—'**इस दफ़े नहीं हुआ। तीन दिन बाद मैं फिर आऊँगा।**' बस, वे अन्तर्द्धान हो गये। मैं भी जाग उठा। स्वप्न देखने से मन में बहुत ही बेचैनी हुई।

मुँगेर की विशेषता

कोई दो महीने मुझे मुँगेर में हो गये। बहुत दिन की बात है कि प्रचारक-अवस्था में गोस्वामीजी कुछ समय तक मुँगेर में ठहरे थे। उनकी दुलारी बेटी सन्तोषिणी की मृत्यु इसी मुँगेर में हुई थी। सुना कि उस समय वे शोक के मारे उन्मत्त से हो गये थे। "शोकोपहार" नामक एक पुस्तक में उन्होंने उस समय की सारी मानसिक अवस्था का वर्णन विस्तृत रूप से किया था। यहीं, मुँगेर में, एक महापुरुष से भेंट होने पर गोस्वामीजी के धर्मजीवन में आमूल परिवर्तन की सूचना हुई। 'आशावती का उपाख्यान' में भी

गोस्वामीजी ने उसका कुछ-कुछ परिचय दिया है। यहाँ का महातीर्थ कष्टहारिणी सचमुच मानों सारे मानसिक कष्टों को गङ्गाजल में धोकर शान्ति प्रदान करता है। घाट की सुन्दरता तो अतुलनीय है। पीछे की ओर क़िला तो एक बढ़िया तसवीर जान पड़ता है।

यहाँ पर दो महीने रहकर साधन-भजन करने से विशेष लाभ मालूम हुआ।

भागलपुर में निवास

फागुन और चैत्र १९४५

बी० एल० परीक्षा देने के सुबीते के लिए मँझले दादा ने मुँगेर से कलकत्ता हेयर स्कूल में तबादला करा लिया। मैं भागलपुर चला आया। भागलपुर में इस प्रान्त के स्कूल-इंसपेक्टर अपने बहनोई श्रीयुक्त मथुरानाथ चट्टोपाध्याय के यहाँ ठहरा। भागलपुर भी मुझे पसन्द आया। मथुरा बाबू जिस मकान में रहते हैं वह और भी अच्छा है। यह मकान बर्दवान के महाराजा का है और बहुत लम्बी-चौड़ी जगह में बना हुआ है। खंजरपुर में बिलकुल गङ्गा-किनारे है। इसी से मकान का नाम 'पुलिनपुरी' है। 'पुलिनपुरी' के सामने की अँगनाई को डुबोती हुई गङ्गाजी बह रही हैं। स्थान जैसा सूनसान है वैसा ही आनन्ददायक है। मेरे रहने को बिलकुल गङ्गा-किनारे कमरा मिला है। कुछ दिन यहाँ रहकर ख़ूब साधन-भजन और समय-समय पर सत्सङ्ग करने लगा। कुछ समय के पश्चात् यहाँ भी मेरा स्वास्थ्य ख़राब हो गया; दर्द भी बेतरह बढ़ गया।

अयोध्या पहुँचना। साधुओं का सत्सङ्ग

वैशाख, १९४६

सब की सलाह से मैं बिना देर किये वैशाख के प्रारम्भ में, फ़ैज़ाबाद में, बड़े दादा के पास चला गया। अयोध्या से ५।६ मील के फ़ासले पर फ़ैज़ाबाद में बड़े दादा श्रीयुक्त हरकान्त वन्द्योपाध्याय सरकारी अस्पताल में असिस्टेंट सर्जन हैं। अस्पताल की लम्बी-चौड़ी ज़मीन में अहाते के भीतर एक ओर, एक बढ़िया दो-मंज़िले मकान में दादा रहते हैं। उनके साथ मेरा समय बड़े आनन्द में बीतने लगा। अस्पताल के काम से बचे हुए समय में दादा धर्म-चर्चा ही किया करते हैं। उनके सभी साथी ऊँचे ओहदों पर हैं और अँगरेज़ी ढँग से सुशिक्षित हैं, फिर भी सज्जनाश्रित होने से निष्ठावान् और धर्मगतप्राण हैं। ये लोग धर्म-चर्चा में बहुत ही आनन्द और हृदय से आग्रह प्रकट करते हैं। बड़े दादा ने लगातार कई दिन तक मेरे रोग की जाँच-पड़ताल बड़ी बारीकी से की। दवा-दारू से इस बीमारी का हटना असम्भव समझकर

उन्होंने सलाह दी कि सदाचार की रक्षा करते हुए उसे स्वभाव पर ही छोड़ दो। दर्द जब कुछ कम रहता है तब शाम-सबेरे मैं सड़क पर घूम लेता हूँ। अयोध्या और फ़ैज़ाबाद में साधु-सन्तों की कमी नहीं है। गुरुदेव ने कहा था—**नक़ली वेश में महापुरुष सब जगह विचरते रहते हैं। काशी, वृन्दावन, अयोध्या आदि तीर्थों में वे अधिकांश रहते हैं। उनको पहचान लेना कठिन है। कुली और मज़दूर के वेश में भी वे लोग घूमते-फिरते हैं।** गुरुदेव की इस बात को याद कर मैं प्रतिदिन दोनों वक्त रास्ते-रास्ते घूमता हूँ; और अपने दोनों ओर तथा सामने जिनको देखता हूँ उन सब को मन ही मन प्रणाम करता हूँ। भगवान् की कृपा से धीरे-धीरे इस समय मुझे कुछ महात्माओं के दर्शन हो गये। बिना ही माँगे उन्होंने असाधारण कृपा की जिससे अपना अयोध्या आना मैं सार्थक समझता हूँ। साधन-भजन करने की यहाँ खूब इच्छा होती है—मन तो मानों सदा उदास बना रहता है। देखता हूँ कि यहाँ के साधु-महात्माओं के सत्सङ्ग के प्रभाव से मेरे चित्त का आकर्षण और निष्ठा गुरु की ओर ही बढ़ रही है।

कलकत्ता में गोस्वामीजी के दर्शन। साधु-महात्माओं के दर्शन का ब्योरा

आषाढ़-श्रावण, सं० १९४६

यहाँ पर कुछ महीने तक रहने के बाद गुरुदेव के दर्शनों के लिए मैं बहुत ही व्याकुल हो गया। इसी समय ऐसी भगवत्कृपा हुई कि किसी पारिवारिक विशेष आवश्यकता से दादा भी मुझे घर भेजने को तैयार हो गये। मैं घर के लिए रवाना हो गया। कलकत्ता पहुँचने पर सुना कि गोस्वामीजी उसी शहर में हैं। गुरुदेव के सत्सङ्ग के लोभ से मेरी इच्छा हुई कि कुछ दिन कलकत्ता में ही ठहर जाऊँ। मैं झामापुकुर मुहल्ले में मँझले दादा के यहाँ ठहरा।

आज तीसरे पहर गोस्वामीजी के दर्शन करने की इच्छा से चला। सुकिया स्ट्रीट पर एक छोटे दो-मंजिले मकान में वे ठहरे हुए हैं। साथ में श्रीधर, श्यामाकान्त पण्डितजी और गोस्वामीजी के घर के लोग हैं।

गोस्वामीजी के पास पहुँचकर देखा कि कमरे में बड़ी भीड़ है; भक्तिभाजन ब्राह्म-धर्म-प्रचारक, श्रीयुक्त शिवनाथ शास्त्री, श्रीयुक्त नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय प्रभृति गण्य मान्य व्यक्ति गोस्वामीजी से धर्म-चर्चा कर रहे हैं। शिवनाथ बाबू ने अपनी एक अवस्था का हाल कह सुनाया। सुनकर गोस्वामीजी ने कहा,—**षट्चक्र-भेदी महात्मा लोग जिस अवस्था**

में रहते हैं उसका आनन्द शिवनाथ बाबू उपासना करते समय कभी-कभी सहस्रार में स्थित होकर लेते हैं। यह बहुत आसान नहीं है।

मुझे देखकर गोस्वामीजी ने बुलाकर अपने सामने बैठाया और फिर कहा—क्यों? तुम अयोध्या से चले आये? वहाँ समय-समय पर तुम्हें अच्छे-अच्छे साधु-महात्माओं के दर्शन हुए हैं न?

मैं—जी हाँ। कुछ महात्माओं के दर्शन हुए थे।

गोस्वामीजी—उनके सम्बन्ध में जो कुछ तुम्हें मालूम हुआ हो वह कहो।

मैं सबके सामने विस्तार के साथ कहने लगा।

नागा बाबा

मैं कई महीने तक फ़ैज़ाबाद में रह आया हूँ। इस अवधि में मुझे ३।४ महात्माओं के दर्शन हुए हैं। अयोध्या जाने से पहले दादा के पत्र द्वारा नागा बाबा का हाल मालूम होने पर मैंने आपको बताया ही था। उस समय आपने कहा था—"ये एक बड़े शक्तिशाली सिद्ध पुरुष हैं।" फ़ैज़ाबाद पहुँचने पर मैंने पहले उन्हीं के दर्शन किये। 'गुप्तारघाट' से डेढ़ दो मील के फ़ासले पर सरयू के उस पार, सूनसान लम्बे-चौड़े मैदान में, ये रहते हैं। मिट्टी का बहुत ऊँचा टीला सा बनाकर उसमें ऊपर चढ़ने को दो-तीन सीढ़ियाँ सी बना ली हैं। सबसे ऊँची सीढ़ी समतल धरती से कोई ५० फ़ुट ऊँची होगी। उसी के ऊपर खुली जगह में नागा बाबा का आसन है। वहाँ से बहुत दूर तक पेड़-पौदा नाम लेने को भी नहीं है। चारों ओर घास का मैदान है। गुप्तारघाट अथवा कैंटोनमेंट से उस ओर देखो तो मोटे खम्भे के ऊपर पक्षी की तरह बाबाजी देख पड़ते हैं। उस टीले के प्रायः दोनों ओर सरयू नदी है; अन्य दो दिशाओं में दूर तक खाली मैदान है। यह मैदान सरयू का, पानी से घिरा हुआ, बलुआ मैदान है। एक पतली सी नहर सरयू के एक ओर आकर नागा बाबा के आसन-स्थान को घेरती हुई दूसरी ओर सरयू में ही जा मिली है। उसमें थोड़ा-थोड़ा पानी रहता है। मैंने सुना कि एक बार इस नहर की धारा बढ़ जाने से जल इतना बढ़ा कि धीरे-धीरे नागा बाबा के आसनस्थान के समीप आ गया। तब बाबाजी बारबार नहर से कहने लगे—"माई, इधर मत आ।" किन्तु नहर का बढ़ना न रुका। अब बाबाजी ने कुछ नाराज होकर कहा—'हाँ! ऐसा है! अच्छा, बन्द हो जाओ।' तभी

से नहर बिलकुल बन्द हो गई है। शहर के सभी आदमी कहते हैं—'बाबाजी सिद्ध पुरुष हैं। उनके कहने से ही नहर की वह हालत हो गई है।'

फ़ैज़ाबाद में ठण्ड और गर्मी दोनों ही ख़ासी पड़ती हैं। पूस और माह में पक्के कमरे के भीतर भी आग तापनी पड़ती है; फिर गर्मियों में, जेठ-वैसाख में, ९ बजे के बाद घर से बाहर निकलना मुशकिल है; पाँच मिनिट तक धूप में रहते ही ऐसा लगता है कि शरीर जल गया और फफोले पड़ गये। किन्तु नागा बाबा उस मैदान में, खुली जगह में, कड़ी गर्मी और सर्दी में बिना किसी सहारे के किस तरह दिन-रात नङ्गे पड़े रहते हैं यह सोचकर मैं दङ्ग रह गया। यह जानने की मुझे इच्छा हुई कि उन्होंने बस्ती से इतनी दूरी पर क्यों अपना आसन लगाया। एक दिन बाबाजी से पूछा तो उन्होंने अपने जीवन की बहुत सी बातें बतलाईं। मैंने सुना, वे बहुत दिनों तक तीर्थयात्रा करने के बाद अन्त में फ़ैज़ाबाद में गुप्तारघाट पर आये। भीड़-भाड़ से दूर रहने का उनका नियम है, इसी से मैदान में जाकर उन्होंने आसन लगाया। एक दिन गहरी रात में सामने धूनी जलाये हुए वे नाम का जप करते-करते ऊँघकर जलती हुई आग पर गिर पड़े। इससे शरीर कई जगह बुरी तरह झुलस गया। बाबाजी ने जल जाने के घावों की जलन से बेचैन होकर चिल्लाकर बड़ी व्याकुलता से रामजी से कहा—'अरे रामजी, तुम्हारे लिए मैंने इतना किया और तुमने मेरी यह हालत कर दी!' यह कहते ही बाबाजी ने देखा कि आकाशमार्ग से एक भयङ्कर न जाने क्या सौं-सौं शब्द करता चला आ रहा है। बात की बात में वह मूर्त्ति बाबाजी के सामने आ गई और बाबाजी को ज़ोर से पकड़कर जलती हुई आग पर पटककर रगड़ने लगी; आग के बिलकुल बुझ जाने पर धूनी की भस्म उठाकर बाबाजी के बदन में मल दी। इसके बाद उसी शक्तिशाली आकाशचारी ने कहा—'यहीं रहो, आसन कभी मत छोड़ना। तुम्हें कोई उपाधि छू तक न सकेगी। सिद्ध हो जाओ।' तभी से बाबाजी आसन छोड़कर कहीं नहीं गये। इसके लिए बाबाजी की कड़ी परीक्षा भी हुई है।

गोस्वामीजी—वह कैसी?

मैं—बाबाजी जिस मैदान में रहते हैं उसके बग़ल में ही फ़ैज़ाबाद कैंटोनमेंट है। लम्बा-चौड़ा मैदान होने से वहीं पर उत्तर-पश्चिम प्रान्त की गोलन्दाज सेना की चाँदमारी हुआ करती है। चाँदमारी शुरू होने से पहले मैदान के पासवाले गाँवों को नोटिस दे

दी जाती है। तब सभी को दो-चार दिन के लिए अन्यत्र चला जाना पड़ता है। एक बार इसी तरह चाँदमारी शुरू होने से पहले नोटिस जारी की गई। सब लोग घर-द्वार छोड़कर दूसरी जगह चले गये; किन्तु नागा बाबा अपने आसन से न हटे। सरकार की ओर से उन्हें वह स्थान छोड़ देने के लिए बार-बार ताकीद दी जाने लगी। बाबाजी ने कहा— "बच्चा लोगो, खेलो। हमारा आसन सिद्ध है, इसको हम छोड़ नहीं सकते। कुछ नहीं हो सकता। तुम लोग अपना खेल खेलो।" मैंने सुना कि इसके बाद सरकार की ओर से बहुत डर दिखलाया गया; किन्तु बाबाजी अपने आसन से न हटे। अब हुक्म हुआ कि निर्दिष्ट समय के भीतर यदि बाबाजी वहाँ से न हटेंगे तो उनकी मौत के लिए सरकार जिम्मेदार न होगी। ठीक समय पर गोलाबारी शुरू हो गई—सारा मैदान अग्निमय हो गया, बाबाजी अपने आसन पर स्थिर भाव से धूनी जलाये हुए बैठे रहे। कर्नल केली थोड़ी-थोड़ी देर बाद दूरबीन के सहारे देखने लगे कि बाबाजी जिन्दा हैं या नहीं। असंख्य गोले और गोलियाँ चलने लगीं, इधर बाबाजी ने सिर्फ़ अपना बायाँ हाथ ढाल की तरह सामने कर लिया! तमाम गोले बाबाजी के दाहने, बायें और ऊपर होकर लगातार जाने लगे; किन्तु बाबाजी का बाल भी बाँका न हुआ। यह देखकर कर्नल केली को बड़ा अचम्भा हुआ। अन्त में चाँदमारी हो जाने पर कर्नल साहब ने बाबाजी के पास आकर आदर से बार-बार सलाम करके कहा—'बाबाजी, आज तुमने जो अलौकिक शक्ति का प्रभाव दिखलाया है उसे मैं जिन्दगी भर भूलने का नहीं। चाँदमारी के समय मैंने आपको हर दफ़ा एक ही हालत में स्थिर बैठा हुआ देखा है, इससे मैं भौंचक्का हो गया हूँ।' मैंने सुना है कि सरकार की जिस पुस्तक में अलौकिक घटनाएँ लिखी जाती हैं उसमें इन घटनाओं को भी साहब ने लिख रक्खा है।

गोस्वामीजी—**नागा बाबा बड़े शक्तिशाली पुरुष हैं; तोप का गोला भला उनका क्या कर सकता है? आजकल उस ढँग के शक्तिशाली लोग बहुत कम देखे जाते हैं।**

मैंने पूछा—उस तरह से नागा बाबा के पास कौन आये थे? कौन आकर उनको सिद्ध बना गया?

गोस्वामीजी—भक्तराज महावीर पधारे थे। उन्हीं के वरदान से नागा बाबा सिद्ध हुए हैं।

"महावीर क्यों आये ?"

गोस्वामीजी—राम के नाम से गहरी साँस लेने के कारण ! फिर रामभक्त महावीर क्या बैठे रह सकते हैं ? बाबाजी ने तुमसे कुछ कहा ?

मैं—बाबाजी के दर्शन करने को मैं अक्सर जाता था, और साधारणतः यही आशीर्वाद माँगता था कि मुझे विश्वास और भक्ति मिले। आशीर्वाद माँगने पर बाबाजी चौंक उठते थे; मेरे सिर पर हाथ फेरकर बड़े स्नेह से कहते थे—अरे तुमने तो भगवान् का आश्रय लिया है। तुम्हारे गुरुजी बड़े ही दयालु हैं! वही तो मालिक हैं। वही विश्वास और भक्ति देनेवाले हैं। पूरे बन जाओगे। आनन्द करो, आनन्द करो।

पतितदास बाबाजी

फ़ैज़ाबाद पहुँचते ही दादा से सुना—एक बहुत ही प्राचीन महापुरुष अयोध्याजी के रास्ते में किसी निर्जन कुटी में रहते हैं; किन्तु उनके दर्शन मिलना बहुत कठिन है। पहले कभी-कभी लगातार छः महीने तक वे खाना-सोना छोड़कर एक आसन से समाधि लगाये बैठे रहते थे; दूसरी छमाही में, किसी-किसी निर्दिष्ट समय पर, लोगों को उनके दर्शन हो जाते थे। आजकल वे तीन महीने का अन्तर देकर तीन महीने समाधिस्थ रहते हैं। मुझे खबर मिली कि आजकल वे समाधि में नहीं हैं; अतएव उनके दर्शन के लिए मैं उतावला हो गया। बाबाजी के दर्शन करने को जाने में दादा बार-बार रोक-टोक करने लने; क्योंकि बाबाजी के भजनकुटीर का दरवाज़ा अक्सर बन्द रहता है और जब तक वे स्वयं किसी से भेंट करने की इच्छा न करें तब तक सब लोगों को उनके दर्शन नहीं होते। जो हो, इसके बाद मेरा बहुत अधिक आग्रह देखकर दादा ने मुझे जाने की सम्मति दे दी। मैं बड़ी उत्सुकता से बाबाजी के दर्शन करने को चल पड़ा। फ़ैज़ाबाद से अयोध्या जाने को बड़े भारी मैदान के सामने रास्ता दो ओर को गया है। एक दाहनी तरफ़ देवकाली की ओर, और दूसरा बाईं तरफ़ रानूपाली की ओर। इसी रानूपालीवाले रास्ते के बाईं ओर ही बाबाजी का आश्रम है।

मैंने धीरे-धीरे आश्रम में पहुँचकर देखा कि बाबाजी के भजनकुटीर का दरवाजा बन्द है। मैंने बाहर से ही बाबाजी के उद्देश से साष्टाङ्ग प्रणाम किया। सिर उठाते ही देखा कि उन्होंने दरवाजा खोल दिया है। मुझे बड़े स्नेह से बुलाकर कहा—'आओ बच्चा, आओ, यहाँ बैठो। थोड़ी देर पहले हमें मालूम पड़ा कि तुम यहाँ आओगे, तभी से हम तुम्हारे लिए बैठे हैं।' बाबाजी इकटक मेरी ओर देखते रहे। थोड़ा ठहर-ठहरकर वे चौंकने और कहने लगे—"अहा! धन्य हो गया! धन्य हो गया! दुर्लभ सद्गुरु का आश्रय पाया है! धन्य हो गया!" जब बाबाजी की उमंग कुछ कम हुई तब मैंने कहा—'बाबाजी, मेरा भला कैसे होगा?' बाबाजी ने बड़ी उमङ्ग से मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहा—'और क्या बचा? सब तो पूरन हो गया। उसी काले का ध्यान करो।' मैं देर तक उनके पास बैठा रहा। वे लगातार रोते रहे, और ठहर-ठहरकर वही एक बात कहने लगे। बाबाजी का शरीर बहुत पुराना है। कोई डेढ़ सौ वर्ष के होंगे; लम्बा क़द है; गोरा रङ्ग है; चेहरा गुलाब की तरह लाल है; दाढ़ी, मूँछ और केश सब सफ़ेद हैं; हाथों-पैरों के नाखून इतने बढ़ गये हैं कि कँटिया की तरह मुड़ गये हैं। बात-बात में आँखों से आँसू टपक पड़ते हैं। देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

गोस्वामीजी ने कहा—**पतितदास बाबाजी तान्त्रिक साधन करके सिद्ध हुए हैं। ये बड़े भारी प्रेमिक हैं। देखो, मनुष्य तान्त्रिक साधन करने पर भी कैसा प्रेमिक होता है! ऐसे पुरुषों का दर्शन हो जाना सहज बात नहीं है। रङ्गमहल में हनुमानगढ़ी में किसी साधु के दर्शन हुए हैं?**

गोपालदास बाबा

एक दिन अकस्मात् एक साधु ने आकर दादा से कहा—"बाबू साहब, रङ्गमहल में एक साधु को कान में बड़ी तकलीफ़ है। आपको ख़बर दे दी है; अब उनको देखना न देखना आपकी मर्ज़ी पर है। उनके पास रुपया-पैसा नहीं है। न तो वे आपकी 'फ़ीस' दे सकेंगे और न अयोध्या तक आने-जाने का गाड़ी का किराया ही।" यह ख़बर पाते ही दादा साधु के पास जाने के लिए अस्थिर हो गये; तुरन्त ही एक गाड़ी मँगवाकर वे मुझे साथ लेकर अयोध्या को रवाना हो गये। थोड़ी देर में हम लोग उस जगह पहुँच गये, और रङ्गमहल में अनेक कमरों में घूम-फिर कर एक अँधेरी कोठरी में घुसे। उस कोठरी के बगल

में, फ़र्श के नीचे एक गुफा से एक बूढ़े साधु निकल आये। उनके कान के भीतर बहुत मैल जम गया था। दादा ने जब उसे निकाल लिया तब दर्द हट गया।

बाबाजी को देखने से बड़ा आश्चर्य हुआ। शरीर दुबला-पतला है। ऐसा लगता है मानों हड्डियों के ऊपर सिर्फ़ चमड़ी ही चमड़ी है। चमड़ी का रङ्ग अस्वाभाविक सफ़ेद है—बिलकुल दूध की तरह। किन्तु चेहरा खासा भरा हुआ, चमकीला और तेज-पूर्ण है। सदा मुसकुराते रहते हैं। मैंने सुना कि बाबाजी की उम्र डेढ़ सौ वर्ष से भी ऊपर है। रङ्गमहल के बूढ़े-बूढ़े साधु भी नहीं जानते कि उस अँधेरी गुफा में बाबाजी कब से रहते हैं। वे दिन भर में सिर्फ़ एक बार, रात के पिछले पहर, शौच के लिए बाहर निकलते हैं। रङ्गमहल के साधुओं को साल में एक बार भी दर्शन नहीं होता। वे हमेशा इसी गुफा में रहते हैं। लौटते समय नमस्कार करके बाबाजी से आशीर्वाद माँगा। बाबाजी ने हाथ जोड़कर, गद्गद होकर, कहा—रामजी बड़े दयालु हैं, बड़े दयालु हैं! उन्हीं का नाम लेकर उन्हीं के स्थान में पड़ा रहा हूँ। अब जो करें रामजी। बच्चा, बड़े भाग्य से रामजी का आश्रय पाया है। अब नाम जपो, और आनन्द करो।

तुलसीदास बाबा

मैं फिर कहने लगा—अयोध्या में सरयू-किनारे एक मन्दिर में बाबा तुलसीदास रहते हैं। अयोध्या के वर्तमान साधुओं में ये बहुत प्रसिद्ध हैं। दर्शन करने गया तो देखा कि बाबाजी नाम का जप करने में मग्न हैं। सामने और दोनों ओर बहुत से आदमी चुपचाप बैठे-बैठे बाबाजी के दर्शन कर रहे हैं, किन्तु बाबाजी का किसी ओर ध्यान नहीं है। बीच बीच में मानों तन्द्रा से चौंककर सबकी ओर स्नेह से देख लेते हैं और फिर झूमकर गिर पड़ते हैं। बाबाजी ने दादा को देखकर बड़े आदर से सामने बैठने के लिए इशारा किया, और बड़ी प्रसन्नता से यह पूछकर कि 'आनन्द है?' वे फिर जप करने लगे। बाबाजी माला लेकर जप करते हैं; किन्तु माला के साथ उनके हाथ का ही सम्बन्ध जान पड़ा; मन तो मानों कहीं डूब गया है। बाबाजी तो किसी को कुछ उपदेश नहीं देते। सिर्फ़ यही कहते हैं 'नाम का जप करो, नाम का जप करो।'

अन्धे बाबाजी

गोस्वामीजी ने पूछा—और कहीं किसी को देखा?

मैं—जेल-दारोगा नन्द बाबू ने मुझे बतलाया कि फ़ैज़ाबाद के बेगमगंज में एक महात्मा छिपे हुए रहते हैं। वे कृपा करके मुझे उक्त साधु के यहाँ ले गये। ये महात्मा बहुत ही बुड्ढे हैं; पहले ये किसी राजा के मन्त्री थे। राज्य से सम्बद्ध किसी विषम अनर्थ की सूचना पाकर ये भाग खड़े हुए। रास्ते में किसी आकस्मिक विपत्ति से इनकी आँखें जाती रहीं। पीछे से एक भले मानस की कृपा से ये अयोध्या में आये। उन्हीं के आश्रय में रहकर ये बहुत दिनों से साधन-भजन करते आ रहे हैं। मैंने सुना कि ये अगाध पण्डित हैं। बहुत से शास्त्र, पुराण और दर्शन आदि इनको कण्ठस्थ हैं। बाबाजी ने मुझसे कहा—'कठोर साधन और तीव्र वैराग्य के बिना कुछ भी नहीं होता। ऊपरी आँखें न रहें तो कुछ भी हानि नहीं है। साधन के प्रभाव से देव-देवी के दर्शन, चित्र-दर्शन, ज्योति के दर्शन आदि सब होते हैं। सदाचार से रहकर गुरु का आश्रय लेते हुए शास्त्र की रीति के अनुसार कोई साधन-भजन करे तो गुरु की कृपा से उसका इहलोक और परलोक सुधर जाता है।' दर्शन-विज्ञान द्वारा बाबाजी इन बातों को प्रमाणित करने लगे।

गोस्वामीजी ने कहा—**अयोध्या में हनुमानगढ़ी बड़ा ही जाग्रत् स्थान है। वहाँ पर प्रायः महापुरुष आया करते हैं। किन्तु वे अपना परिचय आप न दें तो न तो कोई उन्हें छू सकता है और न पकड़ सकता है। गुप्तारघाट और हनुमानगढ़ी यही दो स्थान अब तक ठीक बने हुए हैं। प्राचीन अयोध्या का और सब सरयू के पेट में चला गया है।**

गोस्वामीजी से बातचीत करके मैं डेरे पर वापस चला आया। कुछ दिन तक कलकत्ता में ठहरकर मैं इसी प्रकार प्रतिदिन उनका सत्सङ्ग करने लगा।

योगजीवन और शान्तिसुधा के विवाह का उत्सव

पिछले कई महीने से मैं गोस्वामीजी के पास नहीं था। अतएव उस समय के उनके क्रिया-कलाप का ब्योरा मेरी डायरी में नहीं है। कलकत्ता और गेंडारिया में कुछ समय तक रहकर गुरुभाइयों से जो कुछ सुना है उसको संक्षेप में यहाँ लिखे लेता हूँ। यदि कभी गोस्वामीजी के मुँह से ये बातें सुनने को मिलेंगी तो विस्तार से लिख लूँगा।

गोस्वामीजी ने अपने बेटे-बेटी—श्रीयुक्त योगजीवन गोस्वामी और श्रीमती शान्तिसुधा देवी—का विवाह श्रीमती वसन्तकुमारी देवी और उनके बड़े भाई श्रीयुक्त जगद्बन्धु

मैत्र के साथ सं० १९४५ की फाल्गुन शुक्ला ६, शुक्रवार को किया है। आधुनिक रीति से सुशिक्षित और खासे सम्पन्न मालदार खानदान में बेटे-बेटी का विवाह करना गोस्वामीजी के लिए कुछ कठिन न था; किन्तु अपने गुरु परमहंसजी की आज्ञा से उन्होंने बिना कुछ आगा-पीछा किये, रिश्तेदारों के और घरवालों के रोक-टोक तथा विरोध करते रहने पर भी, यह काम बड़ी प्रसन्नता से कर दिया है। जामाता पहले से ही गोस्वामीजी से दीक्षा ले चुके थे। साधारण ब्राह्मसमाज की रीति के अनुसार ही यह विवाह किया गया है। ढाका के प्रसिद्ध वकील श्रीयुक्त ईश्वरचन्द्र घोष गोस्वामीजी के भक्त थे। गोस्वामीजी के एक शिष्य को साथ लेकर वे एक दिन आकर कहने लगे—'अब अन्य मत की रीति के अनुसार विवाह क्यों किया जाय? हिन्दुओं की रीति से किये जानेवाले विवाह में ऋषियों का सम्बन्ध है, अतएव हिन्दूमत से ही विवाह क्यों न किया जाय?' गोस्वामीजी ने कहा—"अच्छी बात है;" किन्तु दो दिन बाद ही उन लोगों को बुलाकर कहा—**मैंने सोचकर देखा है कि हिन्दूमत से इन लोगों का विवाह नहीं हो सकता। ब्राह्मण का एक भी संस्कार योगजीवन का नहीं हुआ; जगद्बन्धु भी अनेक प्रकार से अनाचार कर चुका है। इनका प्रायश्चित्त होना बहुत कठिन है, और इसके लिए समय ही कहाँ है? तुम लोग कुछ चिन्ता न करो। ब्राह्म-पद्धति के अनुसार, रजिस्ट्री करके, इनका विवाह करना होगा।**

भक्तिभाजन श्रीयुक्त नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय और रजनीकान्त घोष ने क्रम से गोस्वामीजी के बेटे-बेटी के विवाह में पुरोहिताई की थी। विवाह के स्थान में गोस्वामीजी मौजूद थे; गार्हस्थ्यधर्म के सम्बन्ध में उन्होंने जो अपूर्व, सारगर्भित और हृदयस्पर्शी उपदेश दिया उसे सुनने से सभी को लाभ हुआ था और सभी विमुग्ध हुए थे। पुत्र को उन्होंने एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहने की आज्ञा दी। गेंडारिया आश्रम में, इसके उपलक्ष में, गया के आकाशगङ्गा पहाड़ के रघुवर बाबाजी और अन्य कई सिद्ध पुरुष पधारे थे। विवाह के दूसरे दिन रजिस्ट्री हुई। इस विवाह में साधु-सज्जनों का समागम होने से कई दिन तक आनन्दोत्सव होता रहा था और उसमें गोस्वामीजी के कई अद्भुत योगैश्वर्य अकस्मात् प्रकट हो गये। उनको आगे प्रमाण-सहित लिखने की इच्छा है।

श्रीधर का पागलपन और महाराज का दण्ड देना

गेंडारिया-आश्रम में रहते समय कुछ दिन तक श्रीधर का पागलपन बेहद बढ़ गया था। उस समय उनके लोकाचार-विरुद्ध, विवेक-शून्य, गर्हित कामों से सभी गेंडारियावासी बहुत ही ऊब गये थे। श्रीधर के उत्पात को बिल्कुल शान्त कर देने के लिए, दिन-रात उद्विग्न रहनेवाले, कुछ असहिष्णु लोगों ने विषम षड्यन्त्र रचा। उन प्रतिहिंसा-परायण व्यक्तियों के दारुण कुचक्र का स्वयं पता पाकर गोस्वामीजी ने उन लोगों को षड्यन्त्र से अलग करने के लिए भक्त श्रीधर को बेहद दण्ड दिया था; और श्रीधर को वहाँ से हटाने के लिए उन्होंने गेंडारियावालों को आज्ञा दी थी कि न तो कोई श्रीधर का साथ करे और न उसे भोजन दे। श्रीधर कभी तो भूखे रहकर और कभी स्नेहमयी श्रीयुक्ता योगमाया महाराजिन के छिपाकर दिये हुए मुट्ठी-दो-मुट्ठी भात को खाकर, पेड़ तले पड़े रहकर, किसी तरह दिन तेर करने लगे। उन्होंने किसी तरह गोस्वामीजी का आश्रय नहीं छोड़ा। दण्ड के अतिशय कठोर होने के कारण श्रीधर बच गये। उनकी दुर्दशा देखने से उनके शत्रुओं को दया आ गई। उन्हीं लोगों ने अन्त में गोस्वामीजी के पास जाकर इस बार श्रीधर को क्षमा कर देने का अनुरोध किया।

धूलटोत्सव

(मेरी असावधानी के कारण निम्नलिखित घटना ठीक स्थान पर सन्निविष्ट नहीं की जा सकी।)

इकरामपुर के डेरे में एक दिन गोस्वामीजी ने बातों ही बातों में कहा—'इस बार धूलटोत्सव करना चाहिए।' गुरुभाइयों में से बहुतों ने धूलट उत्सव का नाम तक नहीं सुना था। श्रीश्रीअद्वैत प्रभु की आविर्भाव-तिथि माघी-सप्तमी को शान्तिपुर में हर साल कोई एक महीने तक यह उत्सव हुआ करता है। होली के समय जिस तरह गुलाल उड़ाया जाता है उसी तरह इस उत्सव में सङ्कीर्तन के समय रास्ते की धूल उड़ाई जाती है, इसी से इसका नाम 'धूलट' हो गया है।

कई दिन बाद श्रीयुक्त कुञ्जविहारी घोष के घर गुरुभाइयों का एक दिन निमन्त्रण हुआ था। भोजन के अन्त में श्रीयुक्त दुर्गाचरण राय ने कहा 'महाराज ने जब धूलट की इच्छा प्रकट की है तब यह उत्सव अवश्य करना चाहिए। खर्च के लिए सब लोग मिल-जुलकर थोड़ा-थोड़ा दीजिए।' उसी समय रुपया वसूल करने की चेष्टा होने लगी और

गोस्वामीजी को सूचित किया गया कि इस बार धूलट उत्सव किया जायगा। इसी समय सिलहट से ढाका में एक अन्धे बाबाजी पधारे। वे गोस्वामीजी के डेरे में ही उतरे और सुमधुर सङ्गीत तथा बाजे की मधुरता से सबको मुग्ध करने लगे। पदावली को गाते-गाते बाबाजी बड़ी विचित्र रीति से स्वयं मृदङ्ग और मँजीरे बजाते थे। वे एक मँजीरे को चित रख देते और दूसरे को हाथ में लटका लेते, फिर मृदङ्ग के ताल के साथ-साथ हाथ हिलाने की हिकमत से एक मँजीरे से दूसरा टकराकर ताल पर बजने लगता था। धूलट उत्सव के कई दिन पहले से ही अन्धे बाबाजी के अपूर्व कीर्तन-गान से आश्रम में सदा आनन्द का फुहारा छूटने लगा।

इधर माघी-सप्तमी तिथि आ पहुँची। आठ बजे के लगभग श्रीयुक्त कुञ्ज बाबू, विधु बाबू और प्रसन्न मजूमदार प्रभृति, डेरे के दूसरी ओर के कदमतला* में गोस्वामीजी को सामने करके गाने लगे—

हरि बोलबो मुखे, जाबो सुखे व्रजधाम
कलिते तारक ब्रह्म हरिनाम† ।—इत्यादि

गोस्वामीजी रास्ते में गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम करने के बाद धूल में लोटने लगे। फिर उठते ही दोनों हाथों से धूल उठाकर, 'जय सीतानाथ' 'जय सीतानाथ' कहते-कहते, चारों ओर फेकने लगे। शक्तिसंयुक्त धूल का स्पर्श होते ही, पल भर में, सभी के भीतर एक अभूतपूर्व भाव का सञ्चार हो गया। देखते-देखते वे लोग भावोन्मत्त अवस्था में हुंकार और गर्जन करते तथा धूल फेकते हुए उद्दण्ड नृत्य करते-करते गोस्वामीजी के साथ-साथ आगे बढ़ने लगे। इसी समय कई और कीर्तन-मण्डलियाँ अकस्मात् आकर सङ्कीर्तन में सम्मिलित हो गईं। अब सङ्कीर्तन के कोलाहल में मृदङ्गों और मँजीरों की ध्वनि मिलकर चारों दिशाओं

---

* कहा जाता है कि श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के पुत्र श्रीयुक्त वीरभद्र महाराज ने यहां पर एक कदम के पेड़ तले अपना आसन स्थापित करके कुछ समय तक साधन-भजन किया था। समय पाकर जब वह पुराना कदम का पेड़ उखड़ गया तब उसी जगह एक दूसरा कदम का पेड़ उग आया। इस प्रकार अब तक वीरभद्र का आसन-स्थान रक्षित बना हुआ है।

† मुँह से हरि का नाम लेंगे और आराम से व्रजधाम को जायँगे। कलियुग में हरि का नाम ही तारक-ब्रह्म है।

में गूँजने लगी। गोस्वामीजी बहुत उछल-उछलकर नृत्य करते हुए चले किन्तु भावाधिक्य के कारण कई पग आगे पहुँचते-न-पहुँचते वे, गति रुक जाने के कारण, गिर पड़ने लगे। इस समय उमंग और आनन्द की हलचल सी मच गई। प्रबल भाव के बगूले ने लगातार बढ़ते-बढ़ते अपूर्व धूल के ढेर के स्पर्श से दर्शकों को अभिभूत कर डाला। रास्ते के दोनों ओर स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, कुली-मज़दूर, दूकानदार प्रभृति जो जिस हालत में था वह उसी अवस्था में मन्त्र-मुग्ध की तरह देखता रह गया। किसी-किसी अटारी पर स्त्रियाँ बेसुध होकर सङ्कीर्तन के स्थान में कूद पड़ने की चेष्टा करने लगीं, बच्चे भी जगह-जगह पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

यह महासङ्कीर्तन इतनी धीमी चाल से आगे बढ़ने लगा कि पाँच-सात मिनिट के रास्ते के श्रीविहारीलालजी के मन्दिर में पहुँचने को पूरे तीन घंटे लगे। इस तरह सङ्कीर्तन सुत्रापुर, फ़रासगंज, बँगलाबाज़ार, पाटुवाटूली, शाँखारीबाज़ार और लक्ष्मीबाज़ार में घूमकर तीसरे पहर तीन बजे इकरामपुर में वापस आया। तब मकान के दरवाज़े पर अन्धे बाबाजी आकर यह गीत गाने लगे—'नगर भ्रमण करे आमार गोर एलो घरे, आमार निताई एलो घरे*'। इस समय जो भाव उद्दीपित हुआ उसकी नई उमङ्ग में सभी दुबारा उन्मत्त-से हो गये। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। धीरे-धीरे सङ्कीर्तन रुकने पर झूमती हुई जनता ने शान्त-भाव धारण किया।

इस विचित्र भावोन्मादकारी धूलटोत्सव के नगरकीर्तन से ढाकावासी लोग बहुत ही मुग्ध हो गये थे। एक अल्पवयस्क बालक के १०।१२ घण्टे तक अचेत रहने से उसके पिता-माता उसके जीवन से हताश हो गये। वे लोग गोस्वामीजी के पास आकर, व्याकुल होकर, रोने लगे। तब गोस्वामीजी उन लोगों के घर गये और उसको छूते ही स्वस्थ करके चले आये। एक और जगन्नाथ स्कूल का १४।१५ वर्ष का छात्र, धूलटोत्सव के सङ्कीर्तन में, भावावेश में इतना मस्त हो गया कि ६।७ दिन तक रह-रहकर रास्ते-रास्ते 'मेरे कृष्ण कहाँ हैं' 'मेरे कृष्ण कहाँ हैं' कहकर रोता हुआ दौड़ता रहा था। दिन के अधिक समय में उसे बाहरी चेत न रहता था। उसका नाम अश्विनीकुमार मित्र है। घर विक्रमपुर में है। उसके घरवाले और स्वजन बहुत दिनों तक उसकी यह हालत देखकर डर गये और गोस्वामीजी के पास आकर कातर भाव से उसके प्रतीकार का उपाय पूछने लगे। गोस्वामीजी

* नगर में घूम करके हमारा गौर घर लौट आया, हमारा निताई लौट आया।

ने कहा—"यह लड़का यदि भक्त वैष्णवों के पास रहता तो इसका ख़ासा आदर होता। ख़ैर, हुगली ज़िले के अन्तर्गत एक गाँव में एक भले घर की बहू की हरिकीर्तन में यही हालत हो गई थी। इससे घर के सभी लोग घबरा गये। तब एक ब्राह्मण ने जाकर कहा कि किसी पुजारी ब्राह्मण को न्यौता देकर भोजन कराइए और उसकी जूठन बहू को खिला दीजिए तो उसकी साधारण हालत हो जायगी। घर के मालिक ने ऐसा ही किया तो बहू का भावावेश दूर हो गया।"

मैंने सुना कि अश्विनी के साथ भी यही बर्ताव किया गया था, जिससे उसकी स्वाभाविक अवस्था लौट आई थी। इस महासङ्कीर्तन के प्रधान गायक और वादक श्रीयुक्त कुञ्जलाल नाग थे। जिस उमङ्ग के साथ वे छः घण्टे तक लगातार गाते-बजाते रहे थे उसका ख़याल करने से बहुत लोगों को आश्चर्य हुआ कि यह काम उन्होंने किस शक्ति के प्रवाह से किया। कुछ दिन पहले इन्हीं कुञ्ज बाबू को एक दिन छाती से लगाकर गोस्वामीजी ने कहा था—'सनातन गोस्वामी का आलिङ्गन करके महाप्रभु ने जिस सुख का अनुभव किया था वही सुख आज इनके स्पर्श से मिला है।'

लाल के योगैश्वर्य पर गुरुभाइयों का मुग्ध होना

शान्तिपुरनिवासी बालक साधक लालविहारी वसु के जातिस्मरत्व और धर्मजीवन में अद्भुत उत्कर्ष प्राप्त कर लेने के साथ-साथ उनकी प्रवीणता और योगैश्वर्य की चर्चा चारों ओर फैल गई है। बहुतेरे गुरुभाइयों को तो लालविहारी के प्रभाव से मुग्ध होने के कारण गोस्वामीजी की ओर भी विशेष रूप से ध्यान देने का वैसा अवसर नहीं मिल रहा है। गोस्वामीजी साधन-सिद्ध हैं और लाल हैं नित्यसिद्ध—इस ढँग का संस्कार भी किसी-किसी के मन में उत्पन्न हो गया है। गुरुभाइयों के बीच लाल की असाधारण शक्ति और प्रतिपत्ति फैल जाने से किसी-किसी की गुरुनिष्ठा घट जाने और शोचनीय परिणाम का आरम्भ हो गया है।

दुबारा भागलपुर आना

कार्तिक का अन्तिम सप्ताह, सं० १९४६

कलकत्ता में कुछ दिन तक ठहरकर मैं घर गया। वहाँ पर मेरा दर्द धीरे-धीरे बढ़ने लगा। अतएव वहाँ पर बहुत देर न करके मैं फिर भागलपुर चला आया।

खञ्जरपुर की पुलिनपुरी में बिलकुल गङ्गा-किनारे वह कमरा है जिसमें कि मैं रहता हूँ। मैंने निश्चय किया कि जब तक बीमारी न हटेगी तब तक यहीं रहूँगा। गोस्वामीजी का साथ छूट जाने से अब तक का डायरी लिखने का उत्साह बिलकुल ठण्डा पड़ गया! अपने कुत्सित जीवन का चित्र अङ्कित करने में लाभ ही क्या है; उलटा जो लोग उसे देखेंगे उनका नुक़सान होने की ही आशंका है। यदि मुझे फिर कभी गुरुदेव का दुर्लभ साथ प्राप्त हुआ तो जी भरकर उनकी तीर्थस्वरूप पवित्र लीला को डायरी में लिखकर कृतार्थ हूँगा। आज से मैंने डायरी लिखना बन्द कर दिया।

बहुत दिन बाद डायरी लिखने की प्रवृत्ति

पौष का अन्तिम और माघ का प्रथम भाग

नियमित रूप से डायरी लिखना छोड़े बहुत दिन हुए। इस एक वर्ष में कितने प्रकार की अवस्था आई और चली गई, उसका ख़याल करने से सपना सा जान पड़ता है। गुरुदेव ने और बारोदी के ब्रह्मचारीजी ने डायरी लिखते रहने के लिए मुझे उत्साहित किया था। अब उसका स्मरण करने से कष्ट होता है। मैं नहीं जानता कि अपने पाप-पूर्ण जीवन की घटनाओं को लिखने की मुझे क्या आवश्यकता है। हाँ, ऐसा जान पड़ता है कि अपने जीवन की ख़ास-ख़ास घटनाओं पर विचार करने से शायद कभी मेरा ही भला होगा। समय-समय पर स्वभाव में विशेष विकार होना और चरित्र की चञ्चलता देखकर भविष्यत् उन्नति की आशा को बिलकुल छोड़ देना पड़ता है। चारों ओर देखता हूँ कि जिन लोगों का, बहुत ही पवित्र और निःस्वार्थ धर्मात्मा समझे जाने के कारण, किसी समय देश भर में मान था वे ही समय के फेर से अवस्था के चक्कर में पड़कर कुछ के कुछ हो गये हैं। उन लोगों के पिछले जीवन की तुलना में मेरा जीवन भला है ही क्या चीज़! बिलकुल तुच्छ समझकर जिन मामूली प्रलोभनों की परवा साधारण आदमी तक नहीं करते, देखता हूँ कि उन्हीं में विधि के चक्र से पड़कर महान् तेजस्वी पवित्रात्मा लोग भी चक्कर खा रहे हैं। अतएव मेरा भरोसा ही क्या है? मैं कितना ही भला क्यों न होऊँ, मेरा डिग जाना बहुत ही सहज है; और डिग जाने पर फिर अपनी जगह पर पहुँच जाना टेढ़ी खीर है। मैं बख़ूबी जानता हूँ कि जब तक मेरे गुरुदेव की सदय पवित्र मूर्ति मेरे हृदय में जागरूक रहेगी, उनकी स्नेहदृष्टि मेरी स्मृति में प्रकाशित बनी रहेगी, तब तक मेरा पतन नहीं होने का; महात्माओं की बातों

पर अविश्वास और गुरुदेव की कृपा को भूल जाने से ही मेरा अधःपात होगा। अपने को बड़ा समझकर जब और सभी को तुच्छ समझूँगा, तब मेरी उन्नति होगी ही किस तरह ? कुछ समय से मैं इसी फ़िक्र के मारे बहुत ही बेचैन रहता हूँ। किन्तु ऐसी दुर्गति और अवनति होने पर शायद यह डायरी ही मेरे कान खड़े करे और मुझे सद्गति के मार्ग पर लगावे। मैं अपने जीवन की सच्ची घटनाओं पर तो कभी अविश्वास कर न सकूँगा। इस गन्दे, कूड़े-कचड़े से भरे हुए, जीवन-पङ्क में मेरे दयालु गुरुदेव की स्नेह-दृष्टि से समय-समय पर जो मनोहर कमल खिल जाता है उसे यह डायरी ही किसी दिन मेरी नजर के आगे कर देगी। बुरे समय में यह डायरी ही गुरुदेव की याद को फिर से ताजा कर देगी, इस निर्णय पर पहुँचकर मैंने फिर डायरी लिखने का विचार पक्का किया। श्रीश्रीगुरुदेव के चरण-कमलों में मस्तक झुकाकर, बारोदी के ब्रह्मचारीजी की पवित्र मूर्ति का स्मरण करके, अब फिर जीवन की खास-खास घटनाओं के लिखने को तैयार हो गया हूँ।

सत्सङ्ग की प्राप्ति। गङ्गामाहात्म्य और तर्पण में विश्वास

भागलपुर आ जाने पर भी मेरे दर्द में कुछ कमी न हुई। ऐसी धारणा हो गई कि अब बहुत दिन तक बचना मुशकिल है। मेरा संसार में आना व्यर्थ हुआ ; जैसी इच्छा थी उस तरह भगवान् का नाम न ले सका। इस प्रकार घबराहट और फ़िक्र के मारे मैं बहुत बेचैन रहने लगा। अब मैं एक निर्दिष्ट नियम बनाकर उसी के अनुसार सारा दिन बिताने लगा।

गुरुदेव की कृपा से एक भजनानन्दी सत्सङ्गी भी मुझे आसानी से मिल गये। सुना था कि ढाका कालेजियट स्कूल के मास्टर श्रीयुक्त हरिमोहन चौधरी ने गुरुदेव से संन्यास की कुछ नियमपद्धति ग्रहण की थी। कठोर वैराग्य के सहारे वे सर्वत्यागी उदासी की तरह पैदल ही बहुत पर्यटन करके, कुछ समय से, भागलपुर आये हुए हैं ; रास्ते-रास्ते हरिसङ्कीर्तन के भाव की तरङ्ग उत्पन्न करके उन्होंने जनता के हृदय में धर्म का चश्मा बहाया है। भागलपुर की हरिसभा के हरिनाम-सङ्कीर्तन में स्वामीजी का अद्भुत भावावेश देखकर सभी लट्टू हो गये। स्वामीजी से भागलपुर में कुछ दिन ठहर जाने के लिए सभी लोगों ने अनुरोध किया। एक प्रसिद्ध वकील बड़ी आव-भगत से स्वामीजी को अपने घर ले गये। अङ्गरेजी-शिक्षा-प्राप्त मनुष्य को भगवान् का नाम लेने से महाभाव होता है, वह अचेत हो जाता है, यह भागलपुर के अँगरेजी पढ़े-लिखे लोगों के लिए बहुत ही अद्भुत बात जँची। वे लोग

स्वामीजी की बेहद श्रद्धा-भक्ति करने लगे। शहर में प्रसिद्ध हो गया कि स्वामीजी सिद्ध पुरुष हैं। गुरुदेव की स्वामीजी को यह ख़ास आज्ञा है कि वे एक दिन से अधिक कहीं पर न ठहरें। स्वामीजी का यही नियम हो गया था। किन्तु हरिसङ्कीर्तन के लोभ से मस्त होकर स्वामीजी उस आज्ञा का उल्लंघन कर बैठे। "मैं तो संन्यासी हूँ, मेरे लिए विधि-निषेध कैसा ?" इस धारणा से स्वामीजी गुरुवाक्य की परवा न करके वकील बाबू के यहाँ रहने लगे। एक ओर प्रतिदिन हरिसङ्कीर्तन में भावावेश की उमङ्ग में जैसे वे सबको भौंचक्का करने लगे, दूसरी ओर वैसे ही कुसंसर्ग में पड़कर मांस और जूठे-मीठे आदि की छूत में गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करके भीतर-ही-भीतर दिन-प्रतिदिन मलिन होते जाने लगे। इसके बाद एक दिन स्वामीजी, क़रीब-क़रीब आधे सिड़ी की हालत में, मेरे पास आकर कहने लगे—भाई, मुझे बचाओ। मेरा सत्यानाश हो गया है। संन्यास भाव के साथ-साथ गुरुदेव ने कृपा करके मुझे जो अवस्था दी थी वह ग़ायब हो गई है। हाय, हाय! मैं एक नये राज्य में पहुँच गया था, नित्य मेरे सामने नये-नये दृश्य प्रकाशित होते थे। दर्शन की दिशा मेरे लिए इतनी साफ़ हो गई थी कि दिन भर में यदि आध घण्टे भी दर्शन का कुछ न मिलता तो मैं बेचैन हो जाता था। सङ्कीर्तन में यह दर्शन और भी साफ़ हो जाता था; अतएव मैं यह कहता हुआ घूमने फिरने लगा कि कहाँ है सङ्कीर्तन, कहाँ है सङ्कीर्तन। गुरुदेव ने कहा था—'**लगातार नाम का जप करते रहना, इस नाम से ही सब कुछ हो जायगा।**' किन्तु इष्टनाम की अपेक्षा सङ्कीर्तन की ओर मेरा झुकाव अधिक हो गया। इस सङ्कीर्तन के लोभ से ही गुरु-वाक्य और संन्यास के नियम की परवा न करके मैंने वकील साहब के घर आसन जमा दिया। कीर्तन में नित्य नये-नये दर्शन होंगे, इस लोभ से ही गुरुदेव की निरी एक आज्ञा का उल्लंघन करने से मैं सङ्कट में फँस गया हूँ। एक आज्ञा का उल्लंघन करते ही दस नियमों में शिथिलता आ गई। फिर तो आचार छोड़कर, स्वेच्छाचार करके, क्रम से सब कुछ खो बैठा हूँ। कुछ दिन बीतते-न-बीतते मेरे सङ्कीर्तन का वह भाव और भक्ति भी सूख गई। अब कीर्तन में जाना छोड़ दिया है; मेरा वह भाव नहीं है, मुझ पर अब किसी को श्रद्धा भी नहीं रह गई, उलटी मेरी अवहेला ही सर्वसाधारण में है। मैं अब वकील साहब के बच्चों का गृहशिक्षक बनकर समय व्यतीत कर रहा हूँ। मेरे लिए कुछ उपाय कर दो।

स्वामीजी छात्रावस्था में ढाका कालेज में मथुरा बाबू के बहुत ही प्रिय छात्र थे। मथुरा बाबू को स्वामीजी ने जब साफ़-साफ़ अपनी दुरवस्था का हाल कह सुनाया तब उन्होंने दया करके, स्वामीजी को हम लोगों के साथ रखने के लिए, अपने बच्चों का मास्टर नियुक्त कर लिया। २५) मासिक वेतन कर दिया; भोजन आदि की व्यवस्था हम लोगों के साथ ही रही। शाम-सबेरे बच्चों को तीन घण्टे पढ़ाकर बचे हुए समय में स्वामीजी नियमित रूप से साधन-भजन करने लगे। हम लोग महीने के अन्त में स्वामीजी के वेतन के कुछ रुपये उनकी स्त्री के पास भेजने लगे। नियम से चलकर कठोर साधन-भजन द्वारा स्वामीजी ने थोड़े समय में ही अपनी दुरवस्था को सुधार लिया। अब स्वामीजी के साथ से मुझे बड़ा आनन्द मिलता है।

मथुरा बाबू के मुंशी श्रीयुक्त महाविष्णु यति हम लोगों के ही डेरे में रहते हैं। यतिवंश होने से ही, जान पड़ता है, उनकी प्रकृति स्वभाव से ही सात्त्विक है। क़ायदे से दफ़्तर का काम करके बचे हुए समय में वे सिर्फ़ धर्म-कर्म ही किया करते हैं। त्रिकाल की सन्ध्या आदि ब्राह्मण का नित्य कर्म और गङ्गास्नान करने तथा अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन करने का अभ्यास उनका बहुत पुराना है। राधाकृष्ण कहते ही उनकी आँखें भर आती हैं। वे प्रायः प्रतिदिन राधाकृष्ण-लीला-विषयक पद बनाया करते हैं। दफ़्तर का काम करते समय भी अहैतुक भाव की उमङ्ग में कभी-कभी बेक़ाबू होकर गिर पड़ते हैं; तब दफ़्तर का काम रुक जाता है। ये महाविष्णु मेरे साथ एक ही कमरे में रहते हैं अतएव भागलपुर आने पर भगवान् की कृपा से मुझे सत्सङ्गी की कमी न रही।

हमारे डेरे के पूर्व ओर सुविस्तृत गंगाजी हैं—आजकल बालू ख़ाली हो जाने से धारा कुछ हट गई है। बिलकुल गङ्गा-किनारे पर हूँ, हमेशा विशुद्ध वायु का सेवन करता रहता हूँ किन्तु गङ्गास्नान करने नहीं जाता। बँधा हुआ जल स्थिर रहता है अतएव अधिक निर्मल है—इस युक्ति को मानकर मैं कुएँ के पानी से नहाता हूँ। श्रद्धेय स्वामीजी और महाविष्णु बाबू मुझे पुण्यतोया गंगाजी का बहुत-बहुत माहात्म्य बतलाते हैं। मैं उसे कुसंस्कार कहकर उड़ा देता हूँ। जो हो, उनके आन्तरिक आग्रह और अनुरोध को टालने में असमर्थ होकर सब लोगों के साथ ही मैंने सूर्योदय से पहले माघ के जाड़े में गङ्गास्नान करना आरम्भ कर दिया। कई दिन गङ्गास्नान करने से ही शरीर ख़ासा हलका और स्फूर्तिमान् मालूम होने लगा; देखा

कि सूर्योदय से पहले गङ्गास्नान कर लेने से शरीर की सारी ग्लानि और सुस्ती हट जाती है तथा मन भी मानो स्निग्ध हो जाता है; स्नान करते ही हृदय में प्रफुल्लता और पवित्रता आ जाती है; भगवान् के नाम का जप सरस भाव से अपने आप होने लगता है। इन सब बातों का अनुभव मुझे साफ़-साफ़ होने लगा। एक दिन गङ्गास्नान करते-करते अकस्मात् मेरी जाति और वंश के संस्कार ने आकर मुझे दबा लिया। ऐसा जान पड़ा कि इन गङ्गाजी के जल का स्पर्श करके पिता-बाबा आदि पूर्वपुरुषों ने यह सोचकर बहुत ही आनन्द माना है कि 'हमारा उद्धार हो गया!' प्राचीन समय में योगियों और ऋषियों ने इसी गङ्गाजल से भगवान् की न जाने कितनी आराधना उपासना की है! न जाने किस गुण को प्रत्यक्ष देखकर वे गङ्गाजी की स्तुति, पतितपावनी और मोक्षदायिनी कहकर, कर गये हैं! परलोक में रहकर यह गंगाजल पाने से अब भी उन्हें न जाने कितनी प्रसन्नता होगी! मैं आज उनके नाम से अञ्जलि भर-भर के जल दूँगा। यह सोचते ही मैं रोवासा हो गया। ऐसा मालूम हुआ कि न जाने कितने योगी, ऋषि और देवी-देवता तथा मेरे पूर्वपुरुष आकाश में ठहरे हुए आज मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। मैं दोनों हाथों की अञ्जलि में जल भर-भरकर उन लोगों का स्मरण करके ऊपर की ओर छोड़ने लगा। इससे मुझे बहुत आनन्द हुआ। देवी-देवता, ऋषि-मुनि और पुरखा लोग आज मेरे कार्य से सन्तुष्ट हुए हैं—इस कल्पना में सारा दिन बड़े आनन्द और उत्साह से बीता। कल्पना होने पर भी इस आनन्द के लोभ को मैं छोड़ नहीं सका। प्रतिदिन गङ्गास्नान करते समय उन लोगों को जल देने लगा। फिर एक दिन ख़याल हुआ—जब जल दे ही रहा हूँ तब रीति के अनुसार ही क्यों न दूँ? शास्त्रोक्त प्रणाली से उन लोगों का नाम ले-लेकर जल देने से तो उन लोगों को और भी अधिक तृप्ति और आनन्द होगा। यह सोचकर मैंने नित्यकर्म की तर्पण-प्रणाली को कण्ठ कर लिया। तभी से मैं प्रतिदिन, रीति के अनुसार, नियम से तर्पण किया करता हूँ।

तन्द्रा के आवेश में चक्रशक्ति का अनुभव

माघ, सं० १९४६

रात को भोजन कर चुकने पर आज स्वामीजी के साथ एक ही बिस्तरे पर लेटकर गुरुदेव की चर्चा करते-करते मेरी झपकी लग गई। देखा—स्वामीजी पैर के अँगूठे से मेरे अधःप्रदेश को छूकर कह रहे हैं—"यही मूलाधार है; प्राणायाम द्वारा यहाँ से शक्ति को खींचकर ऊपर की ओर सहस्रार में ले जाओ; समाधि

लग जायगी।" उनके कहने के अनुसार मेरे दो-चार बार प्राणायाम करते ही मूलाधार चक्र खिंचकर ऊपर की ओर सङ्कुचित हो उठा। तुरन्त ही उस चक्र से एक शक्ति रीढ़ के भीतर होती हुई सर्सर् करके ऊपर की ओर चली। उस शक्ति की बे-रोक-टोक गति के साथ-साथ मेरी नसें, नाड़ियाँ और रगें मानों फटने लगीं। एक तरह की तकलीफ़ होने लगी। अब प्राणायाम को रोकना चाहा तो रोक न सका। एक अदम्य शक्ति मुझे वश में करके बार-बार प्राणायाम की साँस चलाने लगी। इससे शक्ति ने ऊर्द्धगामिनी होकर, ऊपर के, कई एक चक्रों के आवरणों को फाड़ डाला। ऐसा मालूम हुआ कि मेरी तमाम नाड़ी-नसों के साथ-साथ, मेरे भीतर जो कुछ था वह सब छिन्न-भिन्न हो गया। आह-ऊह करने के सिवा मुझमें उस समय और कुछ कहने की शक्ति ही न रही। दर्द से बेचैन होकर मैं धीरे-धीरे क़रीब-क़रीब बेहोश हो गया। थोड़ी देर में यह शक्ति रास्ता न पाकर, चक्कर काटकर, अकस्मात् नीचे उतर आई। इस समय बहुत ही आराम मिला किन्तु इस दशा का अनुभव पल भर ही हुआ। दूसरे ही क्षण में मेरी वही शक्ति और भी प्रबल वेग से सर्सर् करती हुई ऊपर की ओर दौड़ पड़ी। बारबार, कुछ देर तक, इस तरह शक्ति के नीचे उतर जाने और ऊपर चढ़ जाने से मैं बिलकुल सुस्त हो गया। अकस्मात् एक बार बहुत ही वेग से उठकर यह शक्ति अपने स्थान में जाकर बिलकुल ठहर गई। तब तो मैं मानों परमानन्द-सागर में बिलकुल डूब गया। इसके बाद और कुछ भी कहने का नहीं है। मालूम नहीं कि यह अवस्था कितनी देर तक बनी रही। फिर उस शक्ति के मूलाधार में लौट आने पर मुझे चेत हुआ। देखा कि सारा शरीर पसीने से तर होकर बिलकुल सुस्त हो गया है। बहुत ही संक्षेप में प्रत्यक्ष अनुभव का क्रममात्र संक्षेप में लिख लिया। इसी समय एकाएक स्वामीजी जागकर कहने लगे—"भैया, यह कैसा स्वप्न देखा है? गुरुजी मानों तुम्हारे भीतर कुछ प्रक्रिया कर रहे हैं। थोड़ी चेष्टा के बाद खेद करके उन्होंने हाथ की कलाई हिलाते हुए कहा—'ओहो, सब नहीं हुआ, थोड़ी सी कसर रह गई'।"

अपूर्व सूर्यमण्डल के दर्शन

अब मैं प्रतिदिन रात के ३ बजे उठकर हाथ-मुँह धोता हूँ और फिर ३॥ बजे से लेकर सबेरे ६ बजे तक नाम का जप, प्राणायाम और कुम्भक किया करता हूँ। नहाने के

बाद स्वामीजी और विष्णु बाबू के साथ जलपान करके और चाय पीकर ७ बजे से १० बजे तक बगीचे में एकान्त में बैठकर त्राटक किया करता हूँ। फिर भोजन कर चुकने पर गङ्गा-किनारे के एक सूनसान शिवमन्दिर में चला जाता हूँ। यह डेरे से कुछ हटकर है। वहाँ १२ से लेकर ५ बजे तक एकान्त में साधन करके समय बिता देता हूँ। तीसरे पहर हमारे डेरे में बहुत से भले आदमी आते हैं। उनके साथ शाम तक महाविष्णु बाबू और स्वामीजी धर्मचर्चा तथा सङ्कीर्तन करते हैं। रात को भोजन करने के बाद जब तक नींद नहीं आती तब तक हम लोगों के बीच धर्म-प्रसङ्ग होता रहता है। बीच-बीच में हम लोग रात को बगीचे में तमाल के पेड़ तले जा बैठते हैं। गहरी रात में जङ्गल के भीतर सामने धूनी जलाकर नाम का जप करने में मुझे बड़ा आराम मिलता है। दिन-रात मानों हम लोगों के बीच धर्मोत्सव होता रहता है।

पीछे लिखी हुई स्वप्न की घटना के बाद से साधन-भजन में मेरा उत्साह और भी बढ़ गया। नाम का जप करने के साथ-साथ अलक्षित रूप से गुरुदेव के रूप का मन में झलकना शुरू हो गया। गुरुदेव ने कहा था—'**कभी कल्पना न करना। नाम का जप करते-करते सत्य वस्तु अपने आप प्रकाशित हो जायगी।**' मैं कभी कल्पना नहीं करता; फिर भी तनिक स्थिर होकर नाम का जप करते ही, बिना ही मालूम हुए, गुरुदेव का रूप अपने आप हृदय में देख पड़ता है। इससे मुझे इतना आनन्द मिलता है कि कल्पना होने पर भी उसे छोड़ने की शक्ति नहीं रहती।

इसी बीच एक दिन सबेरे गङ्गास्नान करके नाम का जप करते-करते, स्वामीजी के साथ डेरे पर आ रहा था, और मन गुरुदेव के मनोहर रूप में आविष्ट था कि अकस्मात् माथे में, नीले आकाश में असंख्य वैद्युतिक तेजोमय सफ़ेद ज्योति से युक्त अपूर्व सूर्यमण्डल झिलमिलाकर उदय हो आया। पल भर तक उसकी ओर देखते ही मैं 'जय गुरु, जय गुरु' कहते-कहते बेबस होकर बालू पर गिर पड़ा। * * * पता नहीं, साधन-राज्य में क्या क्या है। यह सब देखकर मैं विस्मित हो रहा हूँ!

साधन में असमर्थ होने से हिकमत करना

गङ्गास्नान के गुण से अथवा दर्शन के लोभ से साधन करने में मेरा उत्साह बढ़ गया। गुरुदेव की आज्ञा है कि प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ नाम का जप किया करो; किन्तु बहुत

चेष्टा करने पर भी देखता हूँ कि वह काम मुझसे नहीं सध रहा है। मैं प्रतिदिन बिस्तरे से उठकर कहता हूँ कि श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ नाम का जप करूँगा और दृढ़ता के साथ करने भी लग जाता हूँ; किन्तु उसमें थोड़ी देर तक लक्ष्य स्थिर होते-न-होते देखता हूँ कि न जाने कब मन और कहीं चला गया है। वारंवार ऐसी चेष्टा करते-करते हैरान हो जाता हूँ। श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ जप करने का अभ्यास किसी तरह नहीं हो रहा है। बहुत चेष्टा करने पर भी जब यह नहीं सधा तब मैंने सोचा कि एक हिमकत करके गुरुदेव की आज्ञा का पालन किया करूँगा। दिन-रात में जितनी बार श्वास-प्रश्वास होता है उतनी ही बार नाम का जप करने का मैंने संकल्प किया। फिर गुरुदेव यदि कृपा करके प्रत्येक श्वास-प्रश्वास पर उसे बैठा लेंगे तो मेरा प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ नाम का जप करना हो जायगा। बस, यह सोचकर मैं २१६०० बार नाम का जप करने लगा। कहीं श्वास-प्रश्वास की संख्या न बढ़ जाय, इसी आशङ्का से मैंने जप की भी संख्या बढ़ा दी। मैं कोई ३०।३२ हजार जप करने लगा। हाथ और माला से नाम के जप का इतना अभ्यास हो गया है कि सोते समय भी अपने आप मेरा हाथ घूम जाता है, यह बात मुझसे दूसरों ने कही है। संख्या पूरी करने में लगे रहने से मुझे दिन भर में इतनी छुट्टी नहीं मिलती कि किसी से बातचीत कर लूँ। बाहर बहुत ही स्थिर रहने पर भी, संख्या पूरी करने की चेष्टा में, भीतर-ही-भीतर मैं बेतरह घबरा जाता हूँ। कई बार तो इसके लिए मेरा सिर तक गरम हो जाता है। गुरुदेव ने कहा था—**'हमारे साधन में श्वास-प्रश्वास ही नाम की जपमाला है।'** जब किसी तरह उसका अभ्यास न कर सका तब सुबीता देखकर बाहरी माला का सहारा न लूँ तो और क्या करूँगा? पता नहीं कि इस युक्ति से साधारण रीति के अनुसार मेरे साधन करने का अनुमोदन गुरुदेव करेंगे या नहीं।

त्राटक के साधन में दर्शन का क्रम

मैं मुद्दत से त्राटक करता आ रहा हूँ। पिछले साल से यह साधन करते समय अनेक प्रकार के दर्शन होने लगे हैं। अब तक जितने प्रकार के दर्शन हुए हैं उन्हें, क्रम के अनुसार, यहाँ पर लिखता हूँ।—

(१) साधन करते समय लक्ष्य स्थान पर ४।५ इञ्च के, घड़ी की स्प्रिङ्ग की तरह, कई स्तरों के गोल-गोल, बहुत ही चञ्चल, गहरे काले रङ्ग के ४।५ चक्र लगातार बाईं ओर से

और फिर वही पल भर में दाहिनी ओर से बड़ी तेजी से घूमा करते हैं। कुछ दिन तक मैंने यही देखा।

(२) दृष्टि को स्थिर करते-करते फिर मैंने देखा कि उक्त चक्रों का आयतन घट गया है। फिर वे आपस में संलग्न होकर एक ही स्थिर मण्डलाकार में परिणत हो गये और उस मण्डल के बीचोंबीच सरसों बराबर छोटे-छोटे असंख्य ज्योतिर्बिन्दु प्रकाशित हो गये। उसके चारों ओर ४ सफ़ेद हीरों के टुकड़ों की तरह खण्ड-ज्योति झिलमिलाने लगी। मण्डल के बीच में बहुत बड़ा और उजला ज्योतिर्बिम्ब लगातार ज्योतिर्बुद्बुदों को उगलने लगा। कोई ३।४ महीने तक साधन करते समय ऐसे ही दर्शन होते रहे।

(३) माघ महीने के पहले से ही ये दर्शन दूसरे प्रकार के हो गये। गहरे काले रङ्ग के छः इञ्ची परिमित मण्डल के बीचोंबीच एक सफ़ेद चमकीला तेजःपूर्ण गोल कड़ा प्रकट हो गया। आध इञ्ची की बारह सफ़ेद चमचमाती हुई अँगूठियाँ मण्डल के भीतर समान अन्तर पर रहकर उसको घेरे हुए हैं। ये दर्शन कोई तीन महीने तक हुए।

(४) उसमें दृष्टि जमाते-जमाते अब उसका दूसरा आकार हो गया है। ज्योंही कई सेकेण्ड के लिए दृष्टि तनिक स्थिर होती और टकटकी बँधती है त्योंही ५।६ इञ्ची का, ज्योतिर्मय सफ़ेद समचतुर्भुज यन्त्र, वृत्ताकार मण्डल के बीच में देख पड़ता है। थोड़ी देर तक उसमें तीव्र दृष्टि जमाने पर वह एक मटर के बराबर छोटा हो जाता है और बहुत ही गाढ़ा और चमकीला बना रहता है। जहाँ-तहाँ, चाहे जिस अवस्था में, दिन को और रात को, चाहे जब इस ज्योति के दर्शन दृष्टि को तनिक स्थिर करते ही हो जाते हैं।

त्राटक-साधन के पहले स्तर में, पृथिवीतत्त्व में ही, अब तक दृष्टि को जमाता आता हूँ। गुरुदेव ने जैसा बतला दिया है उसके अनुसार अब आकाश-तत्त्व में दृष्टि को जमाना आरम्भ किया है।

तर्पण में छायारूप-दर्शन। कुत्ते की करामात

माघ शुक्ला १२, सं० १९४६

बहुत तड़के जब गङ्गास्नान करने जाता हूँ तब प्रतिदिन रास्ते में मुझे जान पड़ता है कि मानो देवता, ऋषि और पितर मेरे हाथ से गङ्गाजल पाने के लिए मेरे साथ ही साथ चल रहे हैं। नहा-धोकर हाथ जोड़े हुए ऊपर को मुँह करके ज्योंही उनको बुलाता हूँ त्योंही मुझे रोना आ जाता है। पितृ-तर्पण करते समय

प्रत्येक अञ्जलि गङ्गाजल देने के साथ-साथ उस जल के ऊपर अँगूठे बराबर मनुष्य की धुँधली आकृति की चञ्चल छाया मुझे देख पड़ती है। देवतर्पण और ऋषितर्पण करते समय ऐसी छाया को, कल्पना करके भी, मैं दृष्टि के सामने नहीं ला पाता। पितृतर्पण के समाप्त होते ही फिर वह पल भर के लिए भी नहीं रहती।

आज देवतर्पण और ऋषितर्पण करके पितृतर्पण कर रहा था, इसी समय देखा कि ७।८ हाथ के अन्तर पर, गङ्गापार, एक बड़ा सा कुत्ता सतृष्ण दृष्टि से मेरी ओर ताक रहा है। कड़ाके की सर्दी में, दिन निकलने से पहले, वह कुत्ता जल में धँसकर धीरे-धीरे मेरी ओर आने लगा। स्वामीजी और महाविष्णु बाबू ने उसे खदेड़ने की चेष्टा की; तब कुत्ते ने दबे गले से बड़े ही कातर स्वर में ऐसा क्लेशसूचक शब्द किया कि जिसे सुनकर उन लोगों ने फिर उसको नहीं रोका। माघ महीने की बड़े सबेरे की ठण्ड में गङ्गा में नहाने से मनुष्य ऐंठ जाता है और वह कुत्ता सहज ही गले तक डूबा हुआ मेरी दाहिनी ओर जल में कोई एक हाथ के फ़ासले पर आकर खड़ा हो गया; फिर तर्पण का जल गङ्गा के बहाव में पड़कर जैसे बहकर जाने लगा वैसे ही कुत्ता मुँह फैलाकर बार-बार आग्रह के साथ उसी में पंजा मारने लगा। थोड़ी देर तक ऐसा ही करके कुत्ता किनारे पर चढ़ गया। मैं भी तर्पण करके उसी समय किनारे पर आया; किन्तु बड़ी अद्भुत बात है कि हम तीनों आदमियों ने चारों ओर नज़र दौड़ाई, पर लम्बे-चौड़े बालू के मैदान में कुत्ते की कहीं सूरत न दिखलाई दी। तेज़ी से दौड़नेवाला घोड़ा भी, इतने थोड़े समय में, इतने लम्बे-चौड़े बालू के मैदान को तय करके गायब नहीं हो सकता। दिन भर मुझे कुत्ते की याद आती रही।

भागलपुर में साधु पार्वती बाबू। इष्टदेव को प्रसन्न रखना ही साधन और सदाचार का उद्देश्य है

भागलपुर के पञ्चायती स्थान में श्रीयुक्त पार्वतीचरण मुखोपाध्याय नाम के एक सदाचारी निष्ठावान् ब्राह्मण रहते हैं। शहर के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई प्रभृति सभी श्रेणियों के लोग उन्हें परम धार्मिक महात्मा समझकर उनकी श्रद्धा-भक्ति करते हैं। स्वामीजी और महाविष्णु बाबू के साथ मैं उनके दर्शन करने गया। प्राचीन समय के ऋषियों के तपोवन का जैसा वर्णन सुना है मानों वैसा ही आश्रम पार्वती बाबू का देखा। सूनसान बगीचे में तरह-तरह के फल-फूल लगे हुए हैं; अनेक प्रकार के पेड़ क़तारों के सिलसिले में लगे हुए हैं।

वहाँ पहुँचते ही इच्छा हुई कि इसमें कहीं पर बैठकर नाम का जप करने लगूँ। वृक्ष-लताओं समेत सारा आश्रम मानों भगवद्भाव से परिपूर्ण हो रहा है। मैंने बस्ती में ऐसा बढ़िया तपोवन कहीं नहीं देखा। पार्वती बाबू के भजन करने का कुटीर विस्तृत बाग़ के एक ओर है। पार्वती बाबू को देखने से ऐसा जान पड़ा मानों एक ऋषि के दर्शन कर रहा हूँ। लाली-भरे गोरे रङ्ग के तेजःपुञ्ज शरीर में तेजस्विता और पवित्रता मानों लिपटी हुई है। वे बारहों महीने सूर्योदय से पहले ही गङ्गास्नान और सन्ध्या-तर्पण आदि करके आश्रम में आ जाते हैं, फिर शालग्राम और पञ्चदेव की पूजा करके सप्तशती, गीता, उपनिषद आदि धर्मग्रन्थों का पाठ तथा होम किया करते हैं; ग्यारह बजे आसन से उठकर अपना हविष्य बनाते और भोजन करते हैं। इसके बाद घण्टे भर विश्राम करके कुटीर के बरामदे में बैठते हैं; और भगवद्भाव में मस्त होकर दिन भर ध्यान-धारणा करते रहते हैं। रात को थोड़ी ही देर तक सोते हैं; बाक़ी रात को इष्ट का स्मरण किया करते हैं। आज ४२ वर्ष से वे इसी नियम से रहते हैं। मैंने सुना कि उनके नियमित कामों में एक दिन का भी अन्तर नहीं पड़ा। ये षड्दर्शन के अगाध पण्डित हैं; पुराण, उपनिषद आदि ग्रन्थों पर इन्हें पक्का विश्वास है; फिर बाइबिल और क़ुरान आदि को भी ये बड़ी श्रद्धा से पढ़ा करते हैं। यहाँ का शिक्षित सम्प्रदाय इन्हें 'थियासफ़िस्ट' कहता है। मैंने इनके आसन के पास 'थियासफ़ी' के संवादपत्रों आदि का ढेर लगा देखा। मुझे बड़ा अचम्भा हुआ कि अपने भजनाचार में निरत और निष्ठावान् रहते हुए भी ये सभी सम्प्रदायों के धर्मार्थियों की किस प्रकार ऐसी श्रद्धा और भक्ति करते हैं। मैं नहीं समझ पाया कि पार्वती बाबू भक्त हैं अथवा ज्ञानी। भक्ति की चर्चा करते-करते वे रोकर व्याकुल हो जाते हैं। फिर ज्ञान की आलोचना करते समय स्वयं ब्रह्म बन जाते हैं। बड़ी सरलता से, विनीत होकर, जाति-पाँति का विचार छोड़कर सभी को हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं। इनका सङ्ग मुझे बहुत पसन्द आया। मैं हफ़्ते में दो बार इनके यहाँ जाने लगा। मुझपर पार्वती बाबू का असाधारण स्नेह हो गया। वे मुझे उपनिषद का मार्ग समझाने की इच्छा करके बहुत ही संक्षेप में पातञ्जल आदि के मत का उपदेश देने लगे।

ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ की चर्चा होते रहने से शास्त्र और सदाचार पर मेरी निष्ठा बढ़ने लगी। इसका फल यह हुआ कि मैं पग-पग पर प्रत्येक काम को विचारपूर्वक करने

लगा। शुद्ध आचरण रखकर नियम-निष्ठा-पूर्वक आग्रह के साथ साधन-भजन करने का फल गुरुदेव की कृपा से विचित्र रूप से मैं पाने लगा था; किन्तु कुछ समय के बाद इस दर्शनशास्त्र की व्यष्टि, समष्टि और घट-पट आदि के विचार-वितर्क में मेरा अन्तर धीरे-धीरे शुष्क और सन्देहपूर्ण हो उठा। मैं गुरुदेव की असाधारण कृपा की भी छानबीन करने लगा। तब उनके दिये हुए असाधारण साधनराज्य में भूकम्प होने से महाप्रलय की सूचना मिली। अपनी याददाश्त के लिए इन अवस्थाओं का आभास लिखे लेता हूँ। दो-चार पुराण पढ़कर और दर्शनशास्त्र की तनिक सी चर्चा सुन करके मुझे यह सन्देह हुआ कि 'साधन करने की आवश्यकता ही क्या है?' पुराण आदि से यही ज्ञात होता है कि 'पौरुष करने या प्रारब्ध को भोगने से ही सारा संसार चल रहा है।' किन्तु पौरुष के द्वारा ही यदि प्रारब्ध का बनना अवश्यम्भावी हो, तब तो उसका फलाफल बड़ा ही अनिश्चित हो जाता है। क्योंकि अच्छे काम का भला फल और बुरे काम का बुरा फल रुक जाने पर प्रारब्ध का कुछ भी भोग निर्दिष्ट अथवा निश्चित नहीं हो सकता। फिर यदि यही प्रारब्ध कार्य की प्रवृत्ति अथवा उसके अनुष्ठान का हेतु हो तब तो पौरुष सर्वथा अर्थशून्य रह जाता है। फिर पौरुष के द्वारा भोग की उत्पत्ति होना स्वीकृत न किया जाय तो भोग आया ही कहाँ से? और यदि प्रारब्ध ही सारे कार्यों और भोग आदि का हेतु हो तो उस प्रारब्ध का अर्थ वास्तव में भगवान् की इच्छा के सिवा और क्या कहूँगा! उन्हीं की इच्छा से प्रारब्ध उत्पन्न हुआ है और कार्य तथा भोग हो रहा है। प्रारब्ध के सिवा जीव की कोई स्वतन्त्र अथवा स्वाधीन इच्छा नहीं है। अतएव जान पड़ता है कि सब कुछ भगवान् की इच्छा से होता है; जीव तो निरा द्रष्टा और भोक्ता है। तब फिर साधन-भजन करने की क्या जरूरत? नियम निष्ठा और सदाचार से रहने की इतनी अशान्ति और झञ्झट ही क्यों सहूँ? गुरुदेव ने तो स्वयं कहा था कि मेरी अब तनिक भी स्वाधीनता नहीं है, मैं अब उनका गर्भस्थ बच्चा हूँ। अगर यही है तो जो कुछ मेरे भीतर सञ्चारित किया जा रहा है उसी को मैं भोग रहा हूँ। गर्भस्थ सन्तान की क्या देहपुष्टि और क्या जीवित रहना कुछ भी उसके वश की बात नहीं है; वह तो साधारण रूप से गर्भधारिणी के स्वास्थ्य और सम्पूर्ण रूप से भगवान् की इच्छा पर अवलम्बित है। यह प्रत्यक्ष बात है कि गर्भ में बच्चे के चलने-फिरने से गर्भधारिणी को कष्ट होता है; नियम, सदाचार, साधन-भजन और गुरु की बात को

मानकर चलने से देह तथा मन स्थिर रहता है; अतएव इससे गर्भिणी को आराम मिलता है; और मनमाना व्यवहार करने से, जो चाहे सो कर डालने से, देह तथा मन के चञ्चल होने के साथ-साथ गर्भधारिणी को तकलीफ़ सहनी पड़ती है। अतएव देखता हूँ कि नियम और सदाचार से रहने की और साधन-भजन करने की कुछ जरूरत ही नहीं है; इस सब का उद्देश्य तो अपने तईं शान्त रखकर आधार-स्वरूपा जननी को भी चङ्गा रखना है। अनियम से स्वेच्छाचार से चलकर, बेसिलसिले हाथ-पैर हिलाने-डुलाने से जननी को बेतरह तकलीफ़ होगी, यही भाव मेरे हृदय में उठा; साथ ही साथ यह संस्कार भी जम गया कि मेरे हर एक काम, मेरे प्रत्येक पग रखने तक का अनुभव श्रीगुरुदेव कर रहे हैं। जितना ही नियम और सदाचार से रहूँगा तथा साधन-भजन करूँगा उतना ही वे भले-चङ्गे रहेंगे और आनन्द पावेंगे। साधन-भजन अपनी उन्नति के लिए नहीं है; असल में नियम निष्ठा और साधन-भजन का उद्देश्य तो गर्भधारिणी जननी को आराम पहुँचाना ही है।

कर्म ही धर्म है

माघ शुक्ल पक्ष

गुरुदेव की अद्भुत कृपा से जिन कल्पनातीत भावों का सञ्चार मेरे भीतर हो रहा है और जो कृपा मुझे उनमें बड़े उत्साह से नियुक्त कर रही है गुरुदेव के उसी भाव की अनुगामिनी बनाकर मैं अपनी भ्रान्त बुद्धि को छान-बीन के द्वारा यही प्रतिपन्न करने की चेष्टा करने लगा कि ज्ञान का अङ्कुर निकलते-न-निकलते तत्त्व का निरूपण अथवा मीमांसा का प्रयत्न करना मूर्खता या बकवास के सिवा यद्यपि और कुछ नहीं है तथापि जिन उलटी-पलटी जल्पना-कल्पनाओं से मैं अपने गुरुदेव की इच्छा के अनुसार बेखटके चलना चाहता हूँ उनके साथ इस जीवन का विशेष सम्बन्ध है, अतएव उन्हें यहाँ पर संक्षेप में लिख छोड़ता हूँ। अब मुझे जान पड़ता है कि कर्म ही सार है; कर्म्म ही धर्म है; कर्म के किये बिना कुछ होने का नहीं। कर्म के द्वारा ही जीव की वासना भली भाँति तृप्त होकर क्षीण हो जायगी और उसी से परिणाम में जीव को स्वरूप की अवस्था प्राप्त हो जाने से मुक्ति मिलती है। अब यह कैसे मालूम होगा कि कैसा कर्म करने से किसकी वासना क्षीण होगी? शास्त्र में ऐसा उपदेश भी तो देखा है कि कर्म से बन्धन होता है। जब कि शास्त्र के वाक्य में भूल होना सम्भव नहीं तब उसके साथ मेरे इस सिद्धान्त का मेल कैसे होगा?

वासना के अनुयायी कर्म का फल भोगने से ही जब जीव सोलहों आने तृप्त होकर स्वरूप को प्राप्त करता है तब तो उस वासना के अनुरूप कर्म करना ही उसके लिए कल्याणकारी और उसके स्वभाव का धर्म है। वासना के अनुरूप भोग के लिए कोई जीव सत्त्वगुण का आश्रय लेकर अच्छे कर्म द्वारा भोग की समाप्ति में स्वरूपावस्था को प्राप्त कर लेता है और कोई दूसरे ढङ्ग के भोग की कल्पना से उसके अनुयायी रज या तम की सहायता से भोग की तृप्ति कर लेने पर अन्त में मूल अवस्था में पहुँच जाता है। इसका कोई नियम नहीं है कि कौन सा जीव, किस तरह, कौन सा कर्म करने से अपनी वासना का नाश करने पर मुक्ति के मार्ग पर आगे बढ़ेगा। अच्छे कर्म के द्वारा जिस प्रकार सत्त्वगुण के आश्रय लेनेवाले का भला हो रहा है उसी प्रकार बुरे अथवा असत् कर्म के द्वारा भी रज या तम के फन्दे में फँसे हुए जीव की वासना का नाश होकर लाभ हो रहा है। सन्ध्या, वन्दना, याग-यज्ञ और तपस्या आदि करके जिस प्रकार एक मनुष्य का परम मङ्गल हो रहा है उसी प्रकार शायद इसके बिलकुल उलटे काम करने से भी अन्य किसी का बहुत-बहुत कल्याण हो रहा है। किसी जीव की मुक्ति के लिए जिस प्रकार केवल सत्कर्म ही आवश्यक हैं उसी प्रकार किसी जीव की मुक्ति के लिए असत्कर्म की भी आवश्यकता हो सकती है। गीता का वचन है:—"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"

वासनानुयायी भोग के लिए जिन गुणों का अवलम्बन करके जीव कार्य करता है वही तो जीव का स्वधर्म, जीव का व्यक्तिगत धर्म है। इसी धर्म में प्रवृत्त होकर जीव सोलहों आने कृतकार्य न होने पर भी यदि विनष्ट हो जाय तो वह भी कल्याणकर है; क्योंकि वासना की आंशिक तृप्ति हो जाने से जीव अपने स्वरूप की अवस्था की ओर ही थोड़ा बहुत आगे बढ़ा; किन्तु स्वाभाविक गुण प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य करने से, महासात्त्विक होने पर भी, उसके द्वारा जीव का कुछ कल्याण नहीं होता। उससे जीव के वासनानुयायी भोग की न तो तृप्ति होती है और न मुक्ति ही। लोग जिसे अधर्म कहते हैं, पाप कहते हैं, अपराध कहते हैं, उसी को करके कोई स्वरूप चैतन्य प्राप्ति के मार्ग पर आगे बढ़ सकता है; और अपनी प्रकृति के विरुद्ध सद्धर्म के पालन करने में समय बिताकर, पूजा-पाठ, वन्दना और परोपकार आदि करके पर-धर्म करने के फलस्वरूप वह अपनी स्वरूप अवस्था से और भी दूर हटकर, कर्मराशि में और भी आबद्ध हो सकता है। जीव-विशेष के लिए साधारण

पाप भी धर्म हो जाता है। अतएव पाप-पुण्य की ओर कोई भी संस्कार न रखकर सिर्फ़ अन्तर्निहित अदम्य वासना के अनुरूप कर्म करते रहें, इसी से क्रमशः वासना की पूर्णतया तृप्ति हो जाने पर भीतर की लड़ाई रुक जायगी, मुक्ति मिल जायगी। बारोदी के ब्रह्मचारीजी को जीवन्मुक्त महापुरुष सुन रक्खा है। उनके गुरुदेव ने वासनानुयायी भोग से छुटकारा करा देने के लिए उन्हें, हिकमत से, लोकाचार-विरुद्ध काम में फँसा दिया था। रात-दिन उसमें मनमाने डूबे रहने पर भी थोड़े ही दिनों में उनकी वह आकांक्षा बिलकुल दूर हो गई थी। ऐसे-ऐसे बहुत से दृष्टान्त भरे पड़े हैं। वासना से देह की उत्पत्ति हुई है; और देह है सिर्फ़ कर्म करने का यन्त्र। कर्म के लिए ही तो आये हैं। कर्म ही धर्म है और इसी कर्म से मुक्ति होती है।

संस्कार-रहित बुद्धि से ऐसा सिद्धान्त करने पर लगातार कर्म करते रहने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। उसके अनुसार मैं लगकर कर्म करने लगा। कौन सा कर्म करने से मेरी वासना को स्फूर्त्ति प्राप्त होगी, इसको जानने के लिए मैंने अनेक प्रकार के कर्म आरम्भ कर दिये। दोपहर के समय दफ़्तर में जाकर काम सीखने लगा; तीसरे पहर मथुरा बाबू की बड़ी भारी गृहस्थी का सब प्रकार का प्रबन्ध करने में लगा रहने लगा। इससे मेरे ऊपर काम-काज का इतना बोझ आ पड़ा कि दिन भर में मुझे ज़रा सी भी फ़ुरसत न रही। सबेरे और रात को नाम का जप करने की निर्दिष्ट संख्या पूरी करने लगा। लगातार बेहद काम करते रहने से दर्द फिर उभड़ पड़ा। क्रमशः शरीर की बहुत अधिक सुस्ती के साथ-साथ काम-काज करने की मेरी इच्छा भी घटने लगी। जिन कामों के लिए मेरी बलवती इच्छा थी, उनमें धीरे-धीरे निस्तेज भाव, चिढ़ और क्लेश मालूम होने लगा। मैंने दफ़्तर जाना छोड़ दिया; दुनिया के कामों से मैं उदासीन हो गया। ठीक इसी समय एक साधु का निष्काम कर्म करना देखकर मेरे भीतर कर्म के सम्बन्ध में एक भीषण आन्दोलन उपस्थित हुआ।

पगले साधु का निष्काम कर्म

हम लोगों के डेरे के सामने, गङ्गा-पार, बालू के मैदान में एक आदमी दिन भर पड़ा रहता है। सब लोग उसे 'पगला' कहते हैं। पगला कभी तो गङ्गाकिनारे बैठा रहता है, कभी तपी हुई बालू पर लेटा रहता है और कभी मौज में आकर बालू के मैदान में दौड़ लगाया करता है। वह किसी से बात-चीत नहीं करता। रात को गङ्गा-किनारे के शिवजी के मन्दिर में जा सोता है।

एक दिन देखा कि पगला कहीं से एक पेड़ की डाल उठा लाया है। गङ्गाजी से दो-तीन मिनिट की दूरी पर, बालू के मैदान में, उसे गाड़ दिया है; और गङ्गाजी से एक बड़ा सा घड़ा भर-भर कर लगातार उसे पानी दे रहा है। सबेरे से लेकर शाम तक पागल को इस काम से छुट्टी नहीं है। बीच-बीच में तनिक बैठकर सुस्ता लेता है, और फिर इस तरह कन्धे पर घड़ा रखकर पानी भरने को बेतहाशा दौड़ता है मानों कोई इसके लिए उसे ताकीद कर रहा हो और गङ्गाजल भर लाकर डाल की जड़ में उँडेलता है। दिन निकलने से लेकर डूब जाने तक तीन दिन तक उसने इसी तरह सख्त मेहनत की। जब पगले ने देखा कि डाल नहीं लगी, सूख गई, तब उसने घड़े को दूर फेंक दिया। वह एक ओर दौड़ता-दौड़ता गायब हो गया। अब वह बालू के मैदान में नहीं देख पड़ता। कोई नहीं बतला सकता कि वह कहाँ चला गया। पगला मेरी ओर बड़े स्नेह से देखा करता था! वह ऐसा भाव दिखलाता था कि उस कटी हुई डाल की जड़ में पानी देना उसके लिए बड़ा जरूरी काम था। पगले के कुछ निःस्वार्थ कामों से मुझे इस बात का प्रमाण मिल गया था कि वह बहुत अच्छा साधु है। चावल, चना अथवा मका आदि जो कुछ उसे मिल जाता, वह सब पक्षियों के आगे बिखेर देता; तरङ्गें लगने से घोंघा आदि जो कुछ किनारे पर आ जाता था उसे ढूँढ़-ढूँढ़कर पगला गङ्गाजी में फेंक देता था—इत्यादि। पगले का उपरोक्त कार्य देखकर मेरे चित्त में, कर्म के सम्बन्ध में, एक और समस्या उपस्थित हुई।

निष्काम कर्म ही धर्म है

मालूम हुआ—गुणत्रय की क्रिया के, पञ्चभूतों के संयोग से, सम्पादित होने का नाम ही कर्म है। भोगाकांक्षा होने से अथवा वासना से संयुक्त होने से यही कर्म सकाम हो जाता है; और भोग-लालसा से शून्य अथवा वासना-विहीन होने से वही निष्काम होता है। वासना को गुण में मिला करके गुण द्वारा पञ्चभूतों से संपादित सकाम कर्म करते हुए जीव का स्वरूप-अवस्था को प्राप्त कर लेना बहुत ही कठिन काम है। साधारण सुख की चेष्टा में कितनी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं, थोड़े से भोग के मार्ग में कितने विघ्न होते हैं—यह देखकर जीव यदि भोग की इच्छा को छोड़ दे तो फिर आसक्ति से बचे रहने पर गुणत्रय द्वारा जो कार्य निष्पन्न होगा वही निष्काम कर्म है। इसी निष्काम कर्म के करने से जीव अन्तर्मुखी होकर स्वरूप अवस्था की ओर उन्नत होता रहेगा।

इस प्रकार एकमात्र निष्काम कर्म को ही मैंने मुक्ति के पाने का सहज उपाय ठहरा लिया। जिस काम में मेरा किसी प्रकार का स्वार्थ अथवा आसक्ति नहीं है, बल्कि बेहद चिढ़ है, उसी को मैं बड़ी लगन के साथ करने लगा। मथुरा बाबू की बड़ी भारी गृहस्थी का कुल भार मैंने सँभाला। उनके, बिना माँ के, छोटे-छोटे बेटे-बेटियों को मैं दोनों वक्त मछली वग़ैरह अपने हाथ से खिलाने लगा। दोपहर को दफ़्तर के काम में महाविष्णु बाबू की सहायता करने लगा। बाग़ में मालियों के साथ-साथ रहकर उन लोगों के काम-काज की निगरानी करने को तैयार हुआ। तीसरे पहर प्रतिदिन बहुत से स्कूली लड़कों को 'जिमनास्टिक' सिखाने लगा। कुछ दिनों तक इस प्रकार करते रहने के बाद मेरे मन में बारंबार यह आने लगा कि यदि मुझे निष्काम कर्म ही करना है तो फिर इसमें इतने उत्साह की क्या जरूरत? साफ़ समझ में आ गया कि उत्साह की जड़ में मेरे भीतर वासना को क्षीण करने का, कर्म को बेबाक कर डालने का, मुक्ति के मार्ग को साफ़ कर लेने का संस्कार बना हुआ है। निष्काम कर्म करने के सङ्कल्प से कुछ भी काम क्यों न करूँ, वह सकाम हो जाता है अर्थात् मूल में निष्काम कर्म का उद्देश्य रखकर निःस्वार्थ भाव से कर्म करने पर भी, कर्म की प्रत्येक चेष्टा में धीरे-धीरे यह संस्कार उठने लगता है कि निष्काम कर्म कर रहा हूँ। अतएव संस्कार-हीन हुए बिना निष्काम कर्म करूँगा ही किस तरह? सदसत्, भली-बुरी बुद्धि रहने पर कभी संस्कार का त्याग नहीं होता। कार्यक्षेत्र में इस सारी विचार-बुद्धि का लोप होगा किस तरह? मन में आता है—बहुत दिन तक सदाचार से रहते-रहते यदि स्वभाव से उसका अभ्यास हो जाय तब तो नहाने-खाने, दिशा-जङ्गल जाने आदि की तरह, सङ्कल्प-शून्य स्वाभाविक अभ्यस्त क्रिया, थोड़ी बहुत निष्काम हो सकती है।

यह सब सोच-विचारकर मैंने फिर पहले की तरह घड़ी रखकर दैनिक कार्य करना आरम्भ कर दिया। उद्देश्य यह है कि इन सब कामों का अभ्यास पड़ जाय तो ये एक प्रकार से निष्काम होंगे।

ज्योति के दर्शन

अविचल एकाग्रता के साथ टकटकी बाँधने का साधन करते-करते, गुरुदेव की कृपा से, धीरे-धीरे एक-एक अद्भुत दर्शन खुलकर प्रकट होने लगा। यहाँ पर क्रम से उसे लिखता हूँ—

(१) पहले कुछ दिन स्थिर, सफ़ेद प्रभा से मण्डित, बहुत से टुकड़ों की गहरे नीले रङ्ग की ज्योति क्षण-क्षण में संलग्न और विच्छिन्न होकर, वामावर्त और दक्षिणावर्त के क्रम से, तेज़ चाल से, मन्द तरङ्ग में प्रतिफलित चन्द्रबिम्ब की तरह, चञ्चल देख पड़ने लगी। मोर की पूँछ के केन्द्र का दूसरा स्तर कुछ-कुछ इस ज्योति के रङ्ग के अनुरूप होता है।

(२) क्रमशः बदलकर वह दूसरे ढँग का हो गया। वलय के आकार में सफ़ेद प्रभा से घिरी हुई चमकीली, गहरे नीले रङ्ग की, ज्योति जल्दी-जल्दी चक्कर लगाती और काँपती हुई चञ्चल देख पड़ने लगी। परिव्याप्त मण्डल ३।४ इञ्च का दीखने लगा।

(३) कुछ दिन के बाद धीरे-धीरे इसमें भी परिवर्तन हो गया। पीलापन लिये हुए सफ़ेद ज्योतिर्मण्डल में बहुत ही चमकीली हरे रङ्ग की ज्योति देख पड़ने लगी। पास में यह ज्योति, नाख़ून के बराबर छोटे आकार में, चमकीली मणि की तरह स्थिर रूप से प्रकाशित है; फिर दूरी के अनुसार बहुत ही बड़े आकार में काँपती हुई देख पड़ने लगी। आँखें खुली रहें चाहे मुँदीं, हर हालत में, स्थान-अस्थान पर चाहे जहाँ, वह साफ़-साफ़ देख पड़ने लगी। भीतर से मोर की पूँछ के चौथे स्तर के साथ इस रङ्ग की कुछ उपमा हो सकती है।

(४) इसके बाद क्रम-क्रम से सफ़ेद मण्डल विलुप्त हो गया। अब मटर के बराबर, हरे-नीले रङ्ग की मिली हुई, बहुत ही चमकीली ज्योति, क्या पास और क्या दूर, एक ही आकार में निश्चल देख पड़ने लगी। मिला-जुला रङ्ग होने के कारण मोर की पूँछ के रङ्ग के किसी स्तर के साथ इसका सादृश्य न समझ पड़ा।

(५) अब कदाचित् बिजली की तरह चञ्चल, बड़ी ही अद्भुत दीप्तिवाली गहरे नीले रङ्ग की ज्योति, पल-पल भर में स्निग्ध प्रभा फैलाकर बात-की-बात में अन्तर्द्धान हो जाती है। इस ज्योति की तुलना नहीं है। इसका प्रकाश होने पर आनन्द में जैसा मग्न हो जाता हूँ वैसे ही इसके अन्तर्द्धान हो जाने पर हाय-हाय करने लगता हूँ।

मेरी वर्तमान मानसिक दशा—कर्म को छोड़ देना ही धर्म है

मुझे कोई भी काम अच्छा नहीं लगता। सदा आसन पर बैठे रहने को जी करता है। लोग जिसे सत्कार्य, पुण्यकार्य कहते हैं वह भी आत्मा के कल्याण के लिए विघ्न सा जान पड़ता है। प्रवृत्ति के अनुकूल विवेक-बुद्धि मुझे अब सभी कामों से रोक रही है। अब तो ऐसा लगता है कि सभी कर्म धर्म-विरोधी हैं। जीवात्मा का स्वरूपावस्था में भगवान् के

साथ संलग्न रहना ही धर्म है। चित्कण अथवा जीवात्मा के क्रम-विकाश की गति ही कर्म है। अतएव कर्म तो सर्वदा जीव की बहिर्मुख अवस्था है। इसका परिणाम चित्कण की स्वरूपावस्था से स्खलित होकर क्रमशः स्थूल से और भी स्थूल में परिणति है। जहाँ पर जीवात्मा के कर्म की समाप्ति है वहीं पर उसके विकाश की भी निवृत्ति है। अतएव दैहिक स्थूल कर्म से लेकर, क्रम-क्रम से, सूक्ष्म मानसिक कर्म से भी उदासीनता होने पर जीव की देहात्मबुद्धि की अथवा स्थूलता-प्राप्ति की जड़ का लोप हो जाने पर सूक्ष्म मानसरूप का भी अन्त होगा। इसके बाद जीव जितना ही सूक्ष्मतर कर्म छोड़कर निष्क्रिय अथवा स्थिर होता रहेगा, उतना ही वासनावर्जित स्वरूपावस्था की ओर पहुँचेगा। इसलिए सारे कर्मों की जड़ वासना को भी छोड़कर—'आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।' निवृत्ति ही वास्तविक धर्म है और समस्त कर्म ही जीवात्मा का विकाशक्रम होने से धर्मविरोधी हैं।

गुरुदेव की अद्भुत कृपा है। भीतर ही भीतर ज्ञान की चर्चा करते रहने से कर्म करने के सम्बन्ध में मैं बिलकुल उदासीन हो गया। अब तो मुझे ऐसा लगता है कि काम-काज करना बड़ा भारी अनर्थ है। कुछ दिनों से मैं बाहर का सारा काम-काज करना छोड़ बैठा हूँ। जिन आवश्यक कामों को प्रतिदिन करते रहने का अभ्यास है उन भोजन और शयन आदि को छोड़कर मैं बाक़ी समय में एकान्त में बैठकर विधि के अनुसार इष्ट नाम के साधन में वारंवार मन लगाने की चेष्टा करता हूँ। इस प्रकार नाम का जप करने के साथ-साथ गुरुदेव का रूप अपने आप चित्त में उदित हो रहा है। नाम का स्मरण करते समय ऐसी धारणा प्रबल वेग से हृदय में आ जाती है कि मेरी देह में गुरु की देह है और मेरी प्रकृति में गुरु की प्रकृति है। मेरा प्रत्येक अंग-प्रत्यंग, पैर से लेकर चोटी तक सभी अवयव, मानों गुरुदेव का ही कलेवर है; मानों वे मुझे आच्छादन किये हुए इसी देह में मौजूद हैं। नाम के जप के साथ-साथ ऐसी चिन्तनीय धारणा का उदय चित्त में होता है। मैं साधन करते समय दूर रहकर, अपने भीतर अपने को न पाकर, गुरुदेव के ही दर्शन करता हूँ। इससे मुझे इतना आनन्द होता है कि उसे भाषा प्रकट नहीं कर सकती। नामरूपी सच्चिदानन्द-स्वरूप गुरुदेव का अपने भीतर तन्मय भाव में ध्यान करते-करते मानों मुझे बाहरी चेत नहीं रहता; सारा शरीर ढीला पड़ जाता है; लगातार आँसू झरते रहते हैं। गुरुदेव के परम सुन्दर मनोहर रूप का स्मरण करते ही मेरे भीतर न जाने क्या हो जाता है।

शुष्क ज्ञान की चर्चा में लगे रहने से साधन-राज्य में एक प्रकार के युग-प्रलय की अवस्था उत्पन्न हो गई थी। कुछ समय के लिए ज्योति के दर्शन होना बन्द हो गया था। नये उत्साह और नई लगन से फिर जब साधन करने लगा हूँ तब विलुप्तप्राय हरा प्रकाश, सफ़ेद प्रकाश के साथ मिलकर, प्रकाशित होने लगा। थोड़े ही समय में मिश्रित आलोकद्वय के टुकड़े-टुकड़े ज्योतिःसम्पन्न हो गये। फाल्गुन कृष्णा १ को तीसरे पहर, सफ़ेद ज्योति के बीच नाख़ून के बराबर गहरे काले रङ्ग की एक आकृति मैंने देखी। फाल्गुन कृष्णा २ को भी जब तक नींद नहीं आई, दर्शन होते रहे। फिर धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों सफ़ेद ज्योति घटने लगी त्यों-त्यों काला रूप भी क्रम से स्पष्ट होने लगा। काले रूप को देखकर मैंने समझा कि शायद कृष्ण का रूप ही प्रकट होगा; क्योंकि उस आकृति के सिर पर मुझे मुकुट की तरह देख पड़ने लगा। हाथों, पैरों और आकृति का गठन देखकर साफ़ जान पड़ा कि श्रीकृष्ण ही प्रकाशित होंगे। किन्तु अब देखता हूँ कि काली आकृति श्रीकृष्ण की नहीं है। आकृति पहले जिस तरह खड़ी थी, अब देखता हूँ कि वह बैठी हुई है; पहले जो दुबली-पतली थी, अब देखता हूँ कि वह मोटी है। सिर पर मुकुट नहीं, वे तो बँधे हुए केश हैं। सूरत-शकल और गठन गुरुदेव की ही तरह है। हाँ, बिलकुल साफ़-साफ़ नहीं, धुँधली सी है। इस रूप को टकटकी बाँधकर देखते हुए और मन को एकाग्र करके मैं तेज़ी से नाम का जप करने लगा। अब देखता हूँ कि आकृति का रङ्ग क्रम से गहरा हो रहा है। स्थान-अस्थान में सर्वत्र हमेशा, आँखें खुली हों चाहे मुँदी, यह रूप एक ही तरह का देख पड़ता है। मेरी आँखों में मानों यही सूरत समाई हुई है। नाम का जप करने से रूप की स्फूर्ति होती है और रूप को देखने से नाम याद पड़ता है, यह अद्भुत योगायोग देख रहा हूँ। इस दर्शन को खोलकर महाराज रात-दिन मुझे विमल आनन्द में डुबाये हुए हैं। मालूम नहीं, यह सुख मुझे कब तक मिलता रहेगा।

दर्शन के विषय में विचार

जो स्वभाव का शक्की है, उसको प्रत्यक्ष विषय में भी अनेक प्रकार की शङ्काएँ होती हैं। मैं जो कुछ साफ़-साफ़ देखता हूँ उसे भी ठोक-बजाकर देख लेने की इच्छा हुई। दर्शन के क्रम को खोजकर मैं उसकी छान-बीन करने लगा। काले रङ्ग की जो आकृति मेरी आँखों में सदा समानी रहती है यह क्या है? इसके दर्शन कहाँ होते हैं? और इस

दर्शन से मेरी आत्मा का क्या कल्याण होता है ? जब असीम आकाश की ओर देखता हूँ तब धुँधली सी बहुत बड़ी काली छाया नभोमण्डल में व्याप्त देख पड़ती है। थोड़ी देर तक उस ओर दृष्टि को स्थिर करते ही देखते-देखते वह छोटी हो जाती है। फिर बहुत ही छोटी, गहरे काले रङ्ग की, मनुष्याकृति में परिणत हो जाती है। और सीमाबद्ध स्थान में दृष्टि को स्थिर करने पर उसका विस्तार धीरे-धीरे इतना घट जाता है कि नाखून के बराबर रह जाता है। किसी निर्दिष्ट स्थान में दृष्टि जमाने से पहले बहुत ही साफ़ ज्योति देख पड़ती है। इस ज्योति के सामने अथवा भीतर रूप प्रकट होता है। ज्योति के दर्शन किसी वस्तु के ऊपर ही होते हैं। किन्तु रूप तो ज्योतिःसंलग्न अवस्था में अधर ही देख पड़ता है। अब पता लगाने पर मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर सकता कि रूप के दर्शन बाहर होते हैं अथवा भीतर। क्योंकि आँखें खोले रहने पर जैसा साफ़ रूप देख पड़ता है बिलकुल वैसा ही आँखें बन्द कर लेने पर भी नज़र आता है। आँखों के खुली या मुँदी रहने पर एकसे ही दर्शन होने के कारण मैं निश्चय नहीं कर सकता कि इसका आश्रय क्या है। लगातार किसी वस्तु अथवा ज्योति के ऊपर रूप का प्रकाश होने से वस्तु अथवा ज्योति को ही रूप का आधार समझता। किन्तु वह नहीं है। एक बार सोचा कि शायद वायु ही रूप का आश्रय है। किन्तु देखता हूँ कि यह बात नहीं है। क्योंकि वायु तो सदा चञ्चल है, परन्तु आँधी और तूफ़ान में भी रूप ठीक ही रहता है। यही हाल ज्योति के सम्बन्ध में है। यद्यपि एक वस्तु के ऊपर ही ज्योति का प्रकाश देख पड़ता है तथापि उस वस्तु में ज्योति आबद्ध नहीं है। क्योंकि वस्तु के चञ्चल होने पर भी ज्योति हिलती-डुलती नहीं है। ज़ोर की आँधी में जिस समय वृक्षों की शाखाएँ हिल-डोलकर काँपती रहती हैं, अथवा नदी में जिस समय प्रबल तरङ्गें उठतीं और बहाव तेज़ हो जाता है उस समय भी काँपती हुई वृक्षों की डालों और चञ्चल जल में ज्योति एक ही जगह, एक ही अवस्था में, अचञ्चल और स्थिर रूप से स्थित मुझे देख पड़ती है। अतएव मैं समझता हूँ कि स्थान या वायु ज्योति और रूप का आधार नहीं है।

आँखों के खुली या बन्द रहने पर एक से ही दर्शन क्यों होते हैं ? बाहर किसी वस्तु के दर्शन होने पर, आँखों की ख़राबी या उस संस्कार के कारण, आँखें मूँद लेने पर भी उस वस्तु का देख पड़ना सम्भव है। किन्तु वस्तु जिस समय दृश्य का आश्रय लेती है

उस समय, कैसे बतलाऊँ कि, बाहर उसके दर्शन होते हैं; बाहर हो चाहे भीतर, इसमें सन्देह नहीं कि मैं उसे देखता हूँ। ये दर्शन इतने घने और साफ़ हैं कि पुस्तक नहीं पढ़ पाता; किसी महीन चीज़ को साफ़-साफ़ नहीं देख पाता; दृष्टि के स्थिर होते ही वस्तु को ज्योति और रूप छिपा लेते हैं। आँखों के खोले और मूँदे रहने पर भी एक ऐसे दर्शन होने के कारण मैं निर्णय नहीं कर सकता कि ये दर्शन कहाँ पर किस तरह होते हैं। दर्शन मुझे न तो काल्पनिक होते हैं और न किसी संस्कार के फलस्वरूप ही। मुझे इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं है।

अनादर करने से रूप का अन्तर्द्धान हो जाना

कुछ समय से मैं दर्शन में ही मुग्ध हो रहा हूँ। मेरी सारी चित्तवृत्ति दर्शन की ओर ही आकृष्ट हो रही है। किन्तु इस दर्शन से क्या मेरी आत्मा का सचमुच कल्याण होता है, या उसकी बदौलत उन्नति के मार्ग में विघ्न हो रहा है? इस सम्बन्ध में भीतर-ही-भीतर अपने आप मेरे लिए विषम आन्दोलन उपस्थित हो गया है। देखता हूँ कि रूप के प्रति मेरा बहुत ही आकर्षण है। यदि क्षण भर भी उसे नहीं देखता हूँ तो विकल हो जाता हूँ। रूप के और भी साफ़-साफ़ दर्शन करने के लिए ही मानों मैं साधन-भजन किया करता हूँ। मेरे भीतर की यह अवस्था कैसे हुई? सच्चिदानन्दस्वरूप, परम आनन्दमय, अनन्त, परब्रह्म जिसका लक्ष्य था वह अब ज्योतिर्मय मनुष्याकृति रूप की छटा पर लट्टू हो गया है। अतएव दुर्दशा होने में बाक़ी ही क्या रह गया? आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ साधनराज्य में ये सब दृश्य यदि निर्दिष्ट ही हों तो इसमें इतना अनुराग अथवा आकर्षण होने का क्या कारण है? जो कोई नियम और प्रणाली के अनुसार साधन-भजन करेगा उसी को ये सब दर्शन होंगे। और यदि गुरुदेव की कृपा से यह मेरी एक सञ्चारी अवस्था हुई हो तब तो सिवा देखते रहने के इसके साथ मेरा सम्बन्ध ही क्या है; और जिन्होंने दया करके मुझे यह अवस्था दी है। वे कल ही, मेरी कुछ कसर देखकर, उसे छीन ले सकते हैं। जो वस्तु मेरी पैदा की हुई अथवा अपनी नहीं है उसको लेकर मैं क्यों ममता में पड़ा हुआ हूँ? इसके सिवा इन द्विभुज, चतुर्भुज अथवा अन्य किसी प्रकार के दर्शनों को तो कभी किसी ने धर्म नहीं बतलाया है। सत्य, सरलता, विनय, पवित्रता, दया और सन्तोष आदि को ही, बिना विरोध के, सभी धर्मशास्त्रों ने धर्म बतलाया है।

मानवात्मा की ये सद्वृत्तियाँ यदि प्रस्फुटित न हुई तो इन अलौकिक चित्रों के देखने से मुझे क्या लाभ होगा ? साधन के मार्ग में दो-चार पग चलते ही यदि मैं एक बिन्दु ज्योति के सौन्दर्य में अथवा एक रूप के माधुर्य में आकृष्ट और आबद्ध हो गया, तथा उससे अनन्त उन्नति के मार्ग में अँधेरा फैलाकर भगवान् के प्राप्त करने की इच्छा और चेष्टा को तिलाञ्जलि देकर उसी में सन्तुष्ट हो रहा तब तो मेरी दुर्दशा का ठिकाना ही न रहा। यह तो निश्चित है कि गुरुदेव के मधुर रूप को साफ़-साफ़ सदा अपनी आँखों के आगे रखने से मैं बड़े आनन्द में रहूँगा; किन्तु इसी से मुझे क्या मिल जायगा ? उसे क्या भगवद्दर्शन मानकर मैं तृप्त रह सकता हूँ ? तब फिर इस रोगी शरीर से जी-जान से साधन-भजन करके, इतने नियम और संयम में रहकर, क्लेश क्यों सह रहा हूँ ? मामूली रेल-किराया जमा करके इसी दम साक्षात् भगवत्सङ्ग प्राप्त कर सकता हूँ। गुरु ही भगवान् हैं, बिन्दु ही सिन्धु है, इन बातों का अर्थ मैं नहीं समझता। मालूम नहीं, किस अवस्था में रहकर महापुरुष इन बातों की सचाई की साक्षी देते हैं। किन्तु मैं अपने होश-हवास के दुरुस्त रहते हुए प्रत्यक्ष सत्य को न मानकर कल्पना को प्रतिष्ठित करने का नहीं।

हृदय में पूर्वोक्त भाव के आने से दर्शनों के प्रति वैसा ध्यान न लगाकर मैं नियमित रूप से साधन करने लग गया। मैं कुछ दिनों तक दर्शनों के सम्बन्ध में बिलकुल ही उदासीन बना रहा। आज साधन करते समय अकस्मात् रूप का ख़याल हुआ। ध्यान न रहने से मुझे पता ही न चला कि इस बीच कब रूप अन्तर्द्धान हो गया है। अब उस मधुर रूप की याद आ जाने से, उसके दर्शनों के लिए मैं बेहाल हो रहा हूँ; मेरा दिल जला जा रहा है। हाय, हाय, मेरा यह क्या हो गया ? आदर न करके मैंने किसका विसर्जन कर दिया ? जान पड़ता है, मेरे हृदय के महाराज गुरुदेव ही दया करके प्रकट हुए थे, और मेरा अनादर का भाव तथा लापरवाही देखकर अब अन्तर्द्धान हो गये हैं। सुना था, 'इन दर्शन की वस्तुओं को, लड़कों-बच्चों की तरह, सदा आँखों में रखना पड़ता है, आदर और सावधानी करनी पड़ती है, नहीं तो ये ठहरते नहीं हैं।' महाराज! इस बार अपनी उस सन्तान को क्षमा कर दो जिसका दिल जल रहा है। साधन की ऐंठ में आकर मैंने कई बार शेखी से तुम्हारी कृपा को प्रलोभन समझकर छोड़ दिया है। हाय, हाय, अब मेरी क्या गति होगी ?

इतने दिनों तक दर्शन में चित्त के आविष्ट रहने से साधन के समय नाम बहुत ही रसाल होकर बाहर निकलता था। नाम का जप करने के साथ-साथ मैं अनुभव करता था कि एक सारवान् वस्तु को हिला-डुला रहा हूँ। अब इधर कुछ दिनों से मेरी वह अवस्था नहीं है। अब तो बड़ी मुशकिल से नीरस ख़ाली नाम का जप किया करता हूँ। श्वास-प्रश्वास पर लक्ष्य देने में २।४ मिनिट में ही थक जाता हूँ। मन सदा उचाट रहता है। बिलकुल अधर में जाकर, कुछ भी सहारा न पाने से, त्रास और आतङ्क के मारे बेचैन रहता हूँ। हाय, यह मुझे क्या हो गया? मैं इस यन्त्रणा को अब न सह सकूँगा। गुरुदेव, हृदय के महाराज, दया करो।

लाल का प्रभाव और योगैश्वर्य

फाल्गुन के प्रथम सप्ताह तक, सं० १६४६

आज सबेरे आसन पर बैठा हुआ नाम का जप कर रहा हूँ, और भीतर की जलन के मारे तड़प रहा हूँ। स्वामीजी (हरिमोहन) लाल के साथ एकाएक मेरे आगे आकर खड़े हो गये। मैं चटपट, साधन छोड़कर, खड़ा हो गया। लाल को अपने कमरे में ले जाकर, अपने बिछौने के पास, उनके लिए आसन बिछा दिया। थोड़ा विश्राम कर चुकने पर मैंने लाल से पूछा—'लाल, एकाएक तुम अब कहाँ से किस तरह यहाँ आये हो?' लाल ने उत्तर दिया—'श्री वृन्दावन में गोस्वामीजी के पास था। एक दिन एकाएक तुम लोगों की चर्चा हुई; और देखने को मैं बेचैन हो गया। बस, मैं बिना कहे-सुने पैदल ही चला आया हूँ। रास्ते में, कानपुर में, मन्मथ बाबू के यहाँ सिर्फ़ दो दिन ठहरा था। रास्ते में, बीच-बीच में, कोई-कोई मुझे रेल में भी २।४ स्टेशनों तक ले आया है।

मैं—तुम्हारे साथ तो लोटा अथवा दूसरा कपड़ा तक नहीं है। सिर्फ़ यही लँगोटी और कम्बल है। इतनी दूर आख़िर आये किस तरह? रास्ते में कुछ कष्ट नहीं हुआ?

लाल—नहीं जी। कष्ट काहे का? मैं तो बड़े मज़े में आया हूँ। तनिक भी कष्ट नहीं हुआ। गुरुदेव भला किसी का कष्ट देख सकते हैं?

मुझे यह सोचने से बड़ा आश्चर्य हुआ कि नाबालिग़ लाल किस तरह बहुत दूर श्री वृन्दावन से यहाँ तक पैदल ही, सिर्फ़ लँगोटी और कम्बल के भरोसे, बिना किसी प्रकार के क्लेश के चले आये।

इधर कई महीने से हमारे डेरे में साधन-भजन का सुन्दर स्रोत बह रहा है। भागलपुर के बहुत से गण्य-मान्य लोग प्रतिदिन तीसरे पहर हमारे डेरे में आते हैं। धर्मार्थियों के सम्मिलन से रोज़ ही मानो इस डेरे में उत्सव हुआ करता है। बढ़िया गायक महाविष्णु बाबू अपने ही बनाये गीत गाते हैं जिसको सुनकर सभी वाह-वाह करते हैं। लाल ने आकर मानों धर्म के स्रोत में ख़ासा तूफ़ान पैदा कर दिया। सङ्कीर्तन में लाल का महाभाव, आसन पर बैठे-बैठे स्थिर समाधि और अद्भुत विकाश तथा धर्म-चर्चा में उनका असाधारण पाण्डित्य देखकर सभी चकराने लगे।

एक दिन लाल को साथ लेकर हम लोग श्रद्धेय पार्वती बाबू के यहाँ गये। लाल का परिचय पाकर पार्वती बाबू सन्तुष्ट हुए। उन्होंने धर्म-चर्चा के सिलसिले में लाल के सामने सांख्य, वेदान्त आदि शास्त्र के मर्म का उपदेश देकर अन्त में 'अहं ब्रह्म' यह मत स्थापित किया। लाल ने चुपचाप सुन लिया, एक भी बात नहीं की। अब पार्वती बाबू ने उनसे धर्म के सम्बन्ध में कुछ कहने का अनुरोध किया। तब लाल साधारण रूप से लौकिक धर्म की दो-चार बातें कहकर इतने गम्भीर तत्त्व का उपदेश करने लगे कि उनकी एक भी बात मेरी समझ में न आई। देवव्रती, ब्रह्मज्ञानी और भगवत् के उपासक महात्मा लोग एकमात्र गुरु की कृपा से ही परम तत्त्व प्राप्त करते हैं—इस बात को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने संस्कृत, पाली, तिब्बती, अरबी और अन्यान्य भाषाओं के विभिन्न धर्मशास्त्रों के वचन धारावाहिक रूप से उद्धृत करके प्राचीन बौद्ध मत को, सनातन धर्मशास्त्र के साथ मिलाकर, स्थापित किया। लाल ने साफ़-साफ़ समझा दिया कि अकेले सद्गुरु के पल भर देख देने, एक उँगली का संकेत करने, अथवा उनकी पल भर की इच्छाशक्ति से ही अनुगत शिष्य के भीतर ब्रह्मज्ञान, तत्त्वज्ञान और भगवद्भक्ति सञ्चारित तथा प्रतिष्ठित होती है। यह सब सुनकर पार्वती बाबू अकचका गये; फिर स्थिर न रह सकने से लाल के चरणों में साष्टाङ्ग गिरकर कहने लगे—"आप मेरा उद्धार करने को आये हैं। मेरी सीमाबद्ध सङ्कीर्ण दृष्टि उस सीमा के भीतर भी नहीं जाती जहाँ खड़े होकर आपने ये परम गुह्य तत्त्व की बातें कही हैं। मेरे ऊपर आप थोड़ी सी दया कीजिए।" अब पार्वती बाबू बार बार लाल से भेंट करने के लिए हमारे डेरे पर आने लगे। इससे भागलपुर में लाल का नाम चारों ओर फैल गया।

फाल्गुन कृष्णा १२ को मैं पातञ्जल दर्शन पढ़ रहा था कि लाल ने पूछा—क्या पढ़ते हो?

मैं—पातञ्जल दर्शन।

लाल—यह सनक तुम पर क्यों सवार हुई? वह सब पढ़ने से क्या होगा? एक सतर भी न समझ पाओगे; व्यर्थ समय नष्ट होगा। नाम का जप क्यों नहीं करते? गुरु की कृपा से सभी शास्त्र नाम के भीतर होकर प्रकट हो जायँगे।

मैं—इस युग में किसी नाबालिग से भी यह न कहना कि बिना ही लिखे-पढ़े सिर्फ़ गुरु की कृपा से, गुरु के वरदान से, सरस्वती का वर-पुत्र हो जाना सम्भव है।

लाल—यह मेरा कुसंस्कार नहीं है। गुरु की कृपा से सचमुच सब कुछ मालूम हो जाता है। मैं यह अपनी आजमाई हुई बात कहता हूँ।

मैंने फिर लाल की बात को काटना आरम्भ कर दिया। तब लाल ने मेरे हाथ से पातञ्जल दर्शन को छीनकर ग्रन्थ के प्रथम, बीच के और अन्तिम पृष्ठ पर कई सेकेंडों तक तनिक दृष्टि डाली; फिर वे पुस्तक को थोड़ी देर तक अपने सिर पर रक्खे रहे; अब उन्होंने तुरन्त ही मुझे पुस्तक लौटाकर कहा—"अच्छा, यह लो। मैंने तो सिर्फ़ शिशुशिक्षा—तीसरे भाग तक पढ़ी थी; न तो मुझे अक्षरों का काफ़ी ज्ञान है और न मैं ग्रन्थ का ठीक-ठीक उच्चारण ही कर सकता हूँ। अच्छा, अब तुम इस ग्रन्थ के चाहे जिस स्थान से प्रश्न करो, जहाँ जो कुछ लिखा है वह मैं ठीक-ठीक कह दूँगा।" मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मैंने ग्रन्थ के अनेक स्थलों से ७।८ प्रश्न किये। ग्रन्थ में टीका-टिप्पणी समेत जिस विषय की जो मीमांसा है वह लाल के मुँह से अक्षर-अक्षर ठीक-ठीक सुनकर मैं विस्मित, स्तम्भित और दङ्ग हो गया। सोचा—'यह क्या मामला है!' थोड़ी देर में लाल से पूछा—'भाई, यह अद्भुत शक्ति तुमने किस प्रकार प्राप्त की है?' लाल ने कहा—'यह गुरुकृपा है! एक दिन गुरुभाई श्रीयुक्त सुरेशचन्द्र सिंह (डि० मैजिस्ट्रेट) के साथ, उनके यहाँ, मनोविज्ञान की चर्चा कर रहा था। सुरेश बाबू एकाएक उठकर भीतर चले गये। मैं उनकी बैठक में ही बैठा रहा। टेबिल पर मनोविज्ञान की एक अँगरेजी पुस्तक रक्खी हुई थी। मन में आया कि मैंने लिखना-पढ़ना नहीं सीखा है। अगर मैं पढ़ा-लिखा होता तो जान लेता कि इन पुस्तकों में किस-किस विषय पर विचार किया गया है। यह सोचकर, ग्रन्थ को बार-बार नमस्कार करके मैंने सिर पर रख लिया। अब मैं गुरुदेव का स्मरण करने लगा।

इसी समय एकाएक माथे में मुझे न-जाने कैसा मालूम होने लगा। ग्रन्थ में जिन विचारों का निर्णय है वह सब मेरे मस्तिष्क में पहुँच गये। नहीं मालूम, यह क्यों हुआ। उस दिन से जिस विषय को जानने की मुझे इच्छा होती है वह अपने आप मुझे मालूम हो जाता है। इसे गुरुकृपा के सिवा और क्या कहूँ? ऐसी इच्छा करने से तो धर्मजीवन में बहुत हानि पहुँचती है। कुछ भी इच्छा किये बिना, गूँगा बनकर, गुरुदेव की ओर ताकते रहना ही भला है। किन्तु यह कहाँ निभता है? तुम्हें महाशक्तियुक्त नाम मिल गया है, उसका जप करो। गुरुदेव की कृपा से लहमे भर में सारा शास्त्र तुम्हारे भीतर प्रकाशित हो सकता है। यह मेरी कल्पना नहीं है, सच-सच कह रहा हूँ।'

मैं पता लगाने लगा कि लाल क्यों गुरुदेव का साथ छोड़कर अकस्मात् पैदल ही भागलपुर चले आये। स्वामीजी ने संन्यास व्रत ग्रहण कर लिया था, विधाता के फेर में पड़कर वे सङ्गदोष से आचार-भ्रष्ट हो अब स्वेच्छाचार में दिन बिता रहे हैं। यह जानकर लाल को बहुत ही क्लेश हो रहा था, इसके प्रतिकार के लिए वे झटपट उतावले हो उठे। लाल प्रतिदिन स्वामीजी से संन्यास के नियमों का पालन करके गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार चलने की जिद करने लगे किन्तु स्वामीजी ने लाल की इन बातों को न माना। तब यह समझकर कि सहज में काम न होगा, लाल थोड़ा सा योगैश्वर्य प्रकट करने को बाध्य हुए। फाल्गुन कृष्णा १४ को रात के १० बजे घर के भीतर बैठे हुए हम लोग बातचीत कर रहे थे कि लाल ने, पहले की तरह, स्वामीजी से संन्यास के नियमों के अनुसार चलने का अनुरोध किया। ज्योंही उन्होंने इस बात की ओर लापरवाही दिखलाई त्योंही लाल एकदम उछल पड़े और ऊपर की ओर हाथ हिलाकर चिल्लाते हुए कहने लगे—"मत आओ, मत आओ। क्यों आते हो? चले जाओ! चले जाओ।" इसी समय हम लोगों के सामने से बुरी तरह सनसनाता हुआ न जाने क्या चला गया! हम लोग हक्का-बक्का रह गये! थोड़ी देर में लाल चौंक से पड़े और कहने लगे—"हाय, हाय! यह क्या हुआ? बिलकुल आत्महत्या! ओफ़ कैसा भयानक है! यह तो अब देखा नहीं जाता!" अब वे रो पड़े; रोते-रोते फिर कहने लगे—"अब मेरे पास किस लिए आते हो? मेरे पास आने से क्या होगा? गुरुजी के पास जाओ। मेरे द्वारा किसी तरह का कल्याण होने का नहीं। मेरे पास मत आओ, मत आओ। सुनते क्यों नहीं हो? अच्छा, तो फिर आ जाओ।" लाल के यह कहते

ही सन्-सन् करता हुआ न जाने क्या आकर हमारे कमरे के गङ्गाजी तरफ़ के जङ्गले में धम् से गिर पड़ा। जङ्गले के किवाड़ भीतर से बन्द थे; अचम्भे की बात है कि जङ्गला अकस्मात् खुल गया और किवाड़ में लगे हुए तीनों शीशे टूटकर चूर-चूर हो गये। हम सभी चौंक पड़े, और अकचकाकर एक दूसरे की ओर देखने लगे। लाल तनिक ठहरकर चिल्लाकर कहने लगे—"यह क्या है? यह क्या देख रहा हूँ? जीते-जागते मनुष्य को चिता पर रख दिया! बहुत ही भयङ्कर है! ओफ़, कैसी भयानक चिता है! वह देखो, वह देखो।" तब स्वामीजी चिल्लाकर बरामदे में जा पहुँचे। "हाय, हाय—यह क्या हुआ? यह क्या हुआ?—जीते-जागते आदमी को चिता पर चढ़ा दिया।" कई बार यह कहकर वे रोते-रोते बेहोश हो गये। कोई डेढ़ घण्टे बाद चेत में आ जाने पर भी वे चिता की बात को याद करके बेचैन होने लगे। तब लाल बीच-बीच में चौंक-चौंककर कहने लगे—आज धामराई गाँव उजड़ गया। हाय-हाय!

अब स्वामीजी ने बिना कुछ कहे-सुने अपना कम्बल लाल को ओढ़ाकर उनकी लँगोटी खींच ली; फिर हाथ जोड़कर मुझसे कहा—"भाई, बुरा न मानना, तनिक पागलपन करता हूँ।" यह कहते ही वे बरामदे से कूदकर नीचे जा पहुँचे और गङ्गाजी के बालू के मैदान पर से बेतहाशा दौड़ते हुए ग़ायब हो गये। रात को १॥ बजे का समय था। थोड़ी देर में लाल ने कहा—"अब स्वामीजी की खोज मत करना। वे वृन्दावन की ओर गये हैं।" फिर भी मथुरा बाबू ने स्वामीजी को दो दिन तक ढुँढ़वाया; किन्तु कहीं कुछ पता न लगा।

मेरे बहनोई मथुरा बाबू ने लोगों से लाल की अवस्था और योगैश्वर्य की बहुत सी बातें सुनी थीं। लाल को अपने ही यहाँ पाकर उस सम्बन्ध में कुछ दिखला देने के लिए वे लाल के पीछे पड़ गये। उनके अनुरोध को न टाल सकने से लाल ने एक दिन मथुरा बाबू को एकान्त में बुला लिया; फिर मेरी मरी हुई बहन को परलोक से बुलाकर बहुत सी अद्भुत और विचित्र गुप्त बातें सुनाईं। एक दुश्चरित्रा स्त्री की कुचेष्टा से जादू-टोना किया जाने पर जिस तरह असमय में मेरी बहन की अस्वाभाविक मृत्यु हुई थी उसका कुल ब्योरा सुनकर मथुरा बाबू स्तम्भित हो गये। लाल ने खुलासा कह दिया कि उस स्त्री की बदौलत और भी इस ढँग के सांघातिक अनर्थ होंगे। मथुरा बाबू के सिवा जिन बातों को इस संसार में

और कोई नहीं जानता ऐसी कुछ गुप्त बातों को लाल के मुँह से सुनने से उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। लाल ने मथुरा बाबू से जिद की कि इस मकान से भूत-प्रेतों के अनेक प्रकार के उपद्रव को दूर करने के लिए प्रतिदिन हरिनाम-सङ्कीर्तन और तुलसीसेवा होनी चाहिए तथा साधु-सज्जनों को अपने यहाँ ठहराकर उनके साधन-भजन की अच्छी व्यवस्था कर देना आवश्यक है। उनके उपदेश के अनुसार काम कर देना मथुरा बाबू ने स्वीकार कर लिया।

एक दिन लाल किसी से कुछ कहे-सुने विना ही अकस्मात् कहीं चले गये। उनके चले जाने से हम सभी लोग खेद के मारे मुर्दार हो गये। रात-दिन हम लोगों के यहाँ धर्म की जो आग जलती रहकर हम लोगों को प्रकाश दिया करती थी वही आग, लाल के चले जाने से हम लोगों का अन्तर सुस्त और अवसन्न हो जाने के कारण, धीरे-धीरे बुझ गई।

लाल और स्वामीजी के एकाएक चल देने के बाद में बहुत ही बेचैन हो गया। खेद के मारे मुझे सब कुछ सूना देख पड़ने लगा। साधन-भजन करने का उत्साह कुछ समय से बिलकुल ही ठण्ढा पड़ गया है। अब नियमित रूप से मैं साधन नहीं करता। आसन पर बैठने से अस्थिरता घेर लेती है। श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ मैं नाम का जप नहीं कर पाता, ३।४ मिनिट में ही थक जाता हूँ। ऐसा जान पड़ता है कि मैं शक्ति से बाहर का बोझा लेकर खींचा-तानी कर रहा हूँ। आसन छोड़कर उठ जाने को जी चाहता है। गुरुदेव की दुर्लभ कृपा को मैंने शेखी में आकर छोड़ दिया है, इसकी याद आने से मेरी छाती फटने लगती है। अब अपने इसी अपराध का दण्ड भोगता हूँ; साधन-भजन भला करूँगा ही क्या? मेरा रात-दिन हाय-हाय में ही बीतता है। कई दिन से मेरा पुराना दर्द बहुत ही बढ़ गया है। अब इसको सहन करने की भी मुझमें शक्ति नहीं है। न तो शरीर में ही और न मन में ही ऐसा कुछ रह गया है जिसके सहारे मुझे रत्ती भर आराम मिले। निराशा और यन्त्रणा के मारे मौत माँगता हूँ। महापुरुषों की आश्वास-वाणी की याद करके ही आजकल तनिक ढाढ़स मिलता है। मेरी यह दुर्दशा होगी, यह जानकर ही शायद नागा बाबा ने कहा था—"बच्चा, घबराओ मत। गुरुजी तुम पर बहुत कृपा करेंगे। उन्हीं पर तुम्हारी सच्ची भक्ति हो जायगी।" पतितदास बाबा ने कहा था—"थोड़े दिनों में तुमको गुरुभक्ति मिल जायगी, धन्य हो जाओगे।" गुरुदेव ने भी कहा था—"तुमने कम उम्र में साधन ले लिया है; जीवन में बहुत उन्नति कर सकोगे। धन्य हो जाओगे।"—इत्यादि।

यदि इन महापुरुषों के वचन सत्य हों, यदि आजन्म सत्य-सङ्कल्प सत्यवादी गुरुदेव की बात भी अन्यथा न हो तो फिर मुझे चिन्ता ही किस बात की है ? रोग मुझे कितना ही क्लिष्ट और सुस्त क्यों न करे, मैं स्वेच्छाचार में कितना ही क्यों न डूब जाऊँ, अन्त में मेरा भला जरूर होगा।

मुझको लाल का उपदेश

फाल्गुन शुक्ला ९ १९४६

लाल मुझसे तीन बातें कह गये हैं—(१) डायरी लिखना मत छोड़ना। आगे इसकी बड़ी आवश्यकता होगी। (२) साधन करना न छोड़ना, खूब नाम का जप करना ; तुम संन्यासी होगे। (३) गुरुदेव की कृपा हुए बिना कुछ होने का नहीं ; गुरु में एकनिष्ठ हो जाओ ; उनके साथ रहने की चेष्टा करो।

मैं तो कुछ दिनों से साधन-भजन करना एक तरह से छोड़ बैठा हूँ। आवश्यक काम खड़ा करके उसी में दिन-रात विताया करता हूँ। मैं खूब समझता हूँ कि क्या करने से मेरा भला होगा, फिर भी उसे नहीं कर पाता हूँ। फ़िज़ूल काम में, व्यर्थ की गप-शप में दिन का अधिक भाग बिता देता हूँ। मेरे भीतर तो हाय-हाय और जलन होती रहती है, भला बाहर मेरी बातें मीठी होंगी किस तरह ? मित्र लोग अब मेरे साथ बैठने-उठने से ऊब जाते हैं। मैं बड़ी उलझन में हूँ।

स्वप्न।—वाक्यसंयम

फाल्गुन शुक्ला १४ सं० १९४६

आज रात को मैंने एक स्वप्न देखा। गुरुदेव के साथ रहने के लिए दौड़ पड़ा हूँ। आँधी और तूफ़ान में बहुत से दुर्गम मार्ग को तय करके मैं गुरुदेव के पास पहुँच गया। देखा कि गुरुदेव मौन धारण किये हुए हैं। स्नेह-पूर्ण दृष्टि से जिसकी ओर देखते हैं वही आनन्द में मग्न हो जाता है। मैं गुरुभाइयों के साथ हँसी, बात-चीत और बहस करने लगा। गुरुदेव ने मेरी ओर तनिक गुस्से के साथ देखकर कहा—"ओफ़, वाह, तुम तो बहुत बातें कर सकते हो !" यह बात सुनने पर मेरी नींद टूट गई। मैंने समझ लिया कि गुरुदेव को मेरा बहुत बात-चीत करना पसन्द नहीं। मैंने निश्चय कर लिया कि अब व्यर्थ बातें न किया करूँगा।

स्वप्न।—संन्यास की अवस्था के सम्बन्ध में उपदेश

वैशाख, १९४७

यद्यपि मैं साधन-भजन-शून्य और मनमौजी होकर दुरवस्था में पड़ा हुआ हूँ, फिर भी गुरुदेव की इस आज्ञा को न भुला सका। बातचीत शुरू करते ही गुरुदेव की दृष्टि और उनकी बातों की याद आ जाती है; बस, फिर मैं कुछ कह नहीं सकता। लाल के चले जाने के बाद से, ४।५ दिन के अन्तर से, स्वप्न देख रहा हूँ—मानों मैं संन्यासी हो गया हूँ। मैंने सोचा था कि अपने सम्बन्ध में लाल की भविष्यद्वाणी सुनने के फल से ही ऐसा हो रहा है; अतएव उसे वैसा माना भी नहीं। किन्तु अब देखता हूँ—इन स्वप्नों से मेरे भीतर बड़ी हलचल मची हुई है। स्वप्नावस्था में अपने को जैसा कठोर वैराग्यपूर्ण, उद्यमी, भजनानन्दी संन्यासी देखता हूँ वही मूर्ति सुबह से शाम तक मेरी नजरों में झूलती रहती है, सदा उसी का खयाल करना भला लगता है। भीतर लगातार जिसका चिन्तन करते रहने से आराम मिलता है बाहर वैसा न हो सकने से अच्छा क्योंकर लगेगा? कुछ समय तक हाथ-पैर समेटे रहा; किन्तु यह बहुत दिनों तक न निभा। मन में जलन सी होने लगी। अतएव स्वप्न में देखी हुई अपनी संन्यास की आकृति-प्रकृति के अनुरूप अवस्था को प्राप्त करने की मुझे प्रबल इच्छा हुई। अब मैंने कठोर साधना करना आरम्भ कर दिया। दिन को सिर्फ़ एक ही बार भोजन करने का नियम कर दिया। शय्या पर सोना छोड़ दिया। सिर्फ़ एक कम्बल से ही काम लेने लगा। पक्के कमरे में रहना छोड़कर पुलिनपुरी के बड़े भारी बाग़ में तमाल के नीचे अपना आसन जमा लिया; लँगोटी लगाकर, धूनी जलाकर, तमाल के नीचे ही सारी रात बिताने लगा। जान पड़ता है, असाधारण स्थान के प्रभाव से ही साधन में मेरी इच्छा और कठोरता की व्याकुलता दिन पर दिन बढ़ने लगी। इस तमाल के नीचे तो एक सिद्ध महात्मा का भजन-स्थान था। पेड़ बहुत पुराना और छत्राकार गोल है। घने पत्तों से लदी हुई डालें चारों ओर फैली हुई जमीन तक झुक आई हैं। वृक्ष के नीचे की जगह ख़ूब साफ़-पाक है। उस पेड़ के आस-पास १५।२० आदमी आराम से बैठ सकते हैं। पेड़ के नीचे जाने के लिए एक पतला सा मार्ग गया है। अन्य किसी ओर से वहाँ जाने को रास्ता नहीं है। यदि कोई पेड़ के नीचे हो तो उसे कोई बाहर से नहीं देख सकता। ऐसा बढ़िया पेड़ मैंने पहले कहीं नहीं देखा था। तमाल के नीचे बैठने से चञ्चल मन अपने आप

मानों शान्त हो जाता है। गुरुदेव की कृपा से साधन में मुझे जो अपूर्व दर्शन होते थे, उनसे भ्रष्ट हो जाने पर मैं सिड़ी सा हो गया था ; साधन में अश्रद्धा और नाम में अरुचि उत्पन्न हो गई थी। मैंने कल्पना भी न की थी कि जीवन में फिर कभी यह साधन कर सकूँगा। किन्तु गुरुदेव ने बारम्बार मुझे स्वप्न में तेजःपुञ्ज भजनानन्दी संन्यासी के रूप के दर्शन कराके साधन-भजन और तपस्या में फिर मेरा प्रबल आग्रह उत्पन्न करा दिया। गुरुदेव का विचित्र कौशल है।

मेरा शरीर दिन-पर-दिन कमजोर होता जाता है। मन की उमङ्ग के साथ तमाल के नीचे रात बिताने और अनियमित जागरण आदि बेहद जबर्दस्ती करने से थोड़े ही समय में जीर्ण-शीर्ण कङ्काल की तरह हो गया हूँ। नाते-रिश्तेवाले और इष्ट-मित्र मुझे बारम्बार सावधान करने लगे ; किन्तु मन के अनिवार्य आवेग के मारे मैंने किसी की बात न सुनी। सोचा—जब मैं गुरुदेव की कृपा से वञ्चित हो गया हूँ, जब दुर्बुद्धि और दाम्भिकता में पड़कर मैं दुर्लभ साधनफल से हाथ धो चुका हूँ, तब अब की बार स्वयं अन्तिम चेष्टा कर देखूँगा ; यदि सफलता न होगी तो प्राण दे दूँगा।

मैं कोई महीने भर से अधिक समय तक बे-रोक-टोक यथारीति नियम आदि का पालन करता रहा। मेरे भीतर भरोसा उत्पन्न हो गया ; रोग से पीछा छूटने पर अपनी चेष्टा से—साधन के बल-बूते पर—सहज ही संन्यास की उपयोगिता को प्राप्त कर लूँगा। इसी समय एक अद्भुत स्वप्न देखने से मेरा मान चूर्ण हो गया। मैंने समझ लिया कि संन्यास प्राप्त करने की चेष्टा मेरे लिए निरी विडम्बना है ! मैं विषम अवस्था में पड़ गया।

मेरा चचेरा भाई मनोमोहन मुझसे नौ दिन बड़ा था। एक ही स्थान में पैदा होकर हम दोनों का पालन एक ही गृहस्थी में हुआ था। तेरह वर्ष की उम्र में मनोमोहन ब्राह्मसमाज में भर्ती होकर सत्यनिष्ठ उपासनाशील जीवन बिताता हुआ अकाल में ही चल बसा। उसके मरने के तीन दिन पहले मैंने स्वप्न देखा था। मनोमोहन ने आकर मुझसे कहा—"भाई, मुझे देखना हो तो जल्दी आओ; मैं अब चला।" अचम्भे की बात है कि जैसा स्वप्न में उसने कहा था, वैसा ही हुआ।

बहुत समय के बाद गत रात्रि को स्वप्न देखा—भाई मनोमोहन संन्यासी के वेश में मेरे पास आया है। उसे देखकर मैंने खूब उल्लसित होकर कहा—"वाह, तुम संन्यासी हो

गये हो ? खूब ! मैं भी संन्यासी होकर तुम्हारे साथ रहूँगा ।" संन्यासी भाई ने कहा—वेश का नाम संन्यास नहीं है; वह तो सहज अवस्था है; काम को जीते बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होती । संन्यास को तुम जितना सहज समझते हो उतना सहज वह नहीं है ।

मैं—कामिनी के साथ रहने पर भी मेरे चित्त में विकार नहीं होता । संन्यास की उपयोगिता तो मेरे स्वभाव में ही मौजूद है ।

संन्यासी भाई ने कहा—होगी । अच्छा, एक बार धोती तो खोलो ।

मैंने तुरन्त धोती खोलकर अलग रख दी । मुझे देखकर संन्यासी भाई ने तनिक मुसकुराकर कहा—रहने दो, रहने दो; धोती पहन लो । इसी उपयोगिता को लेकर संन्यासी बनोगे ? अब तुम वह इरादा छोड़ दो । अब तो तुम साधन करो, नाम का खूब जप किया करो । गुरु की कृपा होने से ही सब हो जायगा । उकताना नहीं । मैं चला ।

मैंने कहा—मैं देखना चाहता हूँ कि संन्यास का लक्षण तुम्हारा कहाँ तक हुआ है ।

संन्यासी भाई तुरन्त ही नङ्गा हो गया । मैंने अकचकाकर कहा—"यह क्या है भाई ? यह तो बिलकुल स्त्री की तरह मुझे देख पड़ता है !" संन्यासी भाई ने कहा—"नहीं, यह बात नहीं है । यह तो संन्यासी का एक बाहरी लक्षण है, यह कुछ नहीं है । संन्यासी के अन्तर की असाधारण दुर्लभ अवस्था तो गुरु के प्रसाद से ही प्राप्त होती है ।" बस, अब संन्यासी भाई अन्तर्धान हो गये; मैं भी जाग पड़ा ।

स्वप्न देखने से मुझे बड़ा अचम्भा हुआ । संन्यासी का ऐसा लक्षण मैंने पहले कभी नहीं सुना । स्वप्न को स्वप्न समझकर मैं उसे, मिथ्या कहकर, उड़ा नहीं सका । उसकी प्रत्येक बात सत्य होने से मेरे मन पर छाप पड़ गई । स्वप्न में देखी हुई अवस्था को प्राप्त करने के लिए मुझे बड़ा आग्रह हो गया । मैं बहुत कष्ट सहकर साधन करने लगा ।

पाप पुरुष का आक्रमण

ज्येष्ठ, १९४७

महात्माओं के मुँह से सुना है, और स्वयं कई बार देखा है कि तत्परता के साथ साधन, भजन, तपस्या करो तो उसके साथ-साथ, अलक्षित रूप से, साधक के अभिमान का आश्रय लेकर एक भयङ्कर पिशाच-शक्ति उसके पीछे-पीछे चलती रहती है । साधक की भीतरी कातरता अथवा बाहरी दीनता में थोड़ी सी कमी होते ही,

अथवा नियमनिष्ठा के बेड़े के असावधानी से—जान-बूझकर या बिना जाने—थोड़ा सा ढीला होते ही भयङ्कर पिशाच बड़ी तेजी से साधक पर आक्रमण करता है और अनेक प्रकार की दुर्दमनीय दुर्मति चित्त को उभाड़कर कदाचार तथा व्यभिचार द्वारा साधन को बहुत ही जघन्य हीन अवस्था में पटक देती है।

थोड़े ही दिनों तक कठोरता के मार्ग पर चलकर थोड़ा सा साधन करते ही भीतर-ही-भीतर अभिमान उत्पन्न हो गया—समझता हूँ कि मैंने काम को जीत लिया है। मन में इस भाव का उदय होने से दर्पहारी भगवान् ने मेरे दर्प को चूर-चूर करने के लिए विचित्र उत्पात पैदा कर दिया। मैंने जन-मानव-शून्य बगीचे को उपासना के लिए सब तरह के उत्पातों से बचा हुआ समझा था। इसी से मुझे आशा थी कि जी-जान से साधन करूँगा और पुण्यवृक्ष तमाल के नीचे, सिद्ध महात्मा के भजन-स्थान में, संयमपूर्वक साधन करने के बल से मैं शीघ्र ही संकल्पित कार्य में सफल हो निरापद अवस्था को प्राप्त कर लूँगा। किन्तु प्रतिष्ठा और अभिमान के मोह से अन्ध होकर अब मैं बेढब अन्धकूप में गिर पड़ा हूँ। इस आपत्ति से बचने का मेरे पास कुछ उपाय नहीं है।

भागलपुर अनेक प्रकार की आभिचारिक क्रियाओं (जादू-टोने) के लिए प्रसिद्ध है। नीच जातिवालों में ही इस भयङ्कर दुष्क्रिया का प्रचलन अधिक है। समय-समय पर 'आभिचारिक' क्रिया का प्रयोग न किया जाय तो उसकी शक्ति घट जाती है; इसलिए जो लोग उस काम में मँजे हुए हैं वे सदा आदमी की खोज में रहते हैं। और उपयुक्त यजमान मिल जाने पर उनकी आमदनी भी ख़ासी हो जाती है। किसी के साथ मामूली कारण से यदि किसी का कुछ झगड़ा हो जाय तो वे (जादूगर) लोग एक दूसरे को छकाने के लिए 'बाण मारने,' 'फूल छोड़ने,' 'धूल पढ़ने' आदि की चेष्टा करते हैं। इस उत्कट शक्ति का प्रयोग यदि पात्र-विशेष में किया जाय तो उसकी जान पर तक बन आती है।

हमारे बाग़ से सटे हुए उत्तर ओर एक भले आदमी आकर, किराये के मकान में, टिके हुए हैं। वे भले स्वभाव के और धर्मात्मा हैं, इसलिए पड़ोसी के नाते उनके साथ हम लोगों का कुछ अधिक हेल-मेल हो गया है। कुछ दिन हुए, उनकी पन्द्रह वर्ष की युवती बेटी इस जादू-टोना किये जाने के संकट में पड़ गई है। उसके एक सुन्दर सन्तान हुई थी, किन्तु माँ का दूध न मिलने से वह मर गई। युवती और भी अनेक उत्पातों

को भोग रही है। उसका असाधारण रूप-लावण्य ही उसकी इस उत्कट विपत्ति का कारण है। मैं तमाल-तले रात-दिन धूनी जलाये बैठा रहता हूँ, इसलिए मैं अवश्य ही शक्तिशाली महापुरुष हूँ, इस ढँग के कुसंस्कार ने यहाँ पर बहुतों के मन में घर कर लिया है। उस युवती के पिता मुझे इसी धारणा से एक दिन अपने घर जबर्दस्ती लिवा ले गये कि मेरी सिर्फ़ थोड़ी सी कृपादृष्टि से ही उस युवती की सारी 'ऊपरी' बाधा दूर हो जायगी। फिर सुन्दरी कन्या को एकान्त में मेरे पास छोड़कर आप वहाँ से खिसक गये! मतलब यह था कि उनकी बेटी अपना सारा दुखड़ा मुझे जी खोलकर सुना दे। शोकातुरा भोली-भाली युवती ने बहुत ही कातर होकर मुझसे कहा—"आप दया करके मेरी रक्षा करें। किसी दुष्ट मनुष्य की कुदृष्टि पड़ने से, प्रसव होने के कुछ दिन पहले से ही, मेरा एक स्तन सूख गया है; दूसरे में भी एक बूँद तक दूध नहीं है। इसी से, छाती का दूध न मिलने से, भूख के मारे मेरा बच्चा मर गया।"—अब उस शोक-विह्वल बाला ने बिना किसी प्रकार की झिझक के कपड़ा हटाकर मुझे छाती की हालत प्रत्यक्ष दिखला दी। युवती की छाती में बाईं ओर स्तन का नाम-निशान तक नहीं है। देखकर मैं भौंचक्का सा रह गया। दूसरा स्तन स्वाभाविक, भरा हुआ और सुगठित है। युवती की धारणा है कि मेरे देख देने और हाथ से छू देने से कुग्रह की दृष्टि हट जायगी। उसके प्राणों की दुःसह यातना और हृदय के आग्रह का मेरे चित्त पर असर पड़ा। मैं बिना किसी प्रकार की झिझक के उसके सारे बदन पर हाथ फेरकर, आशीर्वाद देकर, चला आया। अब उस सूनसान बगीचे में मेरे दर्शन करने के लिए वह युवती प्रतिदिन आने लगी। मैं उसे दूर से आशीर्वाद देकर अपने काम में लगा रहता हूँ।

थोड़े दिनों के बाद ही देखा कि यदि किसी दिन वह ठीक समय पर नहीं आती है तो मेरा मन बेचैन हो जाता है, उसके रूप की याद मेरे चित्त को चञ्चल कर देती है। तब मैं अपने आसन पर बैठे रहने में असमर्थ होकर उसी बाग में इधर-उधर टहलने लगता हूँ। और कभी-कभी तो उसे देखने के लिए उन लोगों के घर के पास जाकर खड़ा रहता हूँ। हाय, हाय मेरी यह कैसी दशा हुई! मैं कहाँ से कहाँ आ गिरा? आचरण के सम्बन्ध में पहले ही सावधान न होकर, भीतर की दुष्प्रवृत्ति के सूक्ष्म आकर्षण में धीरे-धीरे पैर फैलाकर, मानों नरक-कुण्ड में आ गया हूँ। मानों मेरा सब कुछ चौपट हो गया है, सत्यानाश हो गया है।

अब मैं अपने को बहुत ही नीच समझ रहा हूँ। अब रात-दिन हाय-हाय करता और ठण्ढी साँसें लिया करता हूँ। साधन-भजन सब छूट गया है।

अब मैंने तमाल के तले रहना छोड़ दिया है; नाम का जप और प्राणायाम भी छोड़ दिया है। सामने गहरा अँधेरा देखकर डर के मारे सिड़ी सा हो रहा हूँ। गुरुदेव, इस समय तुम कहाँ हो ?

तुम कौन हो ?

जीवन में जो अचिन्तनीय घटना हो रही है, उसका ख़याल करके मैं हक्का-बक्का हो जाता हूँ। कह नहीं सकता, कल रात को मैंने क्या देखा है। मैंने ज़िन्दगी में कभी ऐसा दृश्य नहीं देखा। गुरुदेव को सुनाने के लिए घटना को यथासाध्य लिखे लेता हूँ।

रात के बारह बज गये। बिस्तरे पर पड़ा हूँ; घर के दरवाज़े और जँगले खुले हुए हैं। बिस्तर के कोई आधे हिस्से पर चन्द्रमा की उजली किरणों का प्रकाश फैला हुआ है। दर्द की तकलीफ़ और मन की आग के मारे मैं तड़प रहा हूँ। मैंने बहुत ही व्याकुल होकर गुरुदेव के चरणों में प्रार्थना की, "महाराज, मुझसे अब तो नहीं सहा जाता। अब तुम दया करो। तुम्हारी उस ममता-पूर्ण स्निग्ध दृष्टि को हृदय में रक्खे हुए सदा के लिए सारे उत्पातों को शान्त कर दूँगा।" प्रार्थना के अन्त में गुरुदेव की पवित्र मूर्ति के ध्यान के साथ-साथ मैं इष्ट नाम का जप करने लगा। नहीं मालूम कब, बिना जाने, धीरे-धीरे कामिनी-कल्पना* चित्त में हो आई। मैं उसी में अभिभूत बना रहा। पता नहीं कि मैं जागता था या सोता; अकस्मात् अपने पैंताने की ओर मैंने कामिनी का कण्ठ-स्वर सुना। धीमे गले से, गिड़गिड़ाकर, मुझसे कहा—"क्या सोच रहे हो? मैं तो यह आ गई।" स्वर से ख़ासी घनिष्ठता जान पड़ी। किन्तु पहचान न पाने से मैंने पूछा—तुम कौन हो ? इस समय यहाँ पर क्यों आई हो ?

रमणी ने उत्तर दिया—तुम तो मुझे दम नहीं लेने देते हो—खींच लाये हो। बहुत भोग चुकी—अब क्लेश मत दो। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अब मेरा छुटकारा कर दो।

---

* इस सम्बन्ध में महाराज की बात पूर्व प्रकाशित 'सद्गुरुसङ्ग' (संवत् १९४८ के, बङ्गभाषा के) ग्रन्थ में, पृष्ठ २१ में, कह दी गई है।

मैंने विस्मित होकर कहा—मैंने तुम्हें कब बुलाया है ? तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आई हो ?

कामिनी ने कहा—तुम्हारे न रुकनेवाले भाव से मेरी ऊर्द्ध्वगति रुक गई है, तुम्हारी कल्पना और उत्तेजना के साथ ही मैं तुम्हारी ओर खिंच आती हूँ। जब तक तुममें विकार बना है तब तक मेरा निस्तार नहीं हो सकता। अब वासना को जी भरकर तृप्त कर लो – ठण्डे हो जाओ। मेरा भी पीछा छूटे।

मैंने कहा—तुम कौन हो ? तुम्हारी बातें तो सुन रहा हूँ, किन्तु तुम्हें देख नहीं पाता हूँ। मैं कामिनी की कल्पना करता हूँ तो इसमें तुम्हारी क्या हानि है ? तुम क्यों आकृष्ट होती हो ?

धुँधली छाया की तरह थोड़ी सी प्रकाशित होकर युवती तख्त के पास, मेरे पैंताने की ओर आकर, खड़ी हो गई। फिर बिस्तर पर आधी लेटी हुई की दशा में गिरकर उसने मेरे पैर पकड़ लिये। उसकी देह का स्पर्श होने से मेरे शरीर में आनन्द की धारा बहने लगी, मैं बारम्बार चौंकने लगा।

तब युवती ने मुझसे कहा—छिः ! यही तुम्हारी हालत है ? काम-भाव, कामिनी-कल्पना—तुम इसे छोड़ नहीं सके ? अपना सत्यानाश कर लिया ! और देखो, इसमें मेरी कितनी दुर्गति है। मैं बड़े आनन्द से समाधि में थी। सविकल्प अवस्था को लाँघकर इतने दिनों में निर्विकल्प समाधि प्राप्त कर लेती। सिर्फ़ तुम्हारे साथ अभेद-सम्बन्ध रहने से आबद्ध हो गई हूँ। तुम्हारी विषम उत्तेजना का खिंचाव मुझे ऊपर नहीं जाने देता। मैं बिलकुल लाचार हो गई हूँ। अब मेरा छुटकारा कर दो। अपनी आकांक्षा पूरी कर लो।

मैं चटपट उठकर बैठ गया—कहा, "बतलाती क्यों नहीं कि तुम कौन हो ?" अब रमणी अकस्मात् तख्त के पास बाईं ओर आ खड़ी हुई और मधुर भाव से नम्रता के साथ बोली—"एक बार मुझे पकड़ो तो सही !—अभी परिचय मिल जायगा।" मानों मैंने हाथ से उसकी कमर पकड़ ली। रमणी का अलौकिक रूप देखते ही विस्मय के मारे मेरे अङ्ग बेक़ाबू हो गये। मेरा ढीला हाथ गिर पड़ा। उसकी कमनीय देह केवल नाभि तक ही साफ़-साफ़ मेरे आगे प्रकाशित हुई। मैंने देखा कि नीली द्युति से युक्त सुन्दरी श्यामा नङ्ग-धड़ङ्ग मेरे सामने खड़ी हुई है। सफ़ेद, तङ्ग, महीन धोती से उसकी मोटी-मोटी जाँघों का सन्धिस्थल

ढका हुआ है। षोडशी के नाभि-प्रदेश से लेकर पैरों के अँगूठों तक असंख्य गहरे नीले रङ्ग की बिजली चमक रही है। अद्भुत रूप देखने से चौंककर मैंने उसके पकड़ने को हाथ बढ़ाया। तब रमणी तनिक पीछे हटकर मुझसे बोली—"अब रहने दो। बहुत हो चुका; अब काम-कल्पना मत करो, मुझको मत खींचो। सोचो तो भला मैं कौन हूँ। लो, अब मैं चली।" बस, नग्न कामिनी अपने श्यामाङ्ग की उज्ज्वल छटा से दिगन्त को प्रकाशित करके ऊपर की ओर उठी। तब उसके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग से नीले रङ्ग की बिजली की चिनगारियों ने लगातार निकल-निकलकर नभोमण्डल को चमका दिया। देखते-देखते ज्योतिर्मयी श्यामा-प्रतिमा अनन्त नीलाकाश में स्वरूप को मिलाकर धीरे-धीरे विलीन हो गई। मैं ज़ोर-ज़ोर से 'हाय, हाय, कहाँ चली गई? कहाँ चली गई?' कहता हुआ बाहर निकल आया।

बाक़ी रात आकाश की ओर ताकते-ताकते किस तरह काटी, उसे नहीं लिख सकता।

यह अप्राकृत दृश्य देखने के बाद से मेरे अन्तर में सर्वदा उसी रूप का उदय होने लगा। मैं रात-दिन उसी के ध्यान में निमग्न रहने लगा। मेरे प्राण इस चिन्ता से व्याकुल रहने लगे कि अब फिर किस प्रकार उस अनुपम प्रतिमा के दर्शन मिलेंगे। अब तक जिन अनिष्टकर दूषणीय कल्पनाओं में सुख पाता रहा हूँ उनमें अब रुचि नहीं है, उनसे तो अब छड़कता हूँ। साधन-भजन करने से फिर वह मनमोहिनी अप्राकृत रमणी देखने को मिलेगी, यह सोचने से साधन में मुझे प्रवृत्ति हो गई। किन्तु लोभ में पड़कर साधन करने के लिए उत्साहित होने पर भी चेष्टा करने की अब मुझमें सामर्थ्य नहीं है। दारुण पित्तशूल की वेदना को सहने में असमर्थ होकर मैंने बिलकुल खटिया पकड़ ली है। प्रतिदिन दो-तीन बार कै करता हूँ; मालूम होता है कि कण्ठनाली में घाव हो गया है। चुल्लू भर पानी पीने से भी पेट में तक जलन होने लगती है। दिन-रात एक सी दुःसह वेदना के मारे न तो मुझे खाना अच्छा लगता है और न नींद ही आती है। चौबीसों घण्टे बिस्तर पर पड़ा-पड़ा कराहता रहता और कभी उठकर बैठ जाता हूँ तथा कभी फिर लेट रहता हूँ। मैं अब साफ़ समझ रहा हूँ कि मानसिक यन्त्रणा कितनी ही तीव्र क्यों न हो, किन्तु वह कायिक क्लेश की तुलना में कुछ भी नहीं है। उत्कट दैहिक यन्त्रणा को शान्त करने के लिए ऐसा कोई अधर्म, अनाचार अथवा अकर्म नहीं जान पड़ता जिसे न कर सकूँ। यह हालत है!

प्रथम खण्ड समाप्त
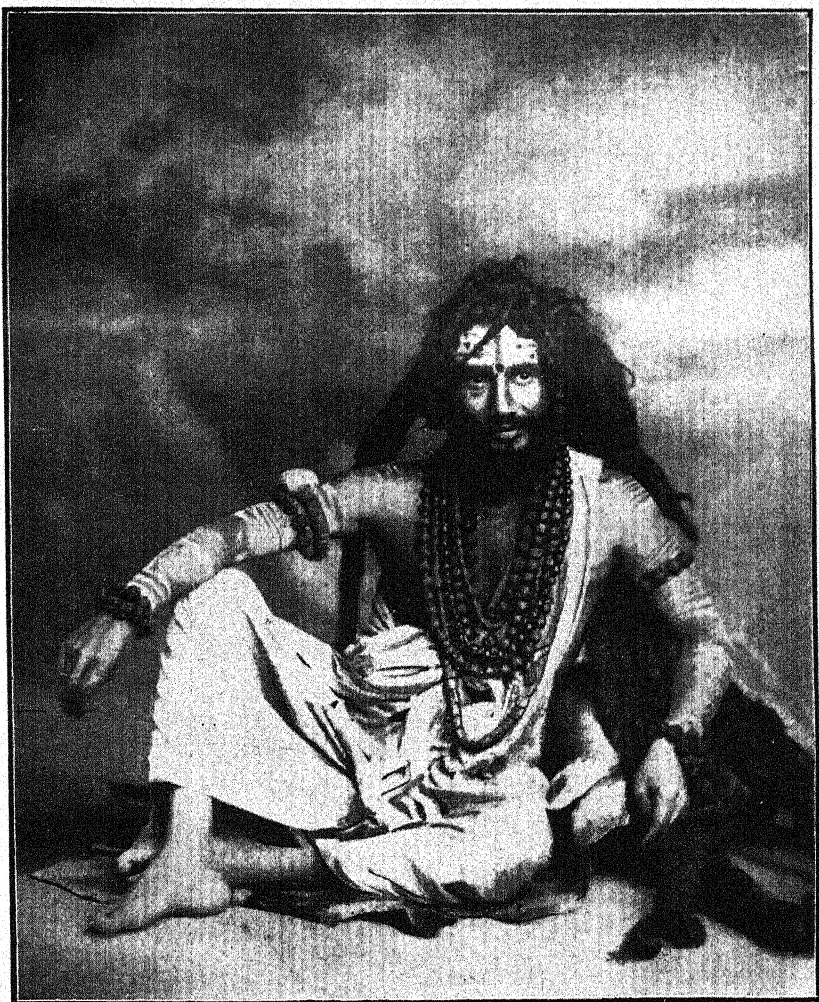
श्रीश्रीकुलदानन्द ब्रह्मचारी

शब्दकोष

अद्वैत प्रभु—(अद्वैत आचार्य) गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के मत से ये अंशावतार–श्रीमहाविष्णु हैं और श्रीमान् महाप्रभु की लीला के प्रधान सहायक हैं। महाप्रभु के आविर्भावसे पहले ही ये बङ्गाल में नदिया जिले के अन्तर्गत शान्तिपुर में अवतीर्ण हुए थे। उस समय जीवों की दशा भक्तिभावहीन देखकर ये भगवान् के आविर्भाव के लिए आराधना किया करते थे। उसी के प्रभाव से श्रीमान् महाप्रभु अवतीर्ण हुए थे। महाप्रभु के लीला संवरण कर चुकने पर ये तरोहित हुए। इस पुस्तक के लेखक के गुरुदेव प्रभुपाद श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामी इन्हीं के वंशज थे।

आचार्य-सन्तान—देखो अद्वैत प्रभु।

उपनिषद्-मार्ग—उपनिषदों के आधार पर प्रवर्तित साधन-प्रणाली।

करमुद्राबद्ध—जिसके हाथ में 'वर' और 'अभय' आदि मुद्राएँ हों।

कवि-गान—धार्मिक विषय पर दो दलों में प्रश्नोत्तर रूप में होनेवाला गान।

क़ुरान—मुसलमानों का धर्मग्रन्थ। यह अरबी भाषा में है।

कृत्तिवासी रामायण— बंगाली कवि कृत्तिवास-प्रणीत पद्यात्मक रामायण। इसका हिन्दी पद्यानुवाद लखनऊ से प्रकाशित हो चुका है।

गोस्वामी—श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामी। इस ग्रन्थ के लेखक के गुरुदेव।

गौर—(गौराङ्ग,महाप्रभु) गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार ये स्वयं भगवान् के अवतार हैं। ये बंगाल (नवद्वीप) में फाल्गुन पौर्णिमा १४०७ शक में अवतीर्ण हुए थे। देश को भक्ति की लहर में प्रवाहित करके १४५५ शक में जगन्नाथ पुरी में इन्होंने लीला संवरण की। ये मृदङ्ग और करताल के साथ हरि-कीर्तन के प्रवर्तक हैं। गौड़ीय सम्प्रदाय इन्हीं का है। बंगाल, उड़ीसा और वृन्दावन आदि स्थानों में इनका अनन्त प्रभाव है। इनकी माता का नाम शची देवी था, इससे ये शचीनन्दन कहे जाते हैं।

चित्कण—वैष्णव-मत में विशुद्ध जीव का स्वरूप। वैष्णव लोग जीव को व्यापक चैतन्यरूपी न मानकर चिन्मय अणुरूप मानते हैं।

छान्दोग्य—एक उपनिषद् ।

जगाई—नवद्वीप (नदिया) का एक आदमी । यह प्रचण्ड नास्तिक और धर्मद्वेषी था । चैतन्य महाप्रभु के अलौकिक प्रभाव से यह अन्त में हरिभक्त हो गया ।

जारित—भस्मीकृत ।

टप्पा—बङ्गभाषा का एक प्रकार का सङ्गीत ।

तान्त्रिक—तन्त्रमत की रीति से उपासना करनेवाले ।

थियासफ़ी—मैडम ब्लैवेट्स्की द्वारा प्रवर्तित एक धार्मिक संघ । मिसेज एनी बेसेंट ने इस संघ की बहुत सेवा की है । किसी भी धर्म को माननेवाला इसका सदस्य हो सकता है ।

दादा—बंगाल में मँझले या बड़े भाई को दादा कहते हैं ।

दुर्गापूजा—बंगाल में क्वार सुदी प्रतिपदा से लेकर विजयादशमी तक धूमधाम के साथ होनेवाली देवीजी की पूजा । वहाँ यह बड़ा भारी त्योहार माना जाता है ।

नन्दी-भृङ्गी—महादेवजी के गण ।

निताई—(नित्यानन्द प्रभु) गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय के मत से ये अंशावतार—श्री बलराम हैं और श्रीमान् महाप्रभु की लीला के प्रधान सहायक हैं । महाप्रभु के प्रकट होने से कुछ पहले बंगाल के वीरभूमि जिले के अन्तर्गत एकचक्रा नामक गाँव में ये अवतीर्ण हुए थे । महाप्रभु के तिरोभाव के पश्चात् इन्होंने शरीर छोड़ा ।

पञ्चदेव—(१) गणेश, (२ विष्णु, (३) शिव, (४) दुर्गा, (५) सूर्य ।

पञ्चमुण्डासन—तान्त्रिक उपासना के लिए विधिपूर्वक किया हुआ आसन, जिसके नीचे पाँच प्रकार के मुण्ड रहते हैं ।

परमहंस ब्रह्मानन्द स्वामी—श्रीमद् विजयकृष्ण गोस्वामीजी के दीक्षा-दाता गुरुदेव । ये मानस सरोवर (तिब्बत) में रहते थे । इन्होंने गोस्वामीजी को गयाजी के "आकाशगङ्गा" पहाड़ पर अलौकिक रीति से दीक्षा दी थी ।

पाँचाली—बङ्गभाषा का एक प्रकार का सङ्गीत ।

पुरुषकार—साधन विषय में व्यक्तिगत चेष्टा ।

पौत्तलिकता—मूर्तिपूजा ।

बाइबिल—ईसाइयों का धर्मग्रन्थ ।

बाउल—बङ्गाल में प्रचलित एक प्राचीन वैष्णव सम्प्रदाय ।

ब्रह्मज्ञानी—जिसको ब्रह्म का ज्ञान हो गया हो ।

ब्राह्ममन्दिर—वह स्थान जहाँ पर ब्राह्म-समाज के अधिवेशन होते हैं ।

ब्राह्मसमाज—राजा राममोहन राय द्वारा प्रवर्तित एक धर्म-सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय के लोग जाति-पाँति आदि को नहीं मानते और निराकार ब्रह्म की उपासना करते हैं।

मधाई—यह जगाई का भाई था। इसका उद्धार भी महाप्रभु की कृपा से हुआ।

मनसा का विसर्जन—'मनसा' सर्प-देवता का नाम है। पूजन के पश्चात् मूर्ति को जल में छोड़ देना मनसा का विसर्जन कहलाता है।

महाप्रभु—देखो गौर।

माघोत्सव—माघ महीने में होनेवाला ब्राह्म-समाज का विशिष्ट उत्सव।

रामकृष्ण परमहंसदेव—बंगाल के एक प्रसिद्ध महात्मा। ये स्वामी विवेकानन्दजी के गुरु थे। प्रसिद्ध रामकृष्ण मिशन इन्हीं के नाम से प्रतिष्ठित है। कलकत्ते के समीप दक्षिणेश्वर में ये भगवती काली की उपासना किया करते थे।

राममोहन राय—ब्राह्मसमाज के प्रतिष्ठाता, बङ्गाल के प्रसिद्ध समाज-सुधारक।

रोमन कैथोलिक—ईसाइयों का प्राचीन धर्म-सम्प्रदाय।

वेदी का काम—ब्राह्म-समाज में, अधिवेशन के समय, ऊँचे आसन पर बैठकर उपासना कराना और उपदेश आदि देना। आचार्य का कार्य।

शचीनन्दन—देखो गौर।

श्रीगौराङ्ग—देखो गौर।

षट्चक्रभेद—मनुष्य-देह में 'मूलाधार', 'स्वाधिष्ठान', 'मणिपूर', 'अनाहत', 'विशुद्ध' तथा 'आज्ञा' नाम के छः आध्यात्मिक चक्र हैं। ये मेरुदण्ड के नीचे से लेकर क्रमशः ऊपर को भ्रूमध्य तक विस्तृत हैं और देखने में विभिन्नसंख्यक दल-विशिष्ट कमलों के सदृश प्रतीत होते हैं। जिस समय जीव की सुप्त आत्मशक्ति जागकर साधनबल तथा गुरुकृपा के प्रभाव से इन सब चक्रों को भेदकर मस्तक में चढ जाती है उस समय ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

सनातन गोस्वामी—इनकी जन्मभूमि यशोहर ज़िले के अन्तर्गत फ़तहाबाद है। ये बड़े भारी पण्डित थे। गौड़ के बादशाह हुसेनशाह ने अपना मंत्री बनाकर इनका नाम शाकिर मल्लिक रख दिया था। ये गौड़ नगरी के समीप रामकेलि गाँव में रहने लगे थे। अन्त में श्रीगौराङ्ग के दर्शन होने पर गृहस्थी से इनका मन उचट गया। इनके नौकरी छोड़ने का पता पाकर बादशाह ने इन्हें क़ैद करवा

लिया किन्तु ये युक्ति से भाग निकले। श्री गौराङ्ग की आज्ञा से इन्होंने भक्ति-विषयक ग्रन्थ बनाये हैं। इनके दो भाई और थे जिनका नाम रूप और वल्लभ (अनुपम) था। वल्लभ के पुत्र जीव गोस्वामी भी खासे विद्वान् थे।

सप्तशती (दुर्गा)——मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत दुर्गा-माहात्म्य-ख्यापक ग्रन्थ। इसमें ७०० श्लोक (मन्त्र) हैं। इसका पाठ दुर्गापाठ कहलाता है।

साधन——ईश्वर की प्राप्ति का उपाय।

साधारण ब्राह्मसमाज——ब्राह्मसमाज का एक भेद। 'आदि' तथा 'नवविधान' समाज से यह पृथक् है।

हरि की लूट——हरिकीर्तन में प्रसाद-रूप से कीर्तन करनेवालों के बीच बखेरी जाने-वाली मिठाई (बताशा आदि)।

हविष्यान्न——सात्त्विक निरामिष भोजन; इसमें ब्रह्मचर्य के प्रतिकूल खाद्य वस्तुएँ वर्जित हैं।

Printed by
Rameshwar Pathak,
at the Tara Printing Works,
Benares City.